पहचानी हुई शक्लें

श्रीराम शर्मा 'राम'

खेद है कि समय पर यह उपन्यास प्रकाशित नहीं कर पाया, इसके लिये लेखक एवं पाठकों से क्षमा प्रार्थी हूँ। साथ ही श्री जगदीश भारद्वाज का मैं आभारी हूँ जिनके सहयोग से यह पुस्तक आपके हाथों में है।

—राजेश गोयल

उन पहचानी शक्लों को जो.........

१

पहाड़ के उस अपरिचित क्षेत्र में कि जहाँ अपना कोई नहीं, मधुकर एका-एक विस्मित बन गया कि कमरे के द्वार पर आते ही, एक युवा सुन्दरी ने उसे टकोर दिया, 'आप कवि हैं ?'

उस अप्रत्याशित प्रश्न को सुन, मधुकर चकराया, क्षण भर को खो गया। उसने सहज भाव से कह दिया, 'जी !'

वह सुन्दरी द्वार पर टिक गयी और बोली, 'इस धर्मशाला के जमादार ने आप से उस कमरे का किराया लिया, तो फिर मेरे पास पहुँचा। उसकी रसीद-बुक पर आपका नाम देखा। मैंने मधुकर कवि की कविताएँ पढ़ी हैं, भली लगी हैं।' यह कहते हुये उसने अपनी उस सुन्दर दृष्टि को बाहर पड़ती वर्षा की बूँदों पर तैरा दिया।

मधुकर उस समय अनमना था, सर्दी पड़ रही थी, तो इसी लिये वह कम्बल ओढ़े हुए था। उस अवस्था में वह उस सुन्दरी की ओर देखता रह गया।

तभी उस सुन्दरी ने कहा, 'आप तो कल आये हैं इस धर्मशाला में, मुझे तीन मास बीत गये। अब वर्षा आरम्भ हो गयी तो नीचे जाना पड़ेगा। अब इस पहाड़ का मौसम सुखकर नहीं रहेगा।' उसने मधुकर की ओर देखकर प्रश्न किया, 'आप इतनी देर में आये, अप्रैल-मई में आना चाहिए था।'

मधुकर बोला – 'इससे पूर्व मैं कभी पहाड़ पर नहीं आया। इस बार भी आ गया, ऐसा संयोग मिल गया।'

वह युवती वोली, 'पहाड़ का आवास खर्चीला है । देखिए कहने
यह धर्मशाला है, पर यहाँ भी किराया लिया जाता है ।' उसने फिर
'हाँ, यह तो ठीक है, होटलों की मँहगाई के समक्ष यह नगण्य है ।
मधुकर बोला, 'होटल वाले कपड़े उतारते हैं । मुसाफिर को
ते हैं ।'

वह हँसी, अपने श्वेत फेनिल दाँतों को निकाल कर सहज
अपनी उन मधुर आँखों से मुसकरा भी दी। उसी अवस्था में
ोली, 'तो आप कहाँ से . ?'

मधुकर ने कहा, 'कानपुर से ।'

'अच्छा तो आप कानपुर के निवासी हैं । वह तो हिन्दी का गढ़
है । उस ओर ही हिन्दी के कवि और लेखक पैदा होते हैं ।' वह बोली, 'मैंने
एक बार छोटी अवस्था में कानपुर देखा था । शायद किसी सम्बन्धी
के विवाह में अपने घर मुलतान से पहुँची थी, याद पड़ता है कि तब
भी मुझे शहर अच्छा लगा था ।'

सचमुच, उस समय मधुकर को ठण्ड लग रही थी । वह कम्बल
के अन्दर अपने दोनों घोंटे जोड़े बैठा हुआ था । उसे इस प्रकार
देख, वह युवती हँसी, 'आपको ठण्ड लग रही है ।' वह बोला 'हां
सर्दी तो है ।'

मधुकर ने फिर कहा, 'कम्बख्त, बारिश पड़नी आरम्भ हुई, तो प
जा रही है । यह रुकती तो मैं बाजार जाता एक प्याला चाय—'

'ओह, मैं तो भूल ही गयी ।' उसने मधुकर की आँखों में अप
आँखें डालकर कहा, 'मैंने स्टोव जलाया और पानी रख दिया । कै
भुलक्कड़ हूँ कि इधर आयी और भूल गयी । आप बैठिये, मैं च
लाती हूँ ।'

मधुकर ने आतुर बन कर कहा, 'नहीं-नहीं, आप क्यों...!'

किन्तु उस युवती ने मुसकरा दिया, जाते-जाते भी हँस दि
मधुकर के कमरे से लगा दूसरा कमरा उसी का था । वहाँ से

के जलने का स्वर उसके कानों में भी आ रहा था । लेकिन इसी समय मधुकर के शरीर में चेतना आयी, गर्मी भी अनुभव हुई और उसने अपना एक हाथ कम्बल से निकाल कर सिर खुजलाते हुए अपने-आप कहा—अजीब नारी है। यह पंजाबिन है, न्नुनी है। वह बोला, यह युवती शिक्षित और सुन्दर भी है, चतुर और व्यावहारिक। यद्यपि इस प्रकार से पूर्व भी उसका विविध प्रान्तों की नारियों से परिचय हो चुका था, परन्तु जिस प्रकार उस अपरिचित नारी ने आते ही, बातों का सिलसिला छेड़ा, उसका परिचय लिया, मानो वह सभी मधुकर सरीखे दब्बू और शर्मीले युवक के लिये अशोचनीय नहीं तो विस्मय का विषय जरूर था। अतएव वह अपने आप क्यों कुछ सुकड़ गया, डर भी गया। कदाचित उसका कारण यह था कि उसने अखबारों में, लोगों की दन्तकथाओं में ऐसा अनेक बार पढ़ा और सुना था कि बहुत सी औरतें स्वयं आदमी को मूर्ख बनाने का प्रयत्न करती हैं ..अपने रूप का जाल फैलाती है और उस आदमी को न दीन का रखती हैं; न दोज़ख का... ।

उसी समय वह युवती एक हाथ में चाय का प्याला और दूसरे में एक लड्डू और नमकीन बिस्कुट लेकर वहाँ आ पहुँची। वह हँसती हुई बोली, 'लीजिये आपके भाग्य से यही चाय मिल गयी। यह लड्डू भी घर का बना है, बाजार का नहीं।'

मधुकर ने कहा—'आपने यह कष्ट क्यों किया। वर्ना रुकती, तो चला जाता। आखिर बाजार तो मुझे जाना ही था। न, न, आप रहने दीजिये।'

युवती ने मेज पर सामान रख दिया। वहाँ से लौटते हुये उसने कहा—'मैं भी अभी आती हूँ। अपनी चाय लिये आती हूँ। आप शुरू कीजिये। यह दुनियादारी की बात छोड़िये।'

वह चली गयी, तो मधुकर उस चाय की उठती भाप को देखने लगा। सचमुच उस सर्दी में, जैसे उस चाय के प्याले में ही प्राण

किन्तु जब तक वह नारी न लौटे, तो उसे छूते भी उसे नहीं लग रहा था। वह लौट आयी, हाथ में चाय और सामान। आते ही बोली, 'अरे, आप बैठे हैं। शुरू ये।'

मधुकर ने चाय का प्याला अपनी ओर बढ़ाया, 'आपने व्यर्थ कष्ट किया।'

वह युवती हँस दी—'देखिये, मुझे शारदा कहते हैं। आप इसी नाम से पुकार सकते हैं। और आप ने यह कष्ट की बात खूब की, लगता है आप संकोची हैं। कवि हैं तो दुनिया के व्यवहार से परे हैं।'

मधुकर सहज भाव से मुसकराया और चाय पीने में लग गया।

शारदा ने कहा—'मैं यहाँ अकेली हूँ। पहले आपके कमरे में एक दम्पति आकर ठहरे थे। पति-पत्नी थे, शायद वे विवाह के बाद ही इस पहाड़ पर आ गये थे।'

एकाएक मधुकर ने प्रश्न किया—'आप अकेली हैं?'

शारदा बोली—'जी हाँ, मैं इस समय अकेली हूँ। कुछ दिन लिये पति भी आये और चले गये। उनकी बड़ी जिम्मेदारी है। मे खर्च, अपना खर्चा, उन्हें सभी की चिन्ता रहती है। यहाँ तो उनकी दुकान ठप्प हो सकती है।'

मधुकर ने चाय पी ली। तभी तकिये के नीचे से सि का पैकट निकाला और सिगरेट जला कर पीने लगा। जब पहला कश खींच कर धुआँ फेंका तो उसी के गुबार में से श को देखकर मुस्कराया और बोला—'किन शब्दों में आपका ध किया जाय, शारदा जी!'

शारदा ने स्वयं भी चाय पी डाली और डकार लेकर कह यह भी रीत है। इस दुनिया की रीत है!' और तभी वह खिल

हुई हँसती बोली, 'यही सस्ती रीत है यह। धन्यवाद दो और पाक-साफ हो जाओ।

इस बात को सुनकर मधुकर भी हँस दिया। बात उसके मन में चुभी पर शारदा के समान वह भी प्रस्तुत विषय को हल्के भाव में टाल गया।

उसी समय शारदा ने कहा, एक मासिक-पत्र में आपकी कहानी पढ़ी थी। वह मुझे रुचिकर लगी थी। ऐसा लगा कि जैसे किसी की तस्वीर उतारी गयी हो। आप कविता तो लिखते ही हैं, पर कहानी भी लिखते हैं!'

मधुकर ने कहा, 'कह नहीं सकता कि तुम किस कहानी की बात कहती हो। लिखना तो मेरा नशा है, धन्धा भी है।'

शारदा ने अन्तिम बात को पकड़ लिया और कहा, 'आप का यह धन्धा भी है? सचमुच बड़ी अजीब बात है यह कि आप लोगों की भावना का प्रदर्शन कर के पैसा कमाते हैं।' वह बोली, 'कहानी थी, एक शरणार्थी लड़की की कि वह कैसे गुण्डों के चंगुल मे गयी और किस प्रकार छूट कर आयी, किन्तु उसे बाहर आकर भी शरण नहीं मिली। न पति ने अपनाया न माँ-बाप ने। वह दर-दर ही भटकती फिरती रही।

मधुकर ने कहा, 'हाँ एक ऐसी कहानी लिखी थी।' बोला, 'उस कहानी में एक ऐसी समस्या का चित्रण था कि जो हमारे समाज के समक्ष मूर्त्त-रूप से आ गयी थी। समाज की मानसिक दरिद्रता का अभिशाप बेचारी नारी को भुगतना पड़ा था।

शारदा ने साँस भरी—'हाँ बाबू! नारी को आज क्या, सदा से इस इन्सानी समाज के समक्ष झुकना पड़ा है, उसकी बर्बरता का शिकार बनना जैसे इस नारी का नैसर्गिक कर्म हो गया है!'

मधुकर ने बात सुनी तो उस युवा और सुन्दर शारदा की ओर देखा। उस समय शारदा का मुँह अपनी बात कहने के साथ ही दूसरी ओर मुड़ गया था। तब आसमान से पड़ती हुई बारिश रुक गयी थी।

किसी पेड़ की डाल पर बैठा हुआ पहाड़ी कौवा अपनी भारी आवाज से काँव-काँव कर रहा था। वर्षा रुकी तो चारों ओर निस्तब्धता थी। पहाड़ के जिस सिरे पर वह स्थान था, तो वहाँ से बाजार भी दूर था। उस पहाड़ पर कोई बस्ती है, मकान है, ऐसा आभास भी वहाँ से नहीं मिलता था। अब उस शान्त वातावरण में, एकान्त कमरे में जब बैठे-बिठाये मधुकर को चाय मिल गयी, खाने को लड्डू मिल गया, तो सिगरेट का धुँआं उड़ाते हुए उसे यह देख कर भी अच्छा लगा कि उसके पास एक तरुणी आ बैठी है। वह रुपहली चाँदनी के समान, वहाँ चमक रही है। किन्तु जब उस शारदा ने कहानी की पृष्ठ-भूमि पर अपनी अभिव्यक्ति प्रगट की तो उस भावुक और कल्पना-लोक के राही मधुकर को लगा कि जरूर इस शारदा के मन में भी कोई बात है... कहीं काँटा लगा है, इसके मानस में भी पीड़ा का आभास होता है।

और उस अवस्था में कि जब आप की छोटी सी बात कहने के बाद शारदा अप्रत्याशित रूप से गम्भीर हो गयी, फिर वहाँ से उठ कर चल पड़ी। तो उसे चाय का प्याला उठाते देख एकाएक मधुकर ने अपने मन में उठ आई बात ली—'शारदा देवी संयोग की बात है कि इस अपरिचित स्थान पर तुम मिलीं तो सदाशयता के साथ यह चाय···'

किन्तु इतना सुनकर तो वह शारदा फूट पड़ी—'हाँ मधुकर जी, इस सदाशयता का दूसरा नाम ही पाप है।'

'ओह, इतनी बड़ी बात कह दी तुमने !' मधुकर ने उसे रोका और कहा—'तनिक ठहरिये तो! अभी चली मत जाइये, तुमने बात कही, तो मैं संकट में पड़ गया। चाय की गर्मी और लड्डू की मिठास पाकर मैं जिस प्रकार आभारी बना, तो अब लगता है कि उसमें कुछ कड़वाहट भी आ गयी, जैसे तलखी ...बताइये क्या आया तुम्हारे मन में, कोई जीवन का गहरा विचार उठ आया।' वह बोला, 'देखिये, मैं साहित्यक रचनायें कर लेता हूँ पर जीवन का संघर्ष, उत्थान और पतन भी पग-पग

पर अनुभव कर सका हूँ तभी कुछ लिख पाता हूँ ! मैं धनिक नहीं हूँ, परावलम्बी हूँ । इसलिए जब ऐसी बात पाता हूँ तो सचमुच ही सिहर उठता हूँ । उस कहानी को मैं जैसे अपनी देख पाता हूँ।' मधुकर की बात सुनते हुये ही शारदा ने एक-एक कर सभी प्याले उठा लिये । तभी उसने सहज भाव से मुस्कराया,'आप लेखक हैं, भावनावादी हैं ।' उसने कहा—'परन्तु इस जीवन के अन्तराल में किसने क्या छुपा रखा है, यह क्या सहज में समझा जा सकता है। उसे तो भगवान भी कठिनाई से देख पाता है ।' कहते हुये शारदा मुड़ गयी । वह अपने कमरे की तरफ बढ़ गई ।

उसी समय मधुकर ने हाथ की जली हुई सिगरेट फेंक दी,वह उठ कर तैयार होना चाहता था । उसके आने का जो उद्देश्य था, उसको पूरा करने के लिये मौसम भी साफ हो गया था । उसने चाहा कि उठे, स्नान करे और कपड़े बदले, फिर शाम तक के लिये बाहर जाये, वहाँ के जितने दर्शनीय स्थान हैं, उन्हे देखे । प्रकृति का विराट रूप हँसता-खेलता हुआ अपनी आँखों के सामने देख पाये । किन्तु अपने उस लम्बे प्रोग्राम को कार्यान्वित करने की बात भूल मधुकर चारपाई पर सीधा पड़ गया । उसने कम्बल भी अच्छी तरह ओढ़ लिया और तब मन में आई हुई बात को लेकर बोला—जरूर इस शारदा के मानस में भी कुछ छुपा है...कोई रहस्य भरा है ! किन्तु वह रहस्य क्या है । यह जानने की उत्सुकता को ले, मधुकर इतना उस विचार में खो गया कि सचमुच उसे इस बात का ध्यान नहीं रहा कि उस दिन उसे कई बातें पूरी करनी हैं । उस पहाड़ का अधिकांश भाग देख लेना है । प्रकृति के दर्शन करने हैं । ऊँचाई से गिरते हुए झरने देखने है।

फलस्वरूप, इस के विपरीत उसके मन में बार-बार यह बात आती कि अभी शारदा के कमरे मे जाये और उससे जानने का प्रयत्न करे कि आखिर उसके मानस का वह कैसा हाहाकार है कि जो उसे आन्दोलित करता है। वह अब किस नगर से आई है । उसका पति

तरह का व्यवसाय करता है। जब उसका पति यहाँ नहीं तो वही
यहाँ क्यों है, इस अवस्था में एकाकी । क्यों !
किन्तु मधुकर में इतनी शक्ति नहीं थी कि वह उस तरुणी के
रे में जा पहुँचे। उसे स्वयं इस वात का आश्चर्य था कि यह शारदा
म की युवती इतनी सुन्दर है, खुले दिल की है कि मान न मान,
तेरा मेहमान कहावत के अनुरूप मेरे पास आ गयी और लगी
धर-उधर की वातें करने । चाय ले आई, नाश्ता ले आई ।
वह वोला शारदा चतुर है, जितनी वह वाहर है, उतनी ही अन्दर भा
है, गहरी है । सचमुच यह तरुणी हलकी नहीं है ।

चुँकि मधुकर प्रथम वार पहाड़ी स्थान में पहुँचा था, इस लिये उसके मन में इस वात का भय भी पैदा हुआ कि ऐसे स्थान में धनिक वर्ग आता है, तो वासना की प्यास वुझाने का साधन भी यहाँ जुटा लेता है। कहीं उन्हीं में से एक यह शारदा तो नहीं .. इस धर्मशाला में अपना डेरा डाल कर वैटती हो और यहाँ आने वाले को...।

उसी समय मधुकर चौंक गया। वाहर खड़ी शारदा कह रही थी आप सो रहे हैं। कैसा सुहावना मौसम आया है, उठिये घूम आइये, वाहर इस पर्वतीय स्थान में !'

मधुकर ने वात सुनी और एक आशावादी के समान उठ पड़ा। वह वाहर जाने की तैयारी में लग गया ।

२

मधुकर सैलानी तो था ही, फाकेमस्त भी था। वह गोरे रंग का छरहरा जवान किसी के लिये भी आकर्षण का विषय था। कदाचित यही कारण था कि जब किसी कवि-सम्मेलन में कविता-पाठ करते हुए अपने मधुर स्वर का उच्चारण करता, तो दर्शक-समाज स्तब्ध और मूक बन जाता। इसलिये यह भी स्वाभाविक था कि समाज की युवतियाँ उसे घेरतीं, हस्ताक्षर लेतीं और उसकी कविता पर साधुवाद देतीं।

किन्तु समाज से स्नेह और प्रेरणा पाने वाला मधुकर भाग्य का धनी नहीं था। घर में न माँ-बाप थे, न कोई अन्य ऐसा आत्मीय था कि जिसके आकर्षण से वह पितृ-गृह को अपना घर मानता। फलस्वरूप, मधुकर प्रायः बाहर ही रहता। अनेक नगरों में रहा। दूसरे प्रान्तों में रहा। इस प्रकार परिस्थितिवश वह सैलानी भी बना और अलमस्त भी। वह आदमी अभी अविवाहित था। नारी का आकर्षण उसको जहाँ प्रिय लगता, वहाँ अलभ्य और अद्भुत भी। मसूरी की उस धर्मशाला में कि जिसका सम्बन्ध एक विशेष सम्प्रदाय से था, मधुकर जब ठहरने के लिये स्थान पा गया तो वहाँ पड़ोस के कमरे में बसने वाली शारदा नाम की युवती उस ठण्डे नगर में उसे ऐसी प्रतीत हुई कि जैसे आग की अँगीठी।

दिन भर के बाद दीये जले जब मधुकर अपने स्थान पर लौटा तो उसे देखकर अचरज हुआ कि इस धर्मशाला का रंगीला

मैनेजर अपने कमरे में एक कीमती शाल ओढ़े बैठा था और उसके पास ही शारदा भी थी कि जो खिलखिलाती हुई हँस रही थी। मधुकर उस कमरे के सामने से निकला, तो तभी मैनेजर ने उसे आवाज दी, वह लौट पड़ा।

मैनेजर ने कहा—'आइये, बापू साहब।'

मधुकर कमरे में प्रविष्ट हुआ। कुर्सी पर बैठ गया। मैनेजर और शारदा की ओर देखकर मुसकरा दिया। उस समय, उसकी आँखों ने एक बार फिर उस शारदा को समझ लेना पसन्द किया कि जो अपने कमरे से आकर उस मैनेजर के पास बैठी थी। क्योंकि प्रातः ही, जब मधुकर शहर जा रहा था तो उस मैनेजर को देखकर उसके मन में यह बात आई कि आदमी रँगीला है, रसिक है। उसकी जुल्फों का कढ़ाव, आँखों में सुरमा और मुँह में रखी पान की गिलोरी, तिस पर गले में पड़ी सोने की जंजीर, जो खास तौर से कुरते के ऊपर कर ली गयी थी, ये सभी इस बात के द्योतक थे कि वह व्यक्ति सम्पन्न भी था और दिल-फेंक तमाशा देखने वाला भी! वैसे आयु का प्रौढ़।

मधुकर की मुसकान को देख, वह मैनेजर स्वयं भी मुसकराया और अपनी सुरमई आँखों से हँसा। उसी अवस्था में उसने कहा—'अभी शारदा जी ने बताया कि आप कवि हैं। कविता करते हैं।'

मधुकर ने कहा, 'जी हाँ, तुकबन्दी कर लेता हूँ।'

मैनेजर ने कहा—'हाँ-हाँ, तुकबन्दी ही सही। हम से तो अच्छे हैं आप।'

मधुकर ने देखा कि कमरा सजा है। जिस तख्त पर मैनेजर बैठा है, उस पर कीमती कालीन बिछा है। दीवारों पर चित्र टँगे हैं, हिरण और शेर के सिर भी लगे हैं। इस रूप में उस कमरे को और उसके स्वामी को देख, मधुकर स्वयं रसिक भाव से भर गया

और तभी मैनेजर की बात सुनकर बोला—'क्या नपी-तुली बात कही आपने। इस दुनिया में सब यही समझते हैं। सभी किसी न किसी प्रभाव से ग्रस्त रहते हैं।' यह कहते हुए उसने हाथ में ली हुई सिगरेट में अन्तिम कश खींचा और उसे छोटी टेबिल पर रखी ऐश-ट्रे में छोड़ दिया।

शारदा बोली—'मधुकरजी, आप शास्त्रीजी का गाना सुनें तो दंग रह जायें। कमाल का राग अलापते हैं। रोज ही सुबह को अपना तानपूरा लेकर बैठते हैं।'

मधुकर ने कहा—'मैंने वह कमरे में रखा तानपूरा देख लिया। शास्त्री जी सितार भी बजाते हैं।'

मैनेजर ने, जो कि शास्त्री के नाम से प्रसिद्ध था, तुरन्त कहा—'बाबू, शौक किया तो, पूरा नहीं किया। कोई उस्ताद नहीं मिला। इस पर्वत पर ऐसा सहारा नहीं दिखाई दिया।'

मधुकर ने कहा—'आप भाग्यशाली हैं। सुन्दर स्थान पर रहते हैं, प्रकृति के दर्शन करते हैं।'

शारदा बोली—'शास्त्रीजी बड़े उदार हैं, सम्पन्न हैं।'

मधुकर ने कहा—'हाँ हाँ, वह तो दिखायी देते हैं।'

शास्त्रीजी बोले—'कविजी, यह स्थान आपका है। किराये की चिन्ता न कीजिये। कोई कष्ट हो, तो बताइयेगा।'

शारदा ने हँस कर कहा—'ये कविजी बड़े आलसी हैं। सुबह चाय की इच्छा लिये बैठे रहे। मैं इधर न पहुँचती, तो वर्षा की बूँदें ही गिनते रहते।'

शास्त्री ने मधुकर की ओर देखकर कहा—'कल सुबह मेरे साथ चाय पीजिये।'

मधुकर ने कहा—'आपकी कृपा है।'

शास्त्री बोला—'नहीं कल जरूर! क्यों शारदा जी, आप भी?'

शारदा ने कहा—'मैं तो नित्य पीती हूँ। कल भी

जीवन पर। अब ठण्ड बढ़ गयी है। मैं पढ़ूँगी। कहिये, आपने भोजन तो किया?'

मधुकर ने कहा—'जी हाँ, भोजन किया। आज खूब घूमा तो भूख भी खूब लगी।'

शारदा आगे बढ़ गयी। अपने बिस्तर पर पड़े-पड़े ही, मधुकर ने सुना कि शारदा ने कमरा खोला है, बत्ती जलायी है और वह कुछ गुनगुना रही है। वह किसी भक्त कवि का कोई पद गा रही है। उसका स्वर मीठा है, उसमें लोच है, दर्द है। तभी उसके मन में आया कि वह स्वयं भी शारदा के पास जा पहुँचे, उससे गाने के लिये कहे। फिर वह भी अपनी कविता का आलाप करे, और उस पर्वतीय स्थान में कि जहाँ उस समय पूर्ण निस्तब्धता थी, तो वह अपनी ऊँची आवाज को गुँजा देगा। उस पर्वत पर आने का इससे अच्छा सुयोग उसे और कब मिलेगा कि वह गाये और उस सुन्दरी शारदा को भी आमन्त्रित करे।

किन्तु मधुकर कवि था, गा सकता था, दूसरे को गाने के लिये नहीं कह सकता था, यदि वह इतना व्यवहार-पटु होता, तो क्या उस रात के प्रहर में, उस निःशब्द स्थान में उस मुसकराती हुई शारदा को देख मचलते पंछी की तरह अपने पर न फड़फड़ाता और गुनगुना न देता। लेकिन उसने तो शारदा से यह भी नहीं कहा कि आओ, बैठो। कुछ अपनी कहो, कुछ दूसरे की सुनो। वह तो जैसे निर्विकार भाव से उसकी ओर देखता रहा, देखता रहा।

तभी मधुकर के मन में आया कि उठे, बत्ती बुझा दे। कमरे का दरवाजा बन्द कर दे। परन्तु उसी समय शारदा उस कमरे के द्वार पर फिर आ खड़ी हुई और बोली, 'मधुकर जी, आइये। आपको एक बात दिखाऊँ। आपको बताऊँ कि इस दुनिया की रीत क्या है··· परतीति क्या है!'

मधुकर असमंजस में पड़ा गया। सच्चाई यह थी कि वह प्रातः से

ही उस नवयुवती को कि जिसकी आयु तीस तक नहीं पहुँची होगी, आश्चर्य और विस्मय भरी नदी समझने लगा था। और जब उसे मैनेजर के पास बैठी पाया, तब तो उसका माथा ही ठनक गया। जो किंचित् अनुराग उस शारदा के प्रति उसके मन में पैदा हुआ था, वह काफूर की तरह उड़ गया। अतएव, उसने शारदा की बात सुनी, तो बोला—'क्या है···हाँ··· ?'

शारदा ने कहा—'उठिये तो ! डरिये नहीं !'

मधुकर उठा, बाहर गया। शारदा ने कुछ आगे ले जाकर अँधेरे में पड़े, उस वृद्ध को इंगित करते हुए कहा—'यह वृद्ध है, भिखारी है, जानते हैं, अब यह क्यों यहाँ आ पड़ा है। कम्बख्त शराब पी आया है। यह कभी भी इस प्रकार आकर पड़ जाता है।'

मधुकर ने कहा—'तो यह शराब पी आया है। अभी तो यह आया था और कह रहा था कि भूखा है। मैंने एक आना दे दिया था।'

शारदा बोली—'देखिये, वह एक आना भी पड़ा है। यह अब ऐसे ही पड़ा रहेगा। यहाँ से सुबह जायेगा। भिक्षा में जो कुछ पाता है, उसकी शराब पी आता है।'

'राम-राम!' एकाएक मधुकर ने कहा—'तब तो यह भिखारी गलित कुष्ठ का रोगी है। इसके शरीर से पीप चूता है। यह तो स्वयं ही अपने लिये दुष्वान्त बना है। इस जीवन को मार देने पर तुला है।'

इतना सुनकर, शारदा एकाएक गम्भीर बन गयी। उसी अवस्था में बोली—'आपका कहना भी यथार्थ है। ऐसी अवस्था में यही कहा जाता है। किन्तु इस भिखारी के मन में कैसा सन्ताप भरा है, कोलाहल है, उसे क्या किसी ने सुना है या देखा है ?'

शारदा ने जैसे एक पहेली मधुकर के समक्ष रख दी। तो वह उसी पर झुकता हुआ बोला—'तो क्या···'

किन्तु शारदा ने अपनी बात को स्वयं ही कह दिया, पहेली नहीं रहने दिया, 'बाबू आप तो पहिली बार आये हैं न इस स्थान में, प्रकृति

न्दर्य देखने। पर इस नाटकीय रंगमंच पर लोग किस प्रकार
न करते हैं, अपनी विलासिता की प्यास को वुझाते हैं, वह क्या
ता से समझ सकते हैं, आप!'

मधुकर बोला—'मैं तो नया आदमी हूँ। वैसे सुनता आया हूँ कि
पहाड़ों पर लोग अपनी गर्मियाँ विताने इसी लिये आते हैं कि
हाँ मनोरंजन के साधन हैं। ऐसे लोग नारी की आवरू पर, उसके
नारीत्व पर चाँदी का ठीकरा मारते हैं और उसे लूट लेते हैं।'

उस समय उस सलोनी और मधुर शारदा के मुँह पर हँसी नहीं
थी। रोष था, पीड़ा थी। वह अपने माथे में अनेक वल डाल कर बोली,
'इतना भी हो तो गनीमत! लोग इससे आगे भी पैर वढ़ाते हैं। यहाँ
के इन्सान का मर्मस्थल विदीर्ण कर देते हैं। और इस इन्सान के भाग्य
में जो जहरीला पदार्थ भरा है, लोग उसे यहाँ आकर वहाते तो हैं, लेकिन
ऐसा समाज यह देखकर भी प्रसन्न होता है कि उस जहरीले धुँए में
घुट कर आदमी किस तरह तड़पता है, अपना दम तोड़ता है!'

उस समय चाँद की चाँदनी चारों ओर फैल रही थी, कोहरा भी
धीरे-धीरे बढ़ रहा था। सर्दी तेज हो गयी थी। तीर की तरह हव
चल रही थी। मधुकर काँप रहा था। शारदा भी काँप रही थी। किन
उस युवती ने ठीक भावना पर टिक कर अपनी वात कही, वह अ
धिक कपँली तो थी ही, तीव्र भी थी।

वह तभी बोली—'वावू, यह बूढ़ा लुट चुका है। शराव प
अपनी पीड़ा छुपाता है। देर हुई कि कोई शहरी वावू उसकी ल
को उड़ा कर ले गया। यह वूढ़ा अपनी उसी लड़की को पाना
है!'

एकाएक मधुकर के मुँह से निकला—'ओह!'

३

यद्यपि यह बात प्रायः सभी पर लागू होती है कि मनुष्य रूप में किसी को समझना आसान नहीं। किन्तु धर्मशाला का मैनेजर जोकि 'शास्त्री' के नाम से प्रसिद्ध था, उसके सम्पर्क में आने वाले बहुत कम व्यक्ति इस बात को जानते थे कि उसका विकास कहाँ से हुआ। वह किस जाति का था और कहाँ तक पढ़ा-लिखा था। उससे सम्बन्धित व्यक्तियों को इस बात का भी पता नहीं था कि वह उस धर्मशाला में वेतन-भोगी मैनेजर था अथवा वास्तविक मालिक था। यदि उस स्थान का कोई और मालिक था, तो वह कौन था, खोजियों ने इस बात का एक बार भी पता नहीं चला पाया। और यह स्पष्ट था, सभी को दिखायी देता था कि वह शास्त्री अकेला था। केवल एक नौकर उसके पास था, जो उसकी सेवा में लगा था। वही उस धर्मशाला में आये हुए आदमियों से किराया प्राप्त करता था।

जब दूसरे दिन प्रातः में मधुकर उस शास्त्री के यहाँ पहुँचा, तो वह यह देखकर चकित हुआ कि शारदा पहिले से वहाँ बैठी थी। शास्त्री मधुकर की प्रतीक्षा में था।

तभी चाय आयी, मिठाई भी। उसी समय शारदा ने कहा—'मैं जब अपने कमरे से चली, तो आपका कमरा बन्द था।'

मधुकर ने कहा—'मैं स्नान करने गया था।'

शारदा बोली—'जी नहीं, आप सो रहे थे। कमरा अन्दर से बन्द था।'

सुन्दर शास्त्री हँसा—'अजी साहब, आप समझते क्या हैं, यह शारदा देवी आपकी चौकीदार है, प्रत्येक गति-विधि पर निगाह रखती है।'

मधुकर ने कहा—'यह तो अच्छा है।'

किन्तु शारदा ने आतुर बनकर कहा—'मैं प्रातः जल्दी उठती हूँ। घूमने जाती हूँ। शास्त्री भी जाते हैं। अभी कुछ देर पूर्व हम दोनों लौटे हैं।'

बात सीधी और साफ थी कि जिसने अनायास ही मधुकर के मन में गुदगुदी पैदा कर दी। वह पिछले दिन की अपेक्षा और अधिक विस्मय से भर गया। शास्त्री और उस शारदा का सम्बन्ध क्या है, मानो एक यही विचार उसके मन को उद्वेलित करने लगा।

उसी समय चाय पीते हुए, शास्त्री ने शारदा को सम्बोधित किया, 'इन बाबू को आज तुम झरने पर ले जाओ। तुम भी घूम आओ।'

शारदा ने कहा—'इतनी दूर!' वह मधुकर की ओर देख कर बोली—'कहिये, चलेंगे आप! कैम्पटी फॉल नाम है, उस झरने का। यहाँ से सात मील दूर!'

मधुकर ने कहा—'तुम चलोगी, तो मैं चल दूँगा।'

शास्त्री ने कहा—'यह शारदा देवी गाती अच्छा है। आप कवि, यह गायिका, रास्ता मजे में कट जायगा।'

हँस कर शारदा ने कहा—'अब गाया नहीं जाता।'

शास्त्री ने कहा—'खूब गाया जाता है। मुझे पता है।'

चाय का कार्यक्रम समाप्त हुआ, तो मधुकर ने सिगरेट सुलगाया। एक सिगरेट शास्त्री की ओर भी बढ़ गया। किन्तु शास्त्री ने कहा, 'मैं पान खाता हूँ। सिगरेट नहीं पीता।' वह बोला, 'आज आप घूम आइये। शाम को भोजन भी मेरे साथ कीजिये। तब बताइयेगा, प्रकृति की सुरम्य घाटी में जाकर आपको क्या सूझा। शाम को गाने का भी

प्रोग्राम रहेगा।' यह कहते हुए शास्त्री उठ खड़ा हुआ। मधुकर भी उठ लिया।

जब वह और शारदा अपने कमरे की तरफ चले, तो तभी शारदा ने बताया कि अब मैनेजर स्नान और भजन-पूजन करेगा। वह बोली—'तो आप चलेंगे, कैम्पटी फॉल पर !'

मधुकर ने कहा—'देखिये, मैं तो आया ही इसलिये हूँ कि यहाँ कुछ स्थान देखूँ। तुम चलोगी, तो आभार मानूँगा।'

शारदा बोली—'आभार की क्या बात ! हाँ, यह बनावटी बात क्या ! आपके साथ मेरा भी घूमना हो जायेगा।' उसने कहा—'आप बैठिये, मैं अभी जाती हूँ। दूसरी धोती बदल आती हूँ।'

जब शारदा लौटी तो मधुकर ने अपना कमरा बन्द कर दिया। वह चल दिया। उस समय शारदा एक सफरी आदमी के रूप में उसके साथ थी। पैरों में चप्पल की जगह किरमिच के जूते थे। कन्धे पर झोला। जब वे दोनों उस बस्ती से बाहर हुए, सघन वृक्षों और जन-हीन पथ पर चले, तो तभी शारदा ने कहा—'कल से ही मेरे मन में एक बात है कि आपने जल्दी ही मुझे 'तुम' से सम्बोधित किया। इससे सचमुच ही मुझे आत्मीयता का आभास मिला।'

मधुकर ने कहा—'मैं अनाड़ी हूँ, कुछ अव्यावहारिक भी। अभ्यास की बात है, वैसे मुझे तुम्हें आप ही कहना चाहिये था।'

शारदा हँसी—'आप के पास कहने के लिये और कोई बात नहीं, क्या यह समझूँ कि आपको कहना है, तो उसी की यह भूमिका है ! वैसे मेरा मत है कि आप—'

एकाएक शारदा चीख उठी। किन्तु उसकी चीख सुनते ही, मधुकर स्वयं किंकर्तव्य-विमूढ़ बन गया। वह शारदा को पूरे बल के साथ अपनी गोद में उठा कर भाग लिया, जिसका परिणाम यह हुआ कि वह कुछ

दूर जाते ही एक पत्थर से टकरा गया। दोनों गिर गये। एक-दूसरे के ऊपर गिर पड़े। मधुकर के लिये सन्तोष की बात यह हुई कि शारदा बच गयी, किन्तु वह स्वयं चुटीला बन गया। एक पत्थर से उसका सिर टकरा गया। माथे से कुछ मामूली सा खून भी निकल आया।

यह देख शारदा ने अपनी साड़ी का पल्ला फाड़ दिया और उसकी पट्टी को मधुकर के माथे पर बांधने का प्रयत्न किया।

तुरन्त मधुकर ने कहा—'भगवान की कृपा हुई कि तुम्हारा पैर…'

शारदा बोली—'मेरा विश्वास है कि वह साँप नहीं, अजगर था। बहुत भारी था। तुम न उठाते, तो मेरा पैर…'

मधुकर बोला—'उस साँप ने तुम्हें देखकर ही मुँह खोला था। तुम्हारा पैर उसके मुँह पर पड़ जाने वाला था।'

शारदा ने साँस भरी—'हाँ, मधुकर जी, वह मेरा पैर पकड़ लेता। तब क्या छोड़ता!' तुरन्त ही उसने व्यस्त स्वर में कहा—'पर होता क्या! मुझे पकड़ता और खा जाता यही न! यह अच्छा ही था। अब मेरी मौत की घड़ी तो आई थी, परन्तु …'

उसी समय मधुकर ने अपना गरम हाथ उस शारदा के हाथ पर रखा और कहा—'ऐसा क्यों सोचती हो। इस जीवन को क्यों तुच्छ मानती हो। देखो अब तुम मुझे 'तुम' से सम्बोधित कर चुकी हो, तो उसी से सम्बोधित करो।'

शारदा ने कहा—'तुम्हें कष्ट हुआ। तुम्हारा सिर भी चुटीला बन गया।'

मधुकर खड़ा होकर बोला—'आओ चलें। मेरा ध्यान तुम्हारी साड़ी पर है। बेकार ही तुमने नई साडी को फाड़ दिया।'

शारदा ने कहा—'लगता है, हम शगुन देखकर नहीं चले। मेरा तो उत्साह ही मन्द पड़ गया।'

मधुकर बोला—'तो लौटें। फिर धर्मशाला चलें।'

शारदा बोली—'यह भी क्या अच्छा रहेगा। वह शास्त्री भी मजाक

करेगा। चलो, अब आगे बढ़ें। शेष रास्ता भी पार करें। वह स्थान सचमुच ही दर्शनीय है। पूर्ण प्राकृतिक है।'

उस समय मधुकर के मन में बात आई और बोला—'हाँ, शारदा जी, यह मैनेजर भी अजीब आदमी है। मैं तो एक दिन का मुसाफिर हूँ। न उस धर्मशाला में, पर वह मेरे प्रति ही '

शारदा ने कहा—'मेरे मन में बात थी कि तुम इसी प्रकार का प्रश्न मुझसे करोगे। यह स्वाभाविक भी है। परन्तु मैं इतना ही कह सकती हूँ कि यह शास्त्री नेक आदमी है।'

बात सुनते ही आतुर बनकर, मधुकर बोला—'मेरा यह तात्पर्य नहीं कि वह चरित्र का खराब है। इससे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं। मेरे मन में तो बात आई कि वह बड़े ठाठ से रहता है। खर्चीला लगता है। देखो न आज चाय पर ही ..'

शारदा बोली—'मैनेजर के पास पैसा है। वह उदार है। उस धर्मशाला में कोई ऐसा मुसाफिर आता है कि जो उसकी दृष्टि में अच्छा हो तो वह उसका स्वागत करता है।'

इतनी बात सुनकर मधुकर चुप रह गया। वह कदम से कदम मिला कर चल रहा था, परन्तु लगता यह था कि उसके मन में कोई और बात भी थी, जिसे वह कह नहीं पा रहा था। उसे मुहँ में लिये था।

तभी शारदा बोली—'मेरा अभी तक साँस नहीं रुका। ऐसा लगता है कि वह साँप—अजगर..'

मधुकर ने फिर एकाएक ही शारदा का हाथ पकड़ लिया और कहा—'इतना डर है।'

शारदा बोली—'स्वाभाविक है।' उसने कहा—'तुम साथ न होते, तो निश्चय ही हाँ ..'

यह सुनते ही मधुकर का स्वर एकाएक भारी हो गया। उसने कहा—'शारदा देवी, इस जिन्दगी की हाट में जाने कितने मिलते हैं और चले जाते हैं। कुछ तो सचमुच ही, इस जीवन के क्षेत्र में आश्चर्य, विस्मय

र हर्ष का वातावरण पैदा कर जाते हैं। आज तुम मिली हो, तो मुझे ह अनुभव हुआ है। कैसा संयोग कि कहाँ की तुम, कहाँ का मैं कि स जीवन-पथ पर इस प्रकार...'

शारदा ने कहा—'ओह, तुम सचमुच ही अटूट भावनावादी हो। लगता है कि मानव की अनुभूति से भरे हो।'

तुरन्त ही, मधुकर ने कहा—'भला इसके अतिरिक्त हमारे जीवन में और क्या है! भावना पर ही तो हमारा यह भवन टिका है। यही सम्बल है, आधार है!'

मानो कहीं दूर-दूर की बात सोचते हुए, एकाएक शारदा ने कहा—'हाँ यही! सच! संस्कार की बात है कि हम-तुम आज आ गये, इस निर्जन-पथ पर! तुम न होते तो वह साँप मुझे खा जाता। सोचती हूँ कि वह विशालकाय अजगर तो, मुझ समूची को सटक जाता।'

उस समय मधुकर अतिशय गम्भीर बना था। जब शारदा ने बात कही, तो वह एकाएक ही रुक कर एक पत्थर पर अपने हाथ की बेत मारता बोला—'पर लोग इसे मानते नहीं, स्वीकार नहीं करते। मगर यही है, जीवन का सत्य यही!' कहते हुए उसने शारदा के कन्धे प हाथ रखा—'क्यों, है न यही बात!'

शारदा ने सरस मुस्कान के साथ कहा—'हाँ यही।'

तब वह फिर चल पड़ा। शारदा भी चल दी। उसी अवस्था उसने फिर कहा—'और शारदा जी मैं तुम्हें इसके लिये भी साधुवाद हूँ कि तुम एक अपरिचित के साथ यों इस लम्बे रास्ते पर चढ़ हो, जरूर वह मैनेजर बुद्धिमान है। उसे तुम पर भरोसा है। उसने देखकर भी यही समझ लिया है कि मैं एक अनाड़ी हूँ। इस जीव डगर पर नया हूँ। दुनिया के आदमियों की तरह से चालाक मक्कार नहीं।'

इतना सुनकर शारदा हँस पड़ी—'वाह वाह! क्या खूब, अप मियाँ मिट्ठू बने हो!'

किन्तु तुरन्त ही मधुकर ने अप्रतिभ बनकर कहा नहीं, 'तुम्हारी नहीं, मत्य यही है। मेरे साथ तुम्हारा कोई अनिष्ट नहीं। तुम्हारी भावना और अधिकार मेरे साथ मिलते हुए सुरक्षित हैं।'

इसी समय एक पड़ाव आया। शारदा ने कहा, 'कुछ ठहरोगे नहीं। मैं थक गयी। कम्बख्त, उस अजगर ने मेरी शक्ति और घटा दी। इस पत्थर पर बैठ लें।'

हँस कर मधुकर बोला—'यहीं तो वह बड़ा साँप पत्थर के नीचे से निकला था। बड़ा चालाक था, वहीं छुपा बैठा था। किसी राहगीर की ताक में था। देखा शिकार आ रहा है, तो तुरन्त मुँह बाहर निकाल कर आगे आ गया।'

शारदा बोली, 'अब उसका जिक्र न करो। छाती में कम्पन पैदा होता है। वह तो एक हवा थी, निकल गयी। मेरे समूचे मानस को झकझोर गयी।

मधुकर ने कहा, 'ऐसे ही जीवन में अन्य झोंके आते हैं, वे इन्सान को ऊपर उठा जाते हैं, नीचे गिरा जाते हैं।'

बरबस ही शारदा के मुँह से निकला, 'हवा ...उसके झोंके... हे राम!' यह कहते हुए उसने अपना मुँह मधुकर के कन्धे पर रख दिया। उस अवस्था में ही उसने फिर कहा- 'मधुकर जी, लोग कहते हैं कि यह जीवन बड़ा सरल है, सुगम है, मैं ऐसा नहीं मानती। मैं तो इसे नितान्त विषम मानती हूँ।

मानो अनजाने मधुकर के मुँह से निकला, 'हाँ, शायद...

शारदा ने अपना सिर उठा कर, मधुकर की ओर देखते हुए कहा - 'शायद नहीं; जरूर! यही सत्य है।'

मधुकर ने कहा—'ऐसा नहीं है।' फिर आप ही बोला, हाँ, हाँ, कहा तो!' उसने कहा, 'परन्तु ऐसा विचार सभी के लिये नहीं। दुःखी के लिये है। तुम क्या हो, यह बताओ, अपना

परिचय दो, तो मैं अपनी राय निर्धारित करूँ।'

शारदा ने कहा—'अर्थात मैं कैसी नारी हूँ। मैं विवाहित हूँ इसलिये लड़की तो हूँ नहीं, पर वैवाहिक जीवन पाकर भी कैसी बनी हूँ।'

जैसे अनजाने ही, मधुकर के मुँह से निकल पड़ा 'हाँ, यही !'

'और, तुम भी वही हो मधुकरजी, जो और लोग हैं। दिखता है, समूल नहीं हो।' यह कहते हुये शारदा बोली, 'आओ चलें।' तभी चलते हुए उसने कहा—'अभी बात तो चली कि संस्कार और संयोग जीवन में बहुत बड़ा काम करते हैं। सो मैं भी उसे मानती हूँ। मैं तुम्हारी भावना समझती हूँ। धीरज रखो, तुम मिले हो, तो भ्रम में नहीं रखूँगी, सभी कुछ बता दूँगी।'

किन्तु जो बात मधुकर के मन में पहले भूल से उठी थी, जब वह किनारे पर आ लगी, स्पष्ट होने लगी, तो तभी वह बोला—'न, न, मुझे गलत मत समझो, शारदा देवी ! मुझे कोई भ्रम नहीं।'

शारदा बोली—'मैं भी कहती हूँ कि मेरे मन में कोई दुख नहीं, दुर्भाव नहीं। क्योंकि मैंने समझ लिया है, कि इस जीवन की हाट में सौदे किये जाते हैं। किसी वस्तु के दाम अधिक उठते हैं, किसी के कम। समझ लीजिये, मेरे दाम कम उठे हैं। खरीद से भी कम !'

मानो क्षुब्ध बनकर, मधुकर बोला—'कैसी बात करती हो। क्या बच्ची बनी हो!'

लेकिन शारदा के मन में तो इस समय जैसे कोई चमक पैदा हो गयी हो, उसे पीड़ा मिली हो। उसी से प्रभावित होकर वह बोली—'नहीं बाबू, मैं बच्ची या अन्जान होती, तो ठीक थी। पर अब जवान हूँ, मैं जीवन की भरी दोपहरी में खड़ी हूँ,

तो सभी कुछ समझने में समर्थ हूँ। जितना सफर तय किया उसमें वास्तविकता की समझ आई, अब जितना शेष है, उसे भी देख लेने के लिये मैं प्रस्तुत हूँ । मेरे जीवन में तुम क्या खोजने की बात सोच-समझ सकते हो यह तो स्वयं जानो पर मैं इतना कह देती हूँ कि मेरे पास कहने को कुछ नहीं है। जो कुछ है, वह भी वृथा है, मेरी दृष्टि में हो कूड़ा और बेकार हो गया है।'

मधुकर ने साँस भरी और छोड़ दी । उसी अवस्था में उसने कहा – 'यही किस्सा सबके साथ है। शायद मेरे साथ भी।'

उसी समय यात्रा का लक्ष्य सामने आ गया।

४

रात के सन्नाटे में, जब कि मसूरी शहरी प्राय: सो चुका था, वह समय सचमुच ही स्मरणीय बनकर रह गया कि जब बाहर बारिश हो रही थी और अपने कमरे में बैठा हुआ शास्त्री भावातिरेक में एक सितार पर सूरदास का पद उच्चारण कर रहा था।

"बाँह छुडाये जात हो, दीन जान के मोय,
हृदय से जब जाओगे, तब जानूँगा तोय।"

गाने के साथ शास्त्री की आँखें भर आई थीं, वे आँसें उसके गालों पर निकल आईं। युवक मधुकर सोच नहीं सकता था कि वह शौकीन-मिजाज शास्त्री सूरदास के पद को गाते हुए इस प्रकार रो पड़ेगा। उसके लिये आश्चर्य का और कौतुक का विषय यह भी

कि पास बैठी हुई शारदा भी रो पड़ी । कई घन्टे की बैठक बाद जब वे लोग उठे, तो वहाँ से चलते हुए मधुकर ने विनम्र कर कहा—'इस मसूरी के प्रवास में आपका मिलना मेरे ये वरदान हो गया । शारदाजी का गाना भी दिल को गया ।'

उसी समय शास्त्री ने कहा—'यह शारदा दुखी है । एकाकी है । यह मानसिक रूप से रुग्ण है ।'

मधुकर ने शारदा की ओर देखा, उसने कहा—'हम दोनों तो आज साथ-साथ रहे । जाने किस-किस विषय पर बोलते रहे । पर इन शारदाजी के मानस में कोई ऐसी बात है ..'

आतुर बनकर शारदा ने कहा—'ऐसी कोई बात नहीं ..सच नहीं !'

किन्तु उस समय शास्त्री गम्भीर था । उसका मुँह बाहर की ओर उठा था । वह आसमान से पड़ती बारिश को देखता हुआ बोला—'बाबू इस जगत में सब अपना आपा देखते हैं । अपने मन का मनोरथ पूरा करते हैं । पर किसी के मन में क्या भरा है, कितना कोलाहल है, इसे क्या लोग देखने का प्रयत्न करते हैं ।'

इस बात से मधुकर जैसे स्वयं लजा गया । शास्त्री का वह आक्षेप जैसे उसी के लिये था । अतएव वह बोल नहीं पाया । शास्त्री भी बात के अन्तराल में उतरकर खो गया ।

शास्त्री बोला—'देखिये कैसी बात है, आप ही की बात है यह शारदा देवी आपके साथ गयी और लौट आयी । आ दोनों ही युवा, समान आयु के, इतना लम्बा रास्ता पार करके एक-दूसरे के जीवन में नहीं उतरे, एक-दूसरे को समझने प्रयत्न नहीं कर सके । आश्चर्य !'

मधुकर ने कहा—'शास्त्रीजी मैं अव्यावहारिक हूँ । मूर्ख हूँ । यह हो सकता है कि स्वतः ही हीनता की भावना से भरा हूँ ।'

इतनी बात सुनकर भी, शास्त्री हँसा नहीं, वह अपने स्वभा

विपरीत बना हुआ जैसे पत्थर हो गया। उसी अवस्था में बोला—'कवि जी, आप भावनावादी हैं प्रबुद्ध हैं। परन्तु जिस आदर्श की बात आप करते हैं, बताइये, क्या वह सरल है, समझने योग्य है। धरती पर चलने वाला इन्सान आकाश के तारे गिने, चन्द्रमा की आभा का वर्णन करे, मैं इसे मान्य नहीं देखता। आप युवक हैं, तो कुछ काम कीजिये। समय की हीनता पर आघात कीजिये। इन्सान कितने अन्धेरे में है, इसे जाकर देखिये। उसकी पीड़ा समझिये। वर्णन करने के साथ व्यावहारिक भी बनिये। आपने झोपड़ी और किसान की कविता सुनायी। मुझे सचमुच बहुत अच्छी लगी।'

मधुकर ने कहा—'शास्त्री जी, मैं अपनी कमजोरी पहचानता हूँ। मैं मानता हूँ कि इन्सान के जीवन पर तैरना और बात है, उसमें प्रविष्ट होना और बात है। भला मैं अभी कितना चला हूँ।'

शास्त्री मुस्कराया, किंचित हँसा। उसी समय उसने द्वार के पास खड़ी शारदा की ओर देखा। उसने कहा—'इस शारदा देवी की एक बड़ी कहानी है। कठोर है। मैं उसे बताता, परन्तु शारदा स्वयं ही अपनी बात कहे, मैं इसी को श्रेयस्कर मानता हूँ।'

शारदा ने कहा—'मैं, मेरे पास क्या है! हाँ, कहने को क्या!'

किन्तु शास्त्री ने जैसे शारदा की बात नहीं सुनी, वह अपनी बात को लिये बोला—'इस युवती के साथ एक इन्सान ने, उसके समाज ने न्याय नहीं किया। मैंने तो इस शारदा को देखकर समझा है कि हमारा समाज, हमारे देश का इन्सान सचमुच ही नकटा है, कलंकित है, मानवीय भावना से परे है!'

मधुकर बोला—'यह तो पुरानी बात है। इस देश का इन्सान जितने वेग से धर्म और संस्कृति का नारा लगाता है, तो उसी अनुपात में अधर्म और अमानवीय भावों भरा है। इस धरती के इन्सान ने नारी को सताया है, ठगा है।'

शास्त्री ने कहा—'अभी तो आप रहेंगे ?'

मधुकर बोला—'जी, एक-दो दिन रहूँगा ?'

शास्त्री ने कहा—'चाहे तो और रहिये !'

मधुकर बोला—'आपसे परिचय हुआ है, तो फिर कभी आऊँगा। स समय देर तक न रुक सकूँगा।'

उसी समय शास्त्री ने शारदा की ओर देखकर कहा—'तो आज प्रजगर के मुँह में जाने से बचीं तुम ! इन मधुकर जी की कृपा से बची।'

शारदा ने कहा—'यही कहा जायगा।'

मधुकर ने कहा--'जी मैं तो नहीं, बचाने वाला कोई और था। मैं तो निमित्त मात्र था।'

उत्साह-भाव से शास्त्री ने कहा—'बेशक ! बेशक ! बचाने वाली दूसरी शक्ति थी। वही-पथ-प्रदर्शन करती...थी...' यह कहते हुए उसने जम्हाई ली और चुटकी बजाई।

मधुकर बोला—'अच्छा, अब आज्ञा दें। आप आराम करें।

उस समश बारिश भी बन्द हो गयी थी। मधुकर और शारदा वहाँ से चल दिये। मधुकर का कमर' पहिले पड़ता था, वह रुक गया और बोला—'शारदाजी, बैठोगी नहीं।'

शारदा ने कहा—'आप आराम कीजिये। मैं आज थक भी गयी हूँ।'

थका मधुकर भी था, परन्तु शास्त्री और शारदा के गाने सुनकर उ नव-जीवन प्राप्त हुआ। वह सुन्दर और सुहावना प्रहर अब वह सुगमता नहीं पा सकेगा। कपड़े उतार कर वह चारपाई पर पड़ गया और गया। लेकिन जब सुबह हुई, और मधुकर समय पर नहीं उठ स तो दिन चढ़े शारदा स्वयं उस ओर आई, देखा कि दरवाजा था। मधुकर चारपाई पर पड़ा था। पास पहुँचते ही, शारदा

कहा—'क्या आज उठने का विचार नहीं । देखो कितना दिन चढ़ गया ।'

मधुकर ने अँगड़ाई ली और अपनी सुन्दर भरी आँखों से समीप खड़ी शारदा को देख कर बोला, 'देर में सोया था, तो जाग नहीं सका । वैसे भी कल भ्रमण किया तो आज आराम करना होगा । फिर आने वाले कल में सफर ।' उसने कहा—'बैठो शारदा देवी ! रात मैं तुम्हारी ही बात पर अटका रहा । शास्त्री ने ठीक ही कहा, हम दोनों ने कल लम्बा सफर किया, परस्पर हँसे, बोले, साथ बैठ कर खाया, पर न तुम्हें मेरा पता चला और न मुझे तुम्हारा । वैसे याद तो पड़ता है कि तुमने बताया था कि पतिदेव भी यहां साथ थे । वे लौट गये । उनकी दुकान का हर्जा होता था ।' वह उठ कर बैठ गया और कहने लगा—'लेकिन कल शास्त्री ने जो कुछ बताया, वह तो बिलकुल ही विपरीत था । विस्मय से भरा था । जिसे सुनकर मैं लज्जित हुआ । सचमुच, यह मेरे लिये भी विचारणीय बन गया कि आखिर हम कैसे इन्सान हैं । हम में सामाजिक भावना का कितना विकास हुआ है । रात मैंने तो समझा कि मैं शून्य हूँ । जैसे इस दुनियादारी के व्यवहार से अनभिज्ञ । अतएव, मैं शर्मिन्दा हूँ. शारदा देवी !'

शारदा ने खड़े-खड़े ही मधुकर की लम्बी बात सुनी । यह उसने भी अनुभव किया कि यह मधुकर रात में अधिक नहीं सोया । सुबह आने पर सोया है । वह अपने आप बोली, यह भी अजीब आदमी है । अलौकिक है ।

तभी मधुकर बोला—'आओ बैठो न ! बैठो !'

शारदा ने उस ओर देखा और हँस कर कहा—'कल तुमने मुझे गोद में उठा लिया था उस अजगर से बचाने के लिये । तो अब क्या मुझे तुम्हारे पास बैठने में संकोच होता है । लो, बैठ जाती हूँ ।' यह कहते हुए वह मधुकर की चारपाई पर बैठ गयी ।

उस समय आसमान साफ था । धूप निकली थी । किन्तु अभी

अधिक ऊपर नहीं आया था, इस लिये चारों ओर धुंधला सा भी छाया था। हवा में तुर्शी थी। मधुकर रजाई ओढ़े था। —'रजाई ओढ़ लो। पैर ऊपर कर लो।'

शारदा फिर हँसी—'क्या कविता की नायिका ढूँढना चाहते हो। बैठी हूँ, तुम बात कहो।'

यह सुनते ही, जैसे मधुकर के मुँह पर तमाचा पड़ा। वह तिल-ला गया। तुरन्त अपनी भूल भी समझ गया। इसलिये एकाएक कुछ ह नहीं सका। शारदा की ओर देखने लगा।

लेकिन उसी के समान, जैसे स्वयं शारदा ने भी अपनी भूल स्वीकार की। उसे लगा कि वह कुछ कठोर बात कह गयी है। मधुकर का उपहास कर बैठी है। फलस्वरूप, उसने अपने पैर ऊपर कर लिये और रजाई का कुछ हिस्सा भी अपने पैर पर डाल लिया। तभी उसने आंखों से मुसकराया और सफेद दाँतों से हंस दिया। रजाई देखकर उसने कहा—'मधुकर, तुम भी हो शौकीन। इस रजाई में पड़े हुए डोरे कलात्मक लगते हैं। किसी ने बड़े सलीके से डाले हैं।'

मधुकर बोला—'यह रजाई मैंने बाजार से खरीदी है। प्रथम भेंट में तुमसे कहा तो कि मेरा कोई नहीं है। जो अपने थे, उन्होंने अपना नहीं समझा। जो गैर थे, कभी अवसर मिला, तो उन्हीं से ममता और प्यार पाने का अधिकारी बन गया।'

'ओह, बड़े भाग्यवान हैं, आप ऐसा सुयोग क्या सभी को मिलता है!'

मधुकर बोला—'हां, सभी को नहीं। यहाँ आकर मैंने तुमसे जो अनुभूति और सद्भावना प्राप्त की, तो वह भी मेरे लिये स्मरणीय बन गयी।'

शारदा खिलखिला पड़ी—'कहो न, प्यार·· नारी का मन···' व बोली—'मधुकरजी, यह दुनिया कविता करने के लिये नहीं है, अ

खोल कर देखने की वस्तु है। इस धरती पर बैठ कर दिमाग के पट नो बन्द नहीं रखे जा सकते।'

मधुकर ने कहा—'अभी तो मेरी यही अवस्था है। कल को क्या हो, मैं नहीं जानता। आज तो मैं इसी को ईश्वरीय देन मानता हूँ। अनुपम देखता हूँ।' वह बोला—'रात के दो बजे होंगे उस समय कि मेरी आँख खुली। मैं इस कमरे से बाहर गया और देख आया कि मेरे सामने बैठी हुई शारदा देवी क्या कर रही थी। किस प्रकार उस बूढ़े की सेवा में तन्मय थी।'

'ओह! तो देख आये तुम! चोरी से गये और लौट आये।' शारदा ने कहा—'कम्बख्त, रात में जाने कहाँ से आ मरा। मुझे जगा दिया। और सचमुच उसने ठीक ही किया। उसके पेट में दर्द था। ढाबे वाले ने रोटी के सूखे टुकड़े उसे दे दिये थे उन्ही को चबा गया। कल उसे पीने को नहीं मिली, बेचारे के पेट में दर्द हो गया।'

मधुकर मुसकराया—'और तुम उसे कभी-कभी पीने को पैसे भी देती हो। रात गरम गूदड़ से उसका पेट सेंकती हुई कह रही थी, मेरे पास क्यों नहीं आया। मुझसे क्यों नहीं पैसे ले गया।'

शारदा ने साँस भरी—'हाँ बाबू! कभी-कभी उसे पैसे देती हूँ। तुम सहज में समझोगे नहीं कि उसके मानस में भरी पीड़ा कितनी गहरी है, अथाह है। जब से शरारती गुण्डों ने उसकी लड़की उड़ाई और मार कर पहाड़ी की घाटी में फेंक दी, तो यह बूढ़ा तभी से विक्षिप्त है, कातर और दुःखी बना है। सुनती हूँ कि गाँव में इसका एक भाई है, वह इसकी जमीन हड़प चुका है। अतएव, अब इसका न घर है न कहीं ठिकाना है।'

मधुकर बोला—'वृद्ध की पुत्री को भगाने की बात तो तुमने कही, पर वह मार भी दी गयी, इतना अब सुनकर, मैं सहज में समझ नहीं पाता कि आदमी कितना निष्ठुर है, कठोर है।'

शारदा ने कहा—'यद्यपि उस लाश पर न कपड़े थे न कोई ज़ेवर,

पर इसे भरोसा है कि वह जानवरों द्वारा खाई गयी लाश इसकी लड़की की थी।'

मधुकर बोला—'जो हो, वह अमानुषीय कर्म था। क्रूर और जंगलीपन से मरा था।' उसने कहा—'लेकिन अब इस वृद्ध का क्या सिलसिला है। रात तुमने उसका पेट सेंका। चाय का प्याला भी बनाकर दिया।'

शारदा ने कहा—'दूध रखा था। उसे कुछ देना भी था।'

'तुम सचमुच ही दयालु हो, शारदा देवी!' मधुकर ने उसकी ओर देखकर कहा—'शास्त्री ने जिस बात पर मेरे कान पकड़े, मीठी झिड़की दी, बोलो—क्या अब मैं उसका सुधार कर सकूँगा। तुम अवसर दोगी कि तुम्हारा परिचय प्राप्त करूँ।' यह कहते हुए स्वतः ही मधुकर ने साँस भरी और बाहर की ओर देखा। उसी अवस्था में वह व्यस्त भाव से बोला—'मेरे कहने का अर्थ यह तो कदापि नहीं कि मैं किसी योग्य हूँ। किन्हीं अवस्थाओं में सहायक बन सकूँगा। परन्तु जितना भी सद्भावनापूर्ण व्यवहार मैं तुमसे पा सका हूँ, यहाँ से लौट कर उसे अवश्य ही अपने साथ ले जाऊँगा।' यह कहते हुए उसने रजाई के अन्दर हाथ किया। वह हाथ अनायास हा शारदा के पैर पर चला गया। वह उस पैर को पकड़ कर बाला—'बड़े ठण्डे पैर हैं, तुम्हारे! कहीं अन्यत्र से आयी हो।'

रजाई के अन्दर ही शारदा ने अपना पैर पीछे हटा लिया और उसने मधुकर के हाथ पर अपना हाथ रखकर कहा—'एक ही बात है। मेरा पैर ठण्डा है, तुम्हारा हाथ।' वह बोली—'मधुकर जी, मेरे पास ऐसा कुछ नहीं है, जो गोप्य हो। यदि कुछ थोड़ा सा है भी, तो उसे बताना क्या अच्छा है। यही समझिये कि इस धर्मशाला में आपके समान मैं भी मुसाफिर हूँ। हाँ इतना कहना फिर भी पसन्द करती हूँ कि शास्त्री को आप जिस रूप में देखते हैं, वास्तव में वह वैसा नहीं है। लोग इसे इस धर्मशाला का मैनेजर समझते हैं, परन्तु वास्तव में मालिक यही है।

आजकल यहाँ मुसाफिर नहीं हैं। पन्द्रह दिन पूर्व यहाँ थे। खूब चहल-पहल थी, कोलाहल था। मैंने यह समझ लिया है कि इस शास्त्री के पास पर्याप्त धन था, परन्तु उसका एक बड़ा भाग यह दूसरों को भेंट कर चुका है। अंग्रेजों के समय एक सेठ ने यह मकान बनवाया था। वह देर तक यहाँ बीमारी की अवस्था में रहा। यहीं मरा। यह शास्त्री उसका कारिन्दा था। लावारिस था। वह यह मकान इस शास्त्री को दे गया।

मधुकर ने कहा—'मैंने कल्पना तो की थी कि शास्त्री नौकर नहीं है। परन्तु उस मकान को इसने धर्मशाला का रूप क्यों दे दिया?'

शारदा बोली—'कोई अन्तर नहीं पड़ता। इस मकान के जितने कमरे हैं वे किराये पर कम उठते हैं। कभी ऐसा भी होता है कि शास्त्री मुफ्त में ही लोगों को ठहरा देता है।'

मधुकर मुसकराया—'यह पर्वतीय स्थान है। यहाँ निर्धन नहीं आयेगा, पैसे वाला हवाखोरी के लिये इस स्वास्थ्यप्रद स्थान पर रहना पसन्द करेगा।' वह बोला—'उसकी पत्नी नहीं है? कोई बच्चा?'

शारदा ने रजाई के अन्दर ही, फिर मधुकर के हाथ पर अपना हाथ रखा, उसे पकड़ लिया। उसने अपने स्वर पर जोर देकर कहा—'बाबू कहानी बड़ी है, तीखी भी है। मैंने कहा न, यह शास्त्री कुछ जो ऊपर है, वैसा अन्दर नहीं। इसी पहाड़ पर इस शास्त्री ने विवाह किया था। सुनती हूँ कि यह अपनी पत्नी को बड़ा प्यार करता था। यह सब स्वयं शास्त्री ने मुझसे कहा। परन्तु वही सुन्दर पत्नी इसे दगा दे गयी, किसी जमींदार के साथ भाग गयी। उस सुन्दर नारी का फोटो अब भी शास्त्री के कमरे में लगा है। तुम हँसोगे यह सुनकर कि यह व्यक्ति उस चित्र पर कभी-कभी माला चढ़ाता है, उसके समक्ष धूप जलाकर रखता है।'

मधुकर ने साँस भरी—'नादान शास्त्री! इसका पूरा नाम क्या है?'

'कुन्दनलाल !' शारदा ने कहा—'एक वार मैंने भी यह कहा, तो यह शास्त्री वोला—यह मेरे मन की आस्था है। वह जिसके साथ गयी वह उसके रूप को प्यार करता होगा, परन्तु मैं तो उस नारी की आत्मा को प्यार करता हूँ।'

'ओह ! नितान्त रहस्यवादी ! और तुम्हारा क्या ?' एकाएक मधुकर ने प्रश्न किया—'तो तुमसे इस शास्त्री का कैसे परिचय हो गया ?'

शारद ने रजाई के अन्दर मधुकर का पकड़ा हुआ हाथ छोड़ दिया और अपने दोनों हाथ वाहर निकाल कर कहा—' आखिर फिर आ गये न, मेरी वात पर!' वह वोली—'आदमी वड़ा दुर्वल है। सोचा होगा न, यह शारदा क्यों उस शास्त्री के पास वैठती है, निकटतर हो गयी है।'

मानो वरवस ही, मधुकर ने कहा—'मुझे खेद है, शारदा देवी ! और इतना जानने का मुझे अधिकार ही क्या है !' वह रजाई छोड़कर खड़ा हो गया। तुरन्त ही उस कमरे के वाहर चला गया।

लेकिन मधुकर का अप्रत्याशित रूप से कमरा और शारदा को वैठी छोड़ जाना कोई वुद्धिमानी की वात नहीं थी, तकिये के नीचे ही उसका वटुवा रखा था कि जिसमें रूपया-पैसा था। वह शारदा को दिखाई दे रहा था। वह परेशानी में पड़ी कि वहाँ वैठे या जाये। उसे यह अच्छा नहीं लगा कि यह मधुरकर इतना अव्यावहारिक है कि कमरा छोड़कर चला गया। आखिर हम लोगों का परिचय ही कितना है। इस प्रकार किसी पर विश्वास कर लेना क्या अच्छा है। किन्तु शारदा ने उस वटुवे से दृष्टि हटाकर एक किताव पर रखी। वह उठा ली। देखा कि वह मधुकर की कविताओं का संग्रह था। लेकिन जव उसने पहिला पृष्ठ उलटा, तो वहीं पर एक पत्र रखा मिला। पत्र कार्ड में था, चार लाइनों में था। शारदा ने उसे पढ़ लिया। जिसमें लिखा था—भैया, तुमने मेरी मदद करने के लिये रुपये भेजे

इसके लिये धन्यवाद। मेरा उपचार ठीक चल रहा है। जन्मकाल से अपरिचित बनकर भी, तुम जिस प्रकार अपनी इस गरीब बहिन की सहायता करने को सन्नद्ध हुए इस अमर-भावना को मरने पर भी साथ ले जाऊँगी। तुम्हारी पुष्पा।'

शारदा ने किताब देखने को उठाई थी, परन्तु उस पत्र को पढ़कर उसकी मानसिक धारा बदल गयी। पत्र से इतना उसकी समझ में आया कि यह पुष्पा मधुकर की सगी बहिन नहीं कोई गैर है, बीमार है। यह मधुकर उसकी सहायता करता है। उसी समय मधुकर लौट आया। देखते ही शारदा ने पूछा—'वाह, ऐसे गये कि मुझे भूल गये। तुम्हारा खुला कमरा छोड़ कर मैं भी नहीं जा सकी। कहाँ गये थे?'

मधुकर के मुँह मे सिगरेट लगी थी, उसे मुँह से निकाल कर बोला—'मुझे बुरी आदत है कि प्रातः चाय मिलनी चाहिये। वही लेने गया। बाहर दुकान पर पी आया।'

शारदा ने कहा—'मुझसे कहते, स्टोव पर दो मिनट मे बना देती।

मधुकर हँस दिया—'जो बात निभने वाली नही उसे क्यों सोचा जाय।'

'अब मैं समझी, तुम गैर समझते हो। परहेज करते हो।'

उस समय मधुकर हँसा नही, बोला—'इस दुनिया मे गैर और अपने का भेद करना सुगम नही। यहाँ प्रायः अपने गैर बन जाते हैं और गैर अपने।'

जैसे शारदा को सम्बल मिला, उसने कहा—'जब यह बात है, तो क्यों नहीं कहा कि चाय दो। देखती हूँ कि तुम जो कुछ कहते हो, वह करते भी हो, तब सिद्धान्त, क्यों नही स्वीकार करते।' यह कहते हुए शारदा हँस पड़ी और बोली—'क्षमा तो कर ही दोगे, इसलिये बताये देती हूँ कि तुम गये तो मैंने चोरी करली।'

सुनते ही, मधुकर की दृष्टि बटुवे पर गयी। उसने कहा—

'मेरे पास चोरी करने के लिये क्या है। बटुवे में पचास रुपये पड़े हैं, इन्हीं से लौटना है। आज चल देने की बात सोची थी; पर अब इच्छा है कि कल जाऊँगा। यहाँ रहना तो अच्छा लगता पर मैं न रह सकूँगा।'

शारदा ने कहा—'रुपया महत्वपूर्ण नहीं। मैंने कुछ और देखा है। कहो तो यह पुष्पा कौन है?' वह बोली—'मैं यह किताब न उठाती तो कैसे समझती कि इस धर्मशाला में आकर ठहर गये मुसाफिर दानी भी हैं।'

मधुकर चारपाई पर बैठ गया और दुलार के साथ शारदा के सिर पर हाथ रखता हुआ बोला—'दानी बनना भी मन को अच्छा लगता है। ऐसा आभास मिलता है कि विश्व को कुटुम्ब समझने की परम्परा का मैंने भी उपयोग किया है।' उसने कहा—'शारदाजी, अजीब कहानी है, इस धरती के इन्सान की। यहाँ आकर मैंने दो कहानियाँ सुनीं—शास्त्री की और उस वृद्ध भिखारी की। तीसरी कहानी अभी नहीं सुन पाया। कल्पना करता हूँ कि वह भी इसी के आस-पास होगी। अलौकिक और वेदना से भरी होगी। परन्तु जिस पुष्पा का पत्र तुम ने पढ़ा, उसे न केवल इन्सान ने दण्ड दिया, अपितु भगवान ने भी दिया। विवाह होने के बाद ही उसे अर्द्धांग का रोग हो गया। पति ने त्याग दिया। माँ-बाप ने भी सहायता करने से हाथ खींच लिया। बड़ी कठिनाई से उसे एक अस्पताल में दाखिला मिला। अब वहाँ है। स्वस्थ हो रही है। तुम उसे देखो तो कहो कि जैसे भगवान ने अच्छी चित्रकारी की परन्तु भाग्य उसका कि यौवन की इस भरी दोपहरी में अशक्त बन गयी। पति ने दूसरा विवाह कर लिया।'

शारदा ने कहा—'उस पुष्पा से मैं भी मिलना पसन्द करूँगी।'

मधुकर बोला—'हाँ-हाँ क्यों नहीं। यहाँ से वह स्थान समीप

है। मेरे यहाँ आने का उद्देश्य ही यह था कि उससे मिलूँगा। लौटते हुए वहाँ पहुँचूँगा।'

शारदा बोली—'मैं चलूँगी। उस पुष्पा को देखूँगी। यह कहते हुए शारदा खड़ी हो गयी और अपने कमरे की ओर चल पड़ी।

किन्तु जब अपने नित्य के कार्यों से निबट कर शारदा शास्त्री कुन्दनलाल के पास पहुँची तो वह यह देखकर चकित हुई कि वहाँ शास्त्री के साथ मधुकर गम्भीर बना बैठा था जैसे वह दोनों पत्थर हों, भारी हों। लेकिन शारदा ने उन दोनों को इस प्रकार बैठे देखकर तनिक हँसते हुए कहा—'क्या दर्शन की व्याख्या की जा रही है?'

शास्त्री ने कहा—'हाँ, इन्सान के दर्शन की बात अवश्य चल रही है।'

शारदा बोली—'भगवान का दर्शन समझ में आ सकता है, परन्तु इन्सान का नहीं।'

एकाएक मधुकर ने कहा—'आखिर क्यों? क्या रुकावट है?'

शारदा बोली—'सब से बड़ी रुकावट है, आदमी की स्वेच्छा, दम्भ और क्रूर भाव!' उसने कहा 'आदमी कहाँ जंगली है, वहाँ मृत्यु का साक्षात रूप है, इसे क्या सहज में समझा जा सकता है।'

एक लम्बी साँस भर कर शास्त्री ने कहा—'समस्या तो यह है कि जो व्यक्ति हमारे लिये अहितकर सिद्ध होता है, वह दूसरे के लिये पुण्य-तीर्थ बन जाता है। उसका सहायक होता है।'

मधुकर खड़ा हो गया और बोला—'अच्छा शास्त्रीजी, आपका अनुगृहीत हूँ कि बहुत सी बातें की। काम की की। अपनी की, दूसरों की की। मैं कल आपकी धर्मशाला छोड़ दूँगा।'

शास्त्री ने कहा—'क्यों! इतनी जल्दी क्या है।'

मधुकर बोला—'मैं इतना सम्पन्न नहीं कि पहाड़ी स्थान पर देर तक रहूँ। इस ओर आ गया तो यहाँ तक बढ़ आया। इस जीवन की खानापूरी करने के लिये मुझे भी कुछ न कुछ करना पड़ता है।'

शास्त्री ने कहा—'आप विवाह कर लीजिये। उत्तरदायित्व का जीवन बिताइये।'

इतनी बात सुनकर मधुकर फिर बैठ गया और बोला—'विवाह का सुख तो आपने भी देख लिया। उसका रहस्य भी समझ लिया। तब दूसरे को ऐसी शिक्षा क्यों देते हैं?'

शास्त्री ने मुँह में आया थूक सटका और कहा—'भाई, जो कुछ मेरे साथ हुआ, यह जरूरी नहीं कि सभी के साथ हो। यह मानता हूँ कि विवाह आवश्यक है। इस सजे हुए, मधुर बने हुए संसार में आदमी कुछ कामनाएँ और कल्पनाएँ करता है। विवाह उन्हीं में से एक है। इसका सुखकर और मनोरम पहलू लोगों ने भुला दिया है। भला नारीहीन मनुष्य क्या पूर्ण है, वह तो अधूरा है।'

५

मधुकर उस समय बाहर की ओर देख रहा था। कभी-कभी सामने बैठी शारदा की ओर भी देख लेता। शारदा मुसकरा रही थी होंठों से, हँस रही थी, किन्तु मधुकर के मन में तो शास्त्री की बात डोल रही थी, वह उसी को लेकर बोला—'शास्त्री जी, इस विवाह के लिये मनुष्य को जिस

प्रकार की तैयारी चाहिये, वह मेरे पास नहीं। यह तो मैं कहने की क्षमता नहीं रखता कि मुझे नारी नहीं चाहिये, लेकिन शरीर और मन की इस भूख को मिटाकर मनुष्य को बाद में जिस प्रकार की प्रतिक्रिया भोगनी पड़ती है, वह भी अत्यन्त कपैली और कठोर है। बताइये, आपने उसकी कल्पना की है। आज अनेक परिवार उसी से ग्रसित हैं। झगड़े और कलह के घर बने हैं।'

शास्त्री ने कहा—'ये दो अलग बातें हैं, एक नहीं। समस्याओं को सुलझाने का यह तरीका भी नहीं कि विवाह न किया जाय। तब तो व्यभिचार फैलेगा। पुरुष और नारी का सास्कृतिक रूप भी बिगड़ जायगा। बाजार की औरत और घर की औरत में भला क्या अन्तर रहेगा।

मधुकर की दृष्टि से शास्त्री ने कुछ विकृत कर दिया, प्रस्तुत प्रसग को। किन्तु सत्य वही था। अतएव, वह तिलमिला गया। क्षुब्ध भी बन गया। तुरन्त बोला—'वह अन्तर आज भी मिटाया जा रहा है। आप जिस चरित्र और कर्म की बात को लेते हैं, वह आज कहाँ है। शरीर की भूख मिटाने के लिये भी तो चादर को धर्म के मुँह पर डाल दिया गया है। यदि आप बुरा न मानें तो मेरा मत है कि बाजार की नारी ने अपना शरीर अवश्य बेचा, धर्म और आत्मा का क्रय-विक्रय नहीं किया।'

उस समय शारदा मौन थी, गम्भीर बनी बैठी थी, किन्तु शास्त्री आँखों से हँस रहा था। तभी उसने कहा—'मधुकर जो, तुम्हें रोग आ गया। लगता है तुम्हारी आत्मा में जितनी वेदना भरी थी, वह मुँह पर झलक आयी।' वह बोला—'हाँ ठीक तो है, तुम युवक हो, भावना से भरे हो, फिर भी मैं कहता हूँ समाज की व्यवस्था के लिये विवाह आवश्यक है। उसका नैतिक पहलू बड़ा है, इसलिये यह सामाजिक और धार्मिक परम्परा है।'

हँस कर मधुकर बोला—'आज देश को बच्चों की आवश्यकता नहीं है।'

शास्त्री भी हँस दिया—'तुम सीधी चोट करते हो। आखिर दाम्पत्य-जीवन का एक यही कर्म है?'

मधुकर बोला—'आज तो यही विशिष्ट है।'

शास्त्री ने कहा—'तब तो निष्क्रिय व्यक्ति विवाह करने से तो डरेंगे, लेकिन समाज में व्यभिचार और पाप की बदबू फैलायेंगे।'

तुरन्त ही मधुकर ने कहा—'वह बदबू तो आज भी है। उठ रही है। पुरुष-स्त्री के समाज को सड़ा रही है।'

शारदा बोली—'इस प्रकरण का कहीं अन्त नहीं है। ऐसा लगता है कि पुरुष ने यह समझ लिया है कि नारी को पुरुष की आवश्यकता है।

तुरन्त ही, मधुकर बोला—'नहीं, पुरुष को नारी की आवश्यकता है।'

हँस कर शास्त्री बोला—'यह तो परस्पराश्रित है। जरूरत दोनों की है। समाज की गाड़ी के यही दो पहिये हैं। सिद्धि-साधक हैं। एक शरीर है, तो दूसरी आत्मा है।'

मधुकर जोर से हँस पड़ा—'आपकी अजीब उपमा है।' वह बोला—'तब तो दुनिया के जितने अविवाहित हैं, उन्हें निश्चित रूप से विवाह कर लेना चाहिये। क्योंकि वे अकले हैं, एकाकी हैं, अधूरे हैं।'

शास्त्री ने साँस भर कर कहा—'मेरी तो यही मान्यता है।'

मधुकर खड़ा हो गया और बोला—'भगवान करे कि मैं आपके आदेश का पालन करने योग्य बनूँ! कभी मसूरी आऊँ, तो बाल-बच्चों का एक लश्कर भी साथ लाऊँ।'

शारदा ने कहा—'तब ऐसे नहीं दिखाई दोगे। दिन में तारे देखने लगोगे।'

मधुकर ने कहा—'हाँ, हाँ, यह तो मैं स्वतः ही समझता हूँ

देवी जी।'

शास्त्री बोला—'ऐसा लगता है, आप लोग भाग्यवादी नहीं। ईश्वरीय सत्ता में भी विश्वास नहीं।'

मधुकर दुबारा खड़ा हो गया था, लेकिन फिर बैठ गया और बोला—'महाराज, भावना के नाम पर मैं भले ही ईश्वरीय सत्ता और भाग्य का आश्रय लूँ, परन्तु सचाई यह है कि उसकी वास्तविकता मुझे नहीं दिखायी देती। इस धरती का चीत्कार इसका ज्वलन्त उदाहरण है। क्या इन्सान कहीं शान्ति पा सका है। बोलिये, हम में जो राक्षस बोलता है, उसे कौन जन्म देता है।'

शास्त्री बोला—'यह तो संस्कारों की बात है, भाई, जिनका निर्माण हमारे कर्मों पर होता है।'

मधुकर बोला—'आप लम्बा रास्ता पकड़ते हैं, समीप का नहीं। यह भी नहीं देखते कि जब सभी कुछ हमारे कर्म और संस्कार करते हैं तो यह भगवान क्या करता है। ऐसे तो सरल इन्सान सदा घाटे में रखा गया। उसकी वास्तविकता को भी मार दिया गया।' यह कहते हुए मधुकर वहाँ से चल दिया। वह चला गया।

शास्त्री ने शारदा को इंगित करके के कहा—'यह मधुकर जितना ऊपर से सरल है, अन्दर से नहीं। यह सपाट है, ठोस है। मुझे लगता है कि यह युवक निश्छल भी है।'

शारदा ने कहा—'दूर के ढोल सुहावने लगते हैं।'

शास्त्री हँस दिया और उसी भावपूर्ण दृष्टि से शारदा की ओर देखने लगा।

वह बोला—'मैंने इस मधुकर के समक्ष तुम्हारी अवस्था का वर्णन कर दिया।'

शारदा बोली—'इसकी आवश्यकता क्या थी। किसी के समक्ष हलकेपन का प्रदर्शन उचित नहीं। आप समझते तो हैं कि आदमी

ा दुरुपयोग करता है।'

शास्त्री ने कहा—'मुझे कहना ही था। वह स्वयं इच्छुक था जानने के लिये कि इस शारदा देवी का इतिहास क्या है! और तुमने मेरी परिस्थिति का वर्णन कर दिया, मेरे जीवन का भिशाप उसके समक्ष खोल दिया, तो तुम्हारी वास्तविकता का भी से दिग्दर्शन कराना था। युवक अच्छा है, सुशिक्षित है और ीवन की परम्पराओं के प्रति आस्था रखता है---इतना तो मैंने मझा है।'

शारदा बोली—'यह मधुकर इससे भी आगे है। मुझे लगता है, इसने जो कुछ अपनी कहानी और कविताओं में लिखा है, उसे व्यवहार में भी लाना पसन्द करता है। मैंने अभी इसका एक पत्र देखा। वह एक अपंग लड़की का था, जिसके पति ने उसे छोड़ दिया। उसे माँ-बाप ने भी तिरस्कृत कर दिया। किन्तु यह मधुकर उस लड़की को बहिन बनाकर मदद करता है। उसका अस्पताल में इलाज कराता है। बोलिये आखिर यह भावना के अतिरिक्त और क्या है।'

भारी स्वर में शास्त्री ने कहा—'बिलकुल ही यह भावना है, आदर्श है, धर्म है। यही मानवता की पूजा है।' वह बोला—'अभी मधुकर कहता था कि वह देश और समाज का काम करना चाहता है। मानवता के लिये अपना अस्तित्व मिटा देना पसन्द करता है। कहता था कि मैं एकाकी हूँ, विभिन्न हूँ। नारी के लिये उसके मन में केवल एक ही बात पैदा होती है कि नारी पूजनीय है, श्रद्धास्पद है।' उसने हँस कर कहा—'अभी नया-नया है, औरत का वास्तविक रूप देखने का अवसर नहीं मिल सका। लगता है, अभी ऐसा संयोग नहीं मिला।'

शारदा बोली—'मधुकर को आपकी अवस्था देखकर भी खिन्नत मिली। मैंने बता दिया है कि शास्त्री जी जिस प्रकार ऊपर से दिखा

देते हैं, वैसे अन्दर नहीं हैं। मन में कोलाहल भरा है।'

आतुर बनकर शास्त्री ने कहा—'शारदा देवी तुम्हारी अवस्था का वर्णन भी मुझे इसीलिये करना पड़ा कि कहीं इस युवक मधुकर के मन में यह भ्रम न पैदा हो कि यह शास्त्री भी इस सरल शारदा को अँधेरे में फेंक देना चाहता है...हाँ शारदा जी, आदमी इसी तरह सोचता है।'

शारदा ने कहा—'ऐसा न कहिये, आप तो मेरे पिता हैं।'

उसी समय हँसता और सिगरेट का धुआँ उड़ाता हुआ मधुकर फिर वहाँ आ खड़ा हुआ।

६

धर्मशाला का मैनेजर कुन्दनलाल शास्त्री एक अजीब प्रकृति का व्यक्ति था। वह काशी का निवासी था। उसके पिता एक संस्कृत पाठशाला के अध्यापक थे, अतएव, कुन्दनलाल पर भी पिता के संस्कारों का प्रभाव पड़ा था। वह भी धर्म-भीरु था। उसकी पत्नी जिस नाटकीय ढंग से उसके पास से तिरोहित हो गयी, उससे निःसन्देह कुन्दनलाल का मन टूट गया। वह संस्कृत का शास्त्री था, किन्तु उसकी पत्नी जिस प्रकार जीवन की आकांक्षा करती थी, कुन्दनलाल उसे नहीं दे सका। वैसे यह सर्वविदित था कि वह अपनी पत्नी को अत्यधिक प्यार करता था।'

उस दिन जब मधुकर शास्त्री और शारदा के पास से चल कर,

मसूरी के शेष स्थानों को देखने के लिए धर्मशाला से वाहर निकला, तो वह एक पहाड़ की ऊँचाई पर जाकर एक पथरीली शिला पर वैठ गया। यद्यपि वह उस दिन अपना मसूरी का कार्य-क्रम समाप्त कर देना चाहता था, उस यात्रा-समापन से पूर्व, मसूरी को भली प्रकार देख लेना उसे अभीष्ठ था। किन्तु वह जव उत्साह के साथ वाहर निकला, कुछ दूर चल कर पहाड़ी पर चढ़ा, तो देखता है कि वह धर्मशाला में आने वाला वूढ़ा उस एकान्त में वैठा सूरज की धूप ले रहा है। उसको देख, मधुकर रुक गया। वह भी उसी पत्थर पर वैठ गया।

किन्तु वह कुछ कहे, तभी वृद्ध ने अपनी दुर्वल और निस्तेज दृष्टि से मधुकर की ओर देखा। जैसे उसने पहचानने का प्रयत्न किया। तभी वह सहज भाव से मुसकरा कर वोला— अच्छा, तुम वही हो न, धर्मशाला के वावू...'

मधुकर ने कहा—'हाँ, वावा !'

वावा वोला—'जव तुम इस पहाड़ पर घूमने आये हो, तो खूव पैसा कमाते होगे, तुम !' वह हँस दिया—'लोग भूखे हैं, नगे हैं, और कुछ लोग हैं कि जो पानी की तरह पैसा वहाते हैं।' उसने मधुकर की ओर देखकर कहा—'क्यों, कोई सिगरेट है ?'

मधुकर ने जेव से सिगरेट का पैकेट निकाला और उसमें से एक सिगरेट वावा को दी, फिर सुलगा भी दी।

वावा ने सिगरेट का कश खींचा और उसका धुँआ छोड़ कर वोला 'पहाड़ के नीचे वसे हुए इन्सान इतने गरम हो जाते हैं कि जो यहाँ ठण्ड लेने आते हैं। यहाँ वदमाशी और मक्कारी दिखाते हैं। यहाँ के गरीव इन्सानों को अँधेरे में फेंक देते हैं।

उस वात को सुनकर मधुकर क्या कहता। अतएव, चुप रहा।

लेकिन वावा ने फिर कहा—' आदमी शैतान है !' वह अपने वे दाँतों के मुँह से हँस दिया और वोला—'कितनी पाक धरती थी, लेकिन

इस इन्सान ने गन्दी कर दी। सब ओर बदबू फैला दी।'

एकाएक मधुकर ने कहा—'तुम ठीक कहते हो बाबा!'

अपने स्वर में तेजी लाकर बाबा बोला—'कहे देता हूँ, धर्म और पूजा के पोथे भी फट जायेंगे। जब आदमी उसे मानता नहीं, तो भला वे क्या रखे रहेंगे!' उसने आतुर बनकर कहा—'तब आदमी भी नहीं रहेगा। मर जाएगा।'

मधुकर बोला—'बाबा, सुना नहीं, आदमी को मारने के बड़े-बड़े आविष्कार हुए हैं। एक गोले से हजारों, लाखों...'

बाबा ने कहा—'अरे, मैं खूब सुनता हूँ, बाबू! मैं इस आदमी के मरने की कामना करता हूँ।'

'तुम ऐसी कामना करते हो—ओह!' मधुकर बरबस ही कुण्ठित हो गया। किन्तु आगे उसे जो कुछ कहना था, वह इसलिये नहीं कह पाया कि बाबा के मन का हा-हाकार वह सुन चुका था।

बाबा बोला—'कल की ही बात बताता हूँ कि यह आदमी अब कितना फितरती बन गया है। एक बेचारे किसान ने साल भर मेहनत की और जब यहाँ के बाजार में अपना माल बेचकर रुपये लेकर चला, तो रास्ते में उसके रुपये कट गये। उन रुपयों से उस किसान को अपनी लड़की का विवाह करना था। बेचारा लुट गया।' यह कहते हुए बाबा ने ऊपर आसमान की ओर देखा और उसी अवस्था में कहा—'और बाबू, वह गिरहकट उन रुपयों को पाकर शराब के नशे में झूमा होगा, उन्हें कल रात में ही खर्च कर चुका होगा...'

प्रस्तुत विषय सुखकर नहीं था। उससे मधुकर का मन उदास हो गया। वह दूर तक फैली हुई पर्वत-शाखाओं की ओर देखने लगा।

बाबा ने कहा—'वह किसान बाजार के एक सिरे पर बैठा रो रहा था। लोग इकट्ठे थे मैं उन्हीं में से कुछ उसकी बुद्धिहीनता पर खिलखिला रहे थे।' यह मधुकर की ओर देखकर बोला—'मेरे हाथों में बल—

तो लाठी के एक ही वार से उनके हँसते दाँतों को तोड़ देता।'

मधुकर ने कहा—'वे निर्लज्ज थे।'

बाबा बोला—'अरे, सभी ऐसे दुष्ट हैं।' फिर उसने पूछा—'कहाँ के हो तुम ?'

मधुकर ने कह दिया—'कानपुर का !'

वह बोला—'बड़ा अच्छा शहर है, वह ! जब जवान था, तो वहाँ गया था। कुछ दिन रहा था।'

मधुकर ने पूछा—'क्यों, किस लिये ?' बाबा ने कहा—'मैंने उस शहर में नौकरी की थी। एक सेठ के घर में बर्तन माँजे थे। सफाई का काम किया था।'

हँस कर मधुकर ने कहा—'तब तो तुमने खूब रूपया कमाया होगा।'

बाबा ने कहा—'बस तनखाह के पैसे बचते थे। वह घर भेजता था।' वह बोला—'वह सेठ रूपया भी कमाता था और नेता भी बना था। उसकी बीबी नौकरों पर ध्यान रखती थी। छोटे घर की औरत थी।'

मधुकर ने कहा—'यह कैसे समझा !'

'हाँ बाबू ! वह किसी बड़े घर की लड़की होती, तो रसोई के नमक-मिर्च पर नाप-तोल न करती। उदार भी होती। नौकरों को फटे कपड़े देती भी कई बार सोचती।'

मधुकर बोला—'रुपया ऐसे ही जुड़ता है !'

यह सुनकर बाबा ने फिर अपनी दुर्बल आँखों से उसे घूरा और कहा—'भैया नौकरों से परहेज रखना और उन्हें इतना छोटा समझना क्या अच्छा है। आदमी वह भी हैं। पर उसे जानवर से अधिक नहीं माना जाता।'

समाज के इस वैषम्य को जब मधुकर ने उस बाबा से सुन पाया, तो वह सचमुच ही, उस विशाल खाई में गिर पड़ा कि जिसका

निर्माण मनुष्य ने स्वयं किया था, जिसने व्यक्ति-समूह को दो पाटों में विभक्त कर दिया है। समाज के अन्तर की उस चौड़ाई को देख, वह स्वतः ही काँप गया। उसे लगा यह विभेद नहीं मिटेगा। शक्ति-सन्तुलन दो पथरीली दीवारें खड़ी करता रहेगा। धन है, उसका मूल्य है, तो उसका उपयोग भी होगा। धन जिसके पास नहीं, तो वह चोर बनेगा, खून भी कर सकेगा। धनिक अपना पैसा आँख मूँद कर नहीं फेंकेगा। उसके प्रति उदासीन भी नहीं बनेगा। उसका अर्थ समझेगा।

बाबा ने कहा—'अभी रहोगे ?'

मधुकर जैसे चौंक गया। बाबा की ओर देखकर बोला—'नहीं बाबा कल चला जाऊँगा।

बाबा बोला—'वह तुम्हारे पड़ोस की लड़की भली है। मैं जब जाता हूँ तो कुछ न कुछ दे देती है। पर आज जब उस ओर गया तो उदास बैठी थी।'

अनायास जैसे अनजाने ही मधुकर ने कह दिया—'हाँ, वह भली है।'

बाबा ने अपने स्वर पर जोर दिया—'और यह मैनेजर भी भला है। पर उसे ऐसी औरत मिली कि उसका घर बिगाड़ गयी।'

मधुकर के मन में बात थी कि बाबा से उसकी अवस्था का उल्लेख करे। किन्तु उसी समय एक गडरिया अपनी भेड़ें लेकर उधर आया। उसने बाबा का अभिवादन किया। बाबा ने कहा—'अच्छा है, मलखू!'

मलखू बोला—'तुम्हारी कृपा है।' उसने कहा—'दादा तुम गाँव नहीं आये। कल गोधू की लड़की का विवाह है। तुम्हें बुलाया तो होगा।'

गोधू उस वृद्ध के छोटे भाई का नाम था। जब उसकी लड़की के विवाह की बात सुनी, तो वह बिना चकित हुए बोला—'अरे, मलखू, अब मुझे गोधू क्यों बुलायेगा। उसने तो समझ लिया [illegible] गया।'

मलखू बात सुनकर चुप रह गया। जैसे वह भी उस वृद्ध की दीन दशा पर दुखी हो गया। उसी समय उसने बीड़ी निकाली और बाबा को दी। वह पास बैठे मधुकर की ओर देखकर बोला—'बाबू, तुम '

मधुकर ने कहा—'नहीं तुम पियो।'

बीड़ी सुलगा कर मलखू ने कहा—'अब गोधू जमीन पर नहीं चलता। तुमने यह भी नहीं सुना होगा कि गाँव के लोग उसके विवाह में शरीक नहीं हो रहे। सभी कहते हैं कि इसने भाई का अधिकार छीन लिया।'

जैसे विचलित बनकर बाबा ने कहा—'नहीं भाई ! सब भाग्य ने कराया। मेरा नसीब अच्छा होता तो भाई भी अच्छा मिलता। इस गोधू को मैंने गोद में खिलाया था। उसकी बच्ची को भी कन्धे पर चढ़ा कर शहर में लाता था।' यह कहते हुए वृद्ध का उद्वेग उभर आया। उसका स्वर भी भारी हो गया। उसी समय मधुकर वहाँ से उठ गया। वह अभी जाने लगा। किन्तु वृद्ध ने उस ओर ध्यान नहीं दिया। उसके सामने मलखू क्या आया, जैसे उसका अपना आत्मीय आ गया। अतएव वह उससे अपने मन की बात करने लगा।

मलखू ने कहा—'दादा, अब गाँव बिगड़ गया। बेईमान बन गया।'

बाबा ने उदास भाव से कहा—'वह तो बनेगा। इस शहर में बेई-मान आते हैं, तो गाँव वाले उन्हीं से सब कुछ सीख लेते हैं।'

मलखू ने साँस भरकर कहा—'दादा, हम इन शहरातियों की बरा-बरी कैसे कर सकते हैं। यहाँ आकर तो मैं देखता हूँ कि जैसे सभी राजा-महाराजा हैं।'

बाबा ने विद्रूप के स्वर में कहा—'नहीं रे ! इन आने वालों में भी लुच्चे और लफंगे होते हैं। बोल, तू कहाँ गया था ?'

मलखू ने कहा—'दादा, कुछ भेड़ें ले गया था, बेच आया। धान की फसल को तो पाला मार गया। पर बच्चों को कुछ तो देना था। अब मैं सब जानवरों को नहीं चरा पाता था।'

वृद्ध बोला—'अच्छा है, भैया ! मेहनत किये जा, जिन्दगी चलाये जा ! आदमीयत न छोड़ना। हाँ, कहे देता हूँ, तूने और कुछ तो कमाया नहीं, पर इस कमायी को जरूर अपने साथ ले जाना।'

उसी समय मलखू और पास सरक आया और बूढ़े के कान के पास मुँह ले जाकर बोला—'दादा, वह मन्नू आया था, तुम्हारे पास ? जानते तो हो, वह गुण्डा है। पर भला भी है। कमजोर के काम आता है। कहता था, इस गोपू ने अपने भाई के साथ दगा किया है, तो मैं इसे धरती चटा दूँगा। इसकी लड़की का विवाह नहीं होने दूँगा।'

उसकी बात सुनी, तो बूढ़ा चौंका। जैसे उसमें बल आ गया। तुरन्त बोला—'नहीं रे ! तुम मन्नू से कह देना, गोपू का बाल बाँका न हो। उसने जो कुछ किया है, उसका फल खुद भोगेगा।'

मलखू ने कहा—'मन्नू कहता था कि मैं शहर जाकर दादा से मिलूँगा।'

सांस भर कर वृद्ध बोला—'वह नहीं आया। आया भी हो, तो क्या मुझे मिलेगा। मेरा कोई ठिकाना नहीं। ऐसे ही चलते-चलते ठोकर खा जाऊँगा और दम तोड़ दूँगा।'

मलखू बोला—'दादा, रूखी मिस्सी रोटियाँ हाजिर हैं। मेरा घर तुम्हारा है।

बूढ़े ने आसमान की ओर देखते हुए कहा—'मलखू, खुश रहो, तुम्हारा इतना ही कहना बहुत है।'

उस समय मलखू की भेड़ें चरती हुई आगे निकल गयीं, इसलिये वह उठा और राम-राम करके चल दिया। वृद्ध उसे देखता रहा। जब वह पहाड़ की ओट में हो गया, तो उसने हाथ में ली हुई बुझी बीड़ी फेंक दी और दूर उस विशाल पर्वत पर दूर तक दृष्टि पसारता हुआ एकाएक बोला—'वाह-वाह ! क्या ही अजीब संसार है यह ! आदमी जरा सी जिन्दगी पाता है और उसमें ही जाने क्या-क्या कर जाता है।' बूढ़े को याद आया कि उसका भाई गोपू जब छोटा था कि जब दोनों का

या। इसलिये उसने गोधू को पुत्र की तरह पाला। पर उसके
रत ऐसी आई कि उसने अपने आदमी का स्वभाव बदल
लेकिन वह बूढ़ा तुरन्त ही, उस गोधू की और उसकी बीवी की
ड़कर उसकी लड़की को याद करके बोला—'आह, अब सुसराल
जायगी।' वह बोला, 'कितनी चंचल! कितनी अपने ताऊ के
ममतामयी! तभी बूढ़े ने साँस भर कर कहा—'पर अब वह
बदल गयी। माँ-बाप की डगर पर चढ़ गयी।'

'इस प्रकार एकाएक ही, कुछ देर बाद उस वृद्ध को आभास हुआ कि
व इस दुनिया में उसका कोई नहीं। वह एकाकी है। बदनसीब है।
उसका परिणाम यह हुआ कि वह प्रकृति के उस विराट साम्राज्य के
समक्ष बठा हुआ बरबस ही फूट कर रो पड़ा। वह बहुत देर से उस
स्थल पर बैठा हुआ था। काफी धूप खा चुका था। प्रातः के समय
जब धर्मशाला में यशोदा के पास गया तो उसे एक रोटी और चाय
का प्याला मिल गया था। किन्तु उसका आधार कब तक रहता।
अतएव, वह भूखा था। लेकिन. जब अपने भाई गोधू की, उसकी
लड़की की याद उसे आई, तो वह इतना आतुर हुआ और ममता से भरा
कि पेट की भूख भूल गया। उसी कातर अवस्था में आसमान को
छूते हुए विशाल पर्वत की ओर देखता हुआ बोला—'मेरे परमात्मा
तू सब को सलामत रख। गोधू और उसकी बीवी पर भी द
का हाथ रख। उसकी लड़की वाला जहाँ जाये, सुखी रहे। हँस
गुजरान करती रहे।'

आश्चर्य कि उस समय, जैसे उस वृद्ध को अपनी दुर्बल
से दिखायी दिया कि दूर बहुत दूर कोई खड़ा है, मुसकरा
है, जैसे वही भगवान है। शक्ति है, शिव है। जन-जन
उसी पर है। किन्तु तभी उसकी आँखों के समक्ष आया
गाँव, उसका घर, गोधू का परिवार। उसे दिखा कि गोधू
हाथों में मेंहदी और पैरों में महावर लगाये औरतों के

बैठी है। वे औरतें गा रही हैं, ढोलक बजा रही हैं। एक औरत नाच रही है और गा रही है।

गोरी तेरा दूल्हा आया री।

किन्तु वृद्ध ने उस गाने, ढोलक और औरतों की ओर से आँख फेर कर उस बाला की ओर देखा। उसी को देखता रहा। उसे लगा कि भगवान कितनी दया करता है इस इन्सान पर! इस छोटी सी बच्ची को जवान बना दिया– जोवन से भर पुर।

तभी एकाएक बूढे ने हाथ फैला दिया और चीख उठा—अरी बाला। पर वहाँ बाला कहाँ थी अपितु उसके स्थान पर मधुकर सामने खड़ा मुसकरा रहा था।

७

जब मधुकर ने देखा कि वृद्ध के आँसू उसके सूखे गालों पर बह रहे हैं, तो वह अतिशय विनय और सदय भाव से बोला—'क्यों बाबा! क्या हुआ तुम्हारे मन में? क्या वह मलखू कुछ कह गया।'

बच्चे के समान बिलखते हुए बाबा बोला—'बाबू मेरा भाग्य ही फूटा है। आज बहुत दिन बाद इस पत्थर पर आकर बैठा था। यह पत्थर मेरे जीवन की कहानी जानता है। तुम बाबू लोग जिसे प्रेम कहते हो, वह मैंने भी इस पत्थर पर बैठकर सीखा था। देखते हो, पहाड़ के उस तरफ का गाँव, वहीं की थी, मेरी घरवाली। मेरी तरह वह भी अपनी भेड़ें चराने आती थी। यही इस पत्थर

...ठ कर हम दोनों का गठबन्धन हुआ था। दिल ने दिल की बात सुना था।

एकाएक मधुकर ने कहा—'ओह।'

बाबा बोला—'हाँ, बाबू। जब वह अपने घर से निकल कर ...ती तो इसी पत्थर पर बैठ कर हांक लगाती थी। मैं किसी पहाड़ ... ओट में होता तो दौड़ आता। हम दोनों आसमान के बादलों की ...रह आंख-मिचौनी खेलते थे। मैं उसे तंग करता था, वह मुझे तंग करती थी।'

उस समय मधुकर थका था, अपने डेरे पर पहुँचना चाहता था। क्योंकि वह बहुत घूम आया था। लेकिन जब उसने बाबा की बात सुनी, वह प्रणय-बन्धन की कहानी पायी, तो वह अतिशय मुग्ध हो गया। वह उस बूढ़े की प्रेम-गाथा सुनने के लिये तल्लीन हो गया। अतएव फिर उसी पत्थर पर बैठ गया।

बाबा ने कहा—'वह देखते हो न सामने की पहाड़ी के पास का गाँव, वही मेरा गाँव है। आज जाने क्या मन में आया कि इधर निकल पड़ा। आज बहुत दिन बाद मैं इस पत्थर पर आकर बैठा।'

मधुकर बोला—'तुम गांव हो आओ। तुम्हारे भाई की लड़की का विवाह है, तो तुम भी अपने आशिष दे आओ।'

बूढ़ा बोला—'अब मेरे आशिष की क्या कीमत है, बाबू ! ... लुटा हुआ हूँ, भिखारी हूँ।'

जब से मधुकर ने उस वृद्ध को देखा, तो उसका यह विश्वा... बन गया था कि यह जर्जर और दीन बूढ़ा विक्षिप्त हो गया ... शारदा ने भी उससे यही कहा था। किन्तु उस समय वह ... तरह की बात कर रहा था, उससे ऐसा आभास नहीं मिला ... उसका दिमाग खराब है। अपितु वह नितान्त समझदार और ... आदमी लगता था। यह सत्य था कि वृद्ध की आँखों के ... अमर बोल का उद्घोष कर रहे थे कि जो उसके मानस में ...

हुआ था। उस समय मधुकर ने उसी को देखा और सुना। इसलिये वह उस वृद्ध की ओर और अधिक आकृष्ट हो गया।

बाबा ने कहा—'बाबू, मेरे मन मे इस समय एक अजीब किस्म की परेशानी चल रही है। वह मेरे मन में टीस पैदा कर रही है।'

मधुकर ने पूछा—'वह क्या, बाबा ?'

बाबा ने मधुकर के हाथ पर अपना दुर्बल और कांपता हुआ हाथ रख दिया—'इस बूढ़े को गांव पहुंचा दो। मुझे पहुंचा दो बाबू, नही तो गोधू की लड़की वाला अपनी जान दे देगी। बाप के पापों को भोगने के लिये वह नादान और सुकुमार लड़की बलिदान का बकरा बनेगी।'

मधुकर उस रहस्यमयी पहेली को नही समझ पाया। अतएव उसने कहा—'फिर भी बात क्या है ?'

बाबा बोला—'बाबू, यह मूर्खों की बस्ती है। मलखू मुझसे कह गया है कि गांव के लोग उस गोधू के खिलाफ हैं। अगर वह लड़के वाले की जेब मे कुछ नही डाल सका, मुंह मांगा नहीं दे सका, तो लड़के वाला बरात वापिस ले जायेगा... जानते हो बाबू, खून ही खून को जोश मारता है। गोधू ने मेरे साथ जो कुछ किया, मैं उसे भूल गया। सन्तू गांव का बदमाश आदमी है। कई शहरों मे रह आया है। वह गोधू का खेल बिगाड़ने पर तुला है। और मुझे अभी उस लड़की का ध्यान आया। ताऊ तो हूँ ही मैं उसका, पर उसे मैंने ही गोद खिलाया है।'

मधुकर ने बात सुनी, तो वह विपत्ति में पड़ गया। बूढ़े के आँसू तब भी निकल रहे थे, वह उसकी दाढ़ी में छुपते जा रहे थे। और वह स्वयं थका था। दिन भी आधे से अधिक बीत गया था। उसे धर्मशाला लौटना था, कल मसूरी छोड़ देना था।

तभी बाबा बोला—'बोलो, बाबू ! अकेला जाऊंगा, तो गिर

पड़ूँगा। तुम्हारे साथ जाऊँगा और लौट आऊँगा। मैं गोधू के घर का पानी नहीं पीऊँगा। उसकी औरत का भी मुँह नहीं देखूँगा। पर लड़की वाला का सुहाग बना रहे, इसके लिये तो मैं प्राण दे देना भी पसन्द करूँगा।'

मधुकर ने कहा—'तो शाम तक लौट आयेंगे न, बाबा।'

बाबा ने कहा—'क्यों नहीं। अभी तो दिन पड़ा है। आवा।'

मधुकर उठ लिया। उसने हाथ का सहारा देकर उस बूढ़े को भी उठाया। चल दिया। बाबा की टाँगें और घोंटे भी कमजोर थे और आँखें भी। परन्तु उसने मधुकर का सहारा पाकर गाँव का रास्ता पकड़ लिया। गाँव समीप था, किन्तु बूढ़े की मन्द गति के कारण एक घण्टे में उन्होंने यह रास्ता पार किया। गाँव में प्रवेश करते ही, एक अन्य बूढ़े व्यक्ति ने अपने स्वर पर जोर देते हुए कहा—'अरे तू आ गया हल्वर !'

बूढ़े का नाम हल्वर था, सुनते ही बोला—'हाँ मैं आ गया भिक्खू कहो, अच्छे तो हो।'

भिक्खू पास आ गया और बोला--'मैं तो समझता था कि तू गाँव नहीं आएगा। वहीं शहर की किसी सड़क पर फिर उसने कहा—'जा देख आ, गोधू परेशान है। चौधरी की बैठक में कुछ आदमी बैठे हैं, वहीं गोधू है। तूने सुना तो होगा ही कि गाँव उस गोधू का बहिष्कार कर रहा है। मैंने तो यह भी सुना है कि लड़के वाला—'

बूढ़ा हल्वर चीख उठा—'क्या कहते हो भिक्खू ! बेचारी लड़की का भाग्य क्यों फोड़ते हो !'

भिक्खू बोला—'यह तो लोगों की समझ की बात है। उस सन्तू को समझाओ।'

बूढ़े हल्धर ने मधुकर का कन्धा पकड़ लिया और जो सामने गलियारा पड़ता था, उधर ही बढ़ गया। कुछ दूर जाकर ही वे दोनों

एक मकान के सामने पहुँच गये। वहाँ पर कुछ आदमी एकत्र थे। हल्धर को देखते ही, किसी एक ने कहा—'लो दादा भी आ गया।'

दूसरा बोला—'खूब समय पर आया।'

तीसरे ने कहा—'अभी मनसू लौटा, तो वह बता रहा था कि वह दादा

हल्धर ने उन सभी आदमियों के सामने जाकर अपने हाथ का झण्डा पटक दिया और बैठ गया। मधुकर को भी बैठा लिया। तभी उसने एक व्यक्ति की ओर देखा। वह व्यक्ति अपनी मूँछें मरोड़ रहा था, तीखी आँखों से हल्धर को और कभी मधुकर को देखने लगा था। हल्धर ने कहा—'मन्नू चौधरी, मैं तुम्हारे पास आया हूँ। यह तो तुम जानते हो कि भगवान ने मेरा सभी कुछ छीन लिया। पर जो कुछ बाकी है, उसे तुम लोग छीन लेना चाहते हो। बोलो कसूर गोंदू का है पर लड़की के नाम पर क्यों ठोकर मारते हो।'

गोंदू ने कहा—'तुम जले पर नमक छिड़कने आये हो। मुझे किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं।'

मन्नू चौधरी को जैसे सहारा मिला—'सुना दादा, यह गोंदू अब आसमान में उड़ता है। तुम्हारी जमीन भी हड़प चुका है न, तो अपने को बड़ा आदमी समझने लगा है।'

गोंदू बोल उठा—'मुझे किसी की जमीन की दरकार नहीं।' दूसरा बोला, 'और अगर गोंदू ने भाई की जमीन ले ली, तो दूसरा कौन होता है, इस बात में दखल देने वाला।'

हल्धर बोला—'गोंदू समझ ले कान से। मैं अपनी कोई बात नहीं कहने आया। तू लड़की का विवाह वहीं-तयशुदा कर दे।'

सुनकर, गोंदू नहीं बोला। किन्तु उसके पक्ष का एक अन्य व्यक्ति बोला, 'दादा गाँव के लोगों ने लड़के वाले को डिगा दिया है। उसने आदमी भेजकर विवाह से इन्कार किया है।'

गोंदू बोला, 'मैं एक-एक से बदला लूँगा। समझ लूँगा लोगों ने मेरे घर में आग लगायी है, तो मैं गाँव में आग लगा दूँगा।'

उसी समय एक लड़की दौड़ कर आयी और चीख पड़ी, 'अरे चाचा, बाला नहीं है .... वह ......'

सुनते ही, गोधू खड़ा होगया और उसने चीत्कार किया मेरी बाला...

वृद्ध हल्धर भी जोर से बोला—'अरे कम्बख्त !'

किन्तु गोधू वहां रुका नहीं, दौड़ पड़ा। उसके साथी भी चल दिये। पंचायत का क्रम छिन्न-भिन्न हो गया। जिधर लोग गये, उधर ही, बूढ़ा हल्धर भी लँगड़ाता हुआ बढ़ गया। मूक और एक अजीब प्रकार की जिज्ञासा लिये मधुकर भी उन लोगों के पीछे लग लिया। गाँव के बाहर ही ऊँची पहाड़ी थी, गोधू चिल्ला रहा था, 'अरी बाला बाला !' परन्तु बाला पीछे मुड़ कर तो देखती, परन्तु अपना पैर आगे बढ़ाये जा रही थी। निश्चय ही, वह उस पहाड़ के उस स्थान पर पहुँचने के लिये तत्पर थी, जहाँ से गिरकर मरने की बात सुगम हो सकती थी। सभी की तरह मधुकर ने भी यह देखा और अनुभव किया। वह युवक था, शरीर में बल था, तुरन्त आगे बढ़ चला। चलता गया। लेकिन जब वह उस बाला के समीप पहुँचा कि तभी उस युवा बाला ने छलांग मारी और रास्ते में पड़ती हुई खायी को पार कर गयी। आश्चर्य कि उस लड़की को पकड़ने के जोश में मधकर ने भी उस खाई को कूद जाना चाहा। किन्तु उसका पैर फिसला और एक पत्थर के साथ कई फुट नीचे जा गिरा। संयोग से उस लड़की ने यह देख लिया। उसने चीख मारी और पीछे दौड़ कर आये अपने चाचा और अन्य आदमियों का ध्यान उस खाई की ओर आकृष्ट कर दिया।

यों सहज ही नाटक था, दृश्य बदल गया। लोग गोधू की लड़की की बात भूल गये और उस अपरिचित परदेशी को कठिनाई से उस खाई से बाहर निकाल कन्धों पर डाल कर गाँव में ले गये। बात चारों ओर फैल गयी कि बूढ़े हल्धर के साथ जो बाबू आ गया था, वह घायल हो गया। गोधू की लड़की को बचाने और पकड़ने में

'स्वयं वह विपत्ति का शिकार हो गया।

बूढ़े हलधर ने जब यह देखा, तो वह जैसे सुन्न पड़ गया। अत्यन्त कातर बन गया। मधुकर चारपाई पर पड़ा था। तभी वहाँ पर उपस्थित सभी व्यक्तियों को हलधर ने सुनाया, 'यह परदेशी है। दूर का मुसाफिर है। मैं इस बाबू के सहारे पर ही गाँव में आया था।'

किन्तु इसी समय मधुकर को चेत हुआ, उसने आँख खोलकर, वहाँ पर उपस्थित सभी लोगों की ओर देखा। सन्तू चौधरी ने कहा, 'मैं इस बाबू के लिये दूध और दवा लाता हूँ, चिन्ता को कोई बात नहीं। चोट अन्दर की है, जल्दी ठीक हो जायेगी।' कहते हुये वह चला गया।

लेकिन हलधर परेशान था। वह बार-बार मधुकर की ओर देखकर आकुल बन रहा था। यही देखकर, धीरे से मधुकर बोला—'चिन्ता न करो बाबा!'

बाबा ने कहा—'मैं शर्मिन्दा हूँ, बाबू! तुम्हें लाने का गुनहगार हूँ।'

मधुकर बोला—'नहीं, नहीं, मैं तुम्हारा अहसानमन्द हूँ। जिन्दगी में पहिली बार एक भला काम करने का श्रेय मैं पा सका हूँ।'

उसी समय सन्तू चौधरी गिलास में दूध लाया। एक कागज में दवा भी। वह बोला—'बाबू, यह पहाड़ की बूटी है। दूध के साथ लोगे तो बड़ा काम करेगी। चोट खेंच लेगी।'

मधुकर ने कहा—'जिस भावना के साथ तुम दवा दे रहे हो, जहर भी दोगे, तो ले लूँगा।'

सन्तू चौधरी निहाल होकर बोला—'हम तुम्हारे सेवक हैं बाबू!'

मधुकर ने वह पिसी हुई हरी दवा दूध के साथ ले ली। फिर

ड़ गया। उही अवस्था में उसने कहा—'बाबा मैं शहर नहीं जा सकता।'

बाबा ने कहा—'आज आराम करो।'

सन्तू बोला—'बाबू, यह गांव तुम्हारा है। हम तुम्हारे हैं।'

उस समय गोधू शान्त खड़ा था। वह मधुकर की ओर एकटक देख रहा था। यह देख, मधुकर ने उसे पास बुलाया और कहा, तुमने बड़े भाई को भाई नहीं समझा। यह बुरा किया!'

गोधू ने कहा—'बाबू मेरा कसूर था।'

मधुकर बोला—'अब बाबा को शहर मत जाने देना। इसकी सेवा करना।' तभी उसने सन्तू को लक्ष्य किया—'भाई, इस गोधू ने कोई कसूर किया हो, पर लड़की ने कहाँ तुम्हारा क्या बिगाड़ा है। वह तुम्हारी भी लड़की है।'

सन्तू ने कहा—'बाबू, यह गोधू अच्छा आदमी नहीं। इसके मन में दया नहीं। परमात्मा नहीं। मुझे पता चला गया है कि इसने लड़की पर रुपया लिया है।'

'ओह!' एकाएक मधुकर ने कहा—'क्यों गोधू, तुमने अपनी लड़की का सौदा किया है! राम-राम!'

बूढ़े हलधर ने पीड़ित स्वर में कहा—खानदान का नाम मिट बैठा है।'

गोधू ने कहा—'मैं लाचार था। लड़की का विवाह तो करना था।'

'नहीं, नहीं, तुम लड़के वाले के रुपये लौटा दो। मेरी जमीन दो।' हलधर ने कहा।

मधुकर ला—'शाबाश बाबा! तुम्हें यही कहना चाहिए था'

बाबा बोला—'मैं अब इस गाँव में नहीं रह सकता। मुँह नहीं दिखा सकता।'

गोधू ने जेब के रुपये निकाले और सन्तू चौधरी के आगे

दिये। उसने कहा—'लो, लड़के वाले को दे देना। वह कल लड़की को विदा करके ले जाये।'

सन्तू बोला—'अब गाँव तेरे साथ है। बरात का खान-पान होगा, गाँव की बिरादरी का भी होगा। इस शहरी बाबू ने तेरी लड़की तो बचाई, गाँव की इज्जत भी बचा ली। तेरी लड़की बाला मर जाती तो पुलिस तुझे भी पकड़ कर ले जाती। हम सब की गवाही तेरे खिलाफ होती।'

गोधू वहाँ से हट गया। वह मिजाज का क्रोधी था। परन्तु उस समय न जाने उसका गुस्सा कहाँ तिरोहित हो गया। वह नितान्त दब्बू और कातर बन गया। उसी समय वहाँ गोधू की औरत और लड़की बाला आई। गोधू की औरत बूढ़े हलधर के पैरों में गिर गयी और फूट-फूट कर रो पड़ी। उस समय बाला भी अपने आँचल में मुँह देकर सुबकने लगी। आश्चर्य कि माँ-बेटी को रोती देख, बूढ़ा हलधर भी रोने लगा। उस करुण दृश्य का किसी और पर प्रभाव पड़ा हो या नहीं, परन्तु चारपाई पर पड़े मधुकर के मन का उद्वेग छलछला आया। उसने अपने मुँह पर हाथ रख लिया और रो पड़ा कदाचित इसका मात्र कारण यह था कि वह उस ममता का भूखा था। अभाव से भरा था। उसे कहीं भी कोई अपना नहीं दिखाई दिया, और वे तीनों—बूढ़ा और उसके अपने भाई की बहू तथा बेटी उसके अपने ही थे, आत्मीयता के धागे में बँधे थे। हाय! मधुकर की दृष्टि में वे कितने अपूर्व थे और कितने भाग्यवान! मधुकर उनके समक्ष हीन था, अकेला और विभिन्न!

उन्हीं रोती आँखों से बाला ने मधुकर की ओर देखकर कहा—'बाबू तुम! हाय! मैंने तुम्हें भी चुटीला बना दिया।'

मधुकर ने उसकी ओर देखकर अनायास कहा—'मैं भी तेरा भाई हूँ, तो क्या इतना भी तेरे लिये नहीं कर सकता था। मेरा कर्तव्य था।'

८

रात में ही मधुकर को बुखार चढ़ आया। किन्तु उस पीड़ित अवस्था में भी, वह यह देखकर सुखी था कि गोधू के परिवार के अतिरिक्त अन्य लोग भी उसके पास बैठे थे, जैसे मधुकर उन्हीं के परिवार का एक अंग था। जब प्रातः हुआ, सूरज चढ़ आया, तो मधुकर ने बुखार की पीड़ा में ही, एकाएक देखा कि धर्मशाला का मैनेजर और शारदा उसके पास बैठे थे। गाँव का एक व्यक्ति उन दोनों को बता रहा था कि यह बाबू न होता, तो गोधू की लड़की पहाड़ की ऊँचाई से कूद जाती, वह मर जाती। उसी समय गोधू की स्त्री और लड़की भी वहाँ आ गयीं। बूढ़ा हलधर घोटों पर मुँह रखे बैठा था। उन्मन और उदास था।

किन्तु लगता था कि शारदा और शास्त्री के पास जो आदमी गया, वह स्वयं हलधर ने भेजा था। उसने रास्ते में उन्हें सभी कुछ बता दिया था। इसलिये शास्त्री ने उस ओर ध्यान न देकर मधुकर की ओर देखा और हँसकर कहा—'कहो कविजी, कहीं गहरी चोट तो नहीं आई। बुखार तो आया है, चला जायगा।'

मधुकर ने कहा—'जी नहीं, मुझे ऐसा मालूम नहीं पड़ता।' वह शारदा की ओर देखकर बोला—'आप दोनों ने क्यों कष्ट किया!'

शारदा ने कहा—'यह कष्ट तो करना था। हम रात भर चिन्तित रहे। प्रतीक्षा करते रहे।'

मधुकर ने कहा—'मैं आज जीवन में प्रथम वार सुन रहा हूँ कि कोई मेरे लिये चिन्तित रहा। इस एकाकी जीवन पर किसी का ध्यान नहीं गया।'

शास्त्री ने कहा—'बुखार में हो, तब भी कविता में बोलते हो। अब यह बताओ, शहर चलना है।'

मधुकर ने कहा—'बुखार उतरा, तो आऊँगा।' उसने सामने खड़ी गोघू की लड़की को देखा—'यह है वह लड़की, जो आत्म-हत्या करने पर उतारू थी। अपने इस यौवन मेरे जीवन को मार देना चाहती थी।'

शास्त्री ने कहा—'यह पहाड़ है, पथरीला स्थान है। यहाँ का इन्सान भी पत्थर है। गरीब है। यह सब होता है। कोई स्वयं मरते हैं, कोई मार दिये ज ते हैं। जगली जानवरों को आदमी के शरीर का भोजन सुगमता से प्राप्त होता है।'

उसी समय सन्तू वहाँ आकर खड़ा हुआ। वह कहीं दूर से आया था। वहाँ शास्त्री को बैठा देख, वह कुछ चकित हुआ और फिर उसके पैर छूकर बोला—'आज आप भी इस गाँव में पधारे हैं, यह हमारा सौभाग्य है।'

शास्त्री उस सन्तू से परिचित था। बोला—'यह बाबू यहाँ आकर ऐसा शुभ कर्म कर सका, तो मुझे भी आना था। बोलो तो, गोघू की लड़की का...'

सन्तू बोला—'आज विवाह होगा। बारात आयेगी। मैं उस गाँव में अँधेरे में गया और अब लौट आया।'

शास्त्री ने कहा—'शाबाश! तुझे यही करना था। मैंने तो सुना कि तूने ही विवाह आकवा दिया था।'

सन्तू ने कहा—'हाँ, मालिक! यह अपराध मेरा ही था।'

उसी समय हलधर ने शास्त्री के पैर पकड़ लिये—'मालिक लड़की को आशीष देकर जाना। जब दया करके भगवान आ गये हैं तो लौट

जायेंगे !'

शास्त्री मुसकराया—'अरे बूढ़े ! मुझे भगवान कहता है ! आस-न में चढ़ाता है।'

हलधर बोला—'तुम भगवान हो, दयावान हो।'

गोधू और उसकी स्त्री भी हाथ जोड़ कर खड़े हो गये। गोधू कहा—लड़की आपकी है। आपका आशीष चाहती है।'

उस समय, जब कि शास्त्री उन लोगों से वार्ता में लिप्त था, शारदा मधुकर की ओर देखकर कहा—'बड़ा खतरनाक पथ ग्रहण किया, तुमने ! भला इस गाँव में क्या काम था।' वह बोली—'दो दिन से तुम उस धर्मशाला में क्या आये, मुझे तो रात लगा कि मेरे निकट के कोई आत्मीय आ गये। सच, रात नींद नहीं आयी। शास्त्री भी चिन्तित रहे।'

मधुकर ने कहा—'यह मेरा सौभग्य है। तुम्हारे हृदय में, मैं अपने लिये कोई स्थान बना सकूँ तो अपने को कृतकृत्य मानूँगा। जीवन में इतनी निधि को पाकर मैं मालामाल हो जाऊँगा।'

शारदा ने कहा—'जानते तो हो, अधिकार कोई देता नहीं, लिया जाता है। पर मैं देखती हूँ कि तुम इतने सहज नहीं हो।'

उसने मधुकर के हाथ पर हाथ रख दिया और कहा—'बुखार तेज है।'

मधुकर बोला—'सिर में दर्द भी अधिक है।'

शारदा ने कहा—'आदमी आया था, तो कहता, मैं डाक्टर ले आती। कुछ औषधि तो दी जाती।'

मधुकर बोला—'शारदा जी, मैं धनिक नहीं। कुछ भावनाएँ अवश्य रखता हूँ, पैसा नहीं रखता हूँ। आज मेरे पास कुछ होता, तो इस गोधू की लड़की के विवाह में लगा देता।'

उसी समय शास्त्री ने शारदा की ओर देखकर प्रश्न किया—'क्या

कहते हैं कविजी !'

शारदा ने कहा—'कविजी चलते तो इस धरती पर हैं, पर बात आसमान की करते हैं। कहते हैं, मेरे पास रुपया होता तो इस गोधू की लड़की के विवाह में खर्च कर देता।'

इतना सुनकर शास्त्री हँसा नहीं, वह गम्भीर बन गया। उसी अवस्था में बोला—'ठीक तो कहते हैं कविजी ! ऊँची बात कहते हैं।'

शारदा ने कहा—'परन्तु ऐसी बात कहने का अर्थ क्या कि जो अपनी शक्ति से परे हो। ऐसे तो अपने को परेशान करना है।'

उसी समय सन्तू चौधरी दो गिलास में दूध लाया। उसने शारदा और शास्त्री को दिया। शास्त्री ने कहा—'क्यों चौधरी, यह क्या अच्छा है कि गाँव की लड़की का विवाह हो और उसमे विघ्न डाला जाय।

चौधरी ने कहा—'मालिक, इस गाँव के लोग लड़की पर पैसा नहीं लेते। इस गोधू ने यही किया। हमारा यही ऐतराज था। इसने लिया हुआ रुपया लौटा दिया, तो अब लड़की का विवाह प्रेम से होगा।'

शास्त्री ने कहा—'और पैसा···बरात का खान-पान ?'

सन्तू बोला—'वह भी हो जायेगा। गोधू के पास रुपया कम था, बाकी दे दिया गया। हम सभी ने इकट्ठा कर लिया।'

शास्त्री ने अपनी जेब से कुछ रुपये निकाले और गोधू के हाथ पर रखते हुए कहा—'यह और लो।'

एकाएक गोधू गिड़गिड़ाया—'मालिक आप ·····'

शास्त्री ने कहा—'हाँ, भाई ! तेरी लड़की का मैं भी कुछ लगता हूँ। मेरा भी कर्तव्य है कि कुछ योग दूँ।' यह कहते हुए वह हँस दिया।

उस बीच में बूढ़ा हल्सर वहाँ से उठ गया था, तभी वापिस आया। उसने, शास्त्री को रुपये देते हुए देख लिया। वह उत्साहित हो कर बोला—'मालिक मैंने कहा न, भगवान सभी कुछ देखता है। करता है।'

शास्त्री ने हँस कर कहा—'हाँ रे, भगवान करता है।' उसने

शारदा की ओर देखा—'तुम यहाँ रुको। इन कविजी की देखभाल करो। मैं जाऊँगा।'

शारदा ने कहा—'मधुकरजी को बुखार है। तेज है।'

शास्त्री खड़ा होकर बोला—'हाँ, यही तो! कल न उतरे, तो खबर भेज देना। डाक्टर आ जायेगा।' उसने सभी व्यक्तियों की ओर देखकर कहा—'लड़की का विवाह है, आनन्द मनाओ! इस बूढ़े हल्धर की सेवा करो। यह दुःखी है। इसकी लड़की क्या गयी, यह स्वयं भी मौत के मुँह में जा पड़ा है।'

हल्धर ने कहा—'मालिक, अब मेरा क्या रह गया है। कभी भी सफर समाप्त हो सकता है।'

शास्त्री हँस दिया—'बूढ़े, यह तो सभी के साथ लगा है। दुनिया आनी-जानी है, शरीर नाशवान है।'

सन्तू चौधरी बोला—'मालिक, ऐसा कोई सोचता नहीं।'

शास्त्री ने कहा—'यह माया नगरी है। इस काजर की कोठरी में आकर भला कोई अछूता बचा है। शरीर पाकर सभी को मोह हो जाता है। अपना-पराया सूझता है।'

सन्तू बोला—'लोग खुदगर्ज हैं।'

शास्त्री ने कहा—'मूर्ख हैं। भला क्या पाते हैं। ऐसे तो अन्धे बनते हैं। यह कहते हुए शास्त्री ने शारदा और मधुकर की ओर देखा। वह बोला—'कविजी मैं प्रसन्न हूँ कि तुमने अपने पुरुषत्व का प्रदर्शन किया। एक लड़की को मरने से बचाया। मैं भी तुम्हारे पास रहता। पर शारदा है, इसी का यह काम है। सेवा का कार्य नारी कर सकती है। पुरुष तो अहंमन्य है।'

मधुकर ने शारदा की ओर देखकर कहा—'तुम्हें कष्ट होगा।'

शारदा बोली—'हाँ, होगा तो! पर उपाय क्या है। क्या तुम्हें ऐसे छोड़ दिया जाय!'

मधुकर ने कहा—'ये गाँव के व्यक्ति हैं। सभी भले हैं।'

शास्त्री ने कहा—'नहीं, नहीं, यह मेरी सम्मति है, शारदा रहे। कल दोनों लौट आइयेगा।' वह बोला—'अब आप उस धर्मशाला के किराये पर टिके मुसाफिर नहीं हैं, मेरे सखा है। वह आपका घर है।' यह कहते हुए वह चल दिया। अधिकांश लोग उसके साथ चल दिये। गोधू की बहू, लड़की और बूढ़ा हल्धर वहीं रह गये।

उसी समय शारदा ने अपना ठण्डा हाथ मधुकर के माथे पर रखा और कहा—'दबा दूँ?'

मधुकर ने कहा—'नहीं।' वह बोला—'तुम बैठी हो, तो मुझे चैन मिलेगा।'

'सुनते हो' अतिशय मनुहार भरे भाव में शारदा ने मधुकर का सिर सहलाया और कहा—'सचमुच, बड़े अजीब हो, तुम! शास्त्री ठीक कहता है कि तुम अलौकिक हो।'

उस समय मधुकर को पसीना आ रहा था। लगता था कि जैसे बुखार भी कम हो रहा था। फलस्वरूप, उसका मन उत्साह और स्फूर्ति का अनुभव करने लगा था। जब शारदा ने बात कही, तो वह उसी को लेकर बोला—'शारदा देखो, मैं क्या हूँ, यह तो नहीं जानता, परन्तु इतना समझता हूँ कि इस यात्रा में एक अभूतपूर्व भावना का अपने मानस में जन्म पा सका हूँ। देखो, कहाँ की तुम, कहाँ का मैं, कि इस प्रकार एकाएक ही, हम दोनों का परिचय हो गया। सचमुच, शास्त्री भी एक भला और सम्भ्रान्त व्यक्ति दिखायी दिया। मैं जब इस पहाड़ से जाऊँगा, तो तुम दोनों की पावन स्मृति अपने साथ ले जाऊँगा।'

उसी समय बूढ़ा हल्धर मधुकर की चारपाई के पास खिसक आया। उसने कहा 'बाबू, कुछ लोगे? थोड़ा दूध···चाय?'

मधुकर ने कहा—'हाँ, बाबा! चाय लूँगा।'

हल्धर ने सामने खड़ी बाला से कहा—'चाय लाओ।'

बाला ने कहा—'लाऊँ तुम्हें भी?'

हल्धर ने कह दिया—'हाँ, मुझे भी।' वह रात का भूखा

मधुकर के कारण न कुछ खा सका, न उसकी चारपाई के पास से कहीं जा सका। वह स्थान उसके मकान का बाहरी ओसारा था।

जब लड़की चली गयी तो हल्धर ने शारदा की ओर देखकर कहा—'बीबीजी, भगवान की मर्जी थी कि मैं फिर इस गाँव में आ गया। जब से लड़की गयी, मैं नहीं आया।'

शारदा ने कहा—'तुम्हें अब यहीं रहना चाहिये। और भविष्य में शराब नहीं पीनी चाहिये।'

हल्धर बोला—'अब नहीं पीऊँगा।' उसने कहा—'मैं शराबी नहीं। पर जब मन में दर्द पैदा होता है तो नशा करने को मन करता है।'

मधुकर ने कहा—'इस गाँव में गरीबी चीत्कार करती है। सभी आदमियों के मुँह मुरझाये हुए हैं।'

शारदा ने कहा—'यहाँ रोजगार नहीं। तभी लोग शहरों में जाते हैं। अपनी लड़कियाँ बेचते हैं।'

सुनकर मधुकर चुप रह गया। किन्तु हल्धर ने कहा—'बीबीजी, हम लोग तो भगवान के सहारे जीते हैं। दिन काटते हैं। एक दिन बीत गया तो भगवान का एहसान मानते हैं।'

शारदा ने बात सुन तो ली, परन्तु बोल नहीं सकी। मधुकर ने उसी समय साँस भरी और छोड़ी दी। तभी पास के मन्दिर में घण्टा बजा। उसे सुनते ही, शारदा ने कहा—'क्या यहाँ मन्दिर है?'

हल्धर ने कहा—'बीबीजी! शिवजी महाराज की पिण्डी है। उसी की पूजा होती है।'

शारदा बोली—'फिर भी ये लोग गरीब हैं। पराश्रित हैं।'

मधुकर बोला—'भगवान की पूजा से गरीबी-अमीरी का सम्बन्ध नहीं। यह भावना का प्रश्न है। इसका फल पैसे पर नहीं पड़ता, आत्मा पर पड़ता है।'

किन्तु शारदा का मन तो एकाएक कुण्ठित बन गया था। अतएव

उसने कहा—'आत्मा को कौन देखता है। इस धरती पर आकर आदमी अपना गुजारा करना चाहता है। पेट भरने की बात सोचता है।'

मधुकर ने कहा—'वह पेट तो भरता है। किसी प्रकार भरता है।'

लेकिन शारदा ने अपनी वाणी पर जोर देकर कहा—'पेट कहाँ भरता है। आदमी भूखा है···आदमी कंगाल बना है!'

सुनकर, मधुकर चुप रह गया। वह आँखों के समक्ष खड़े ऊँचे पर्वत की ओर देखने लगा। कितना विशाल और दीर्घकाय पर्वत था वह जिस पर बड़े-बड़े पेड़ खड़े थे। तभी उसके मन में आया कि, उस पर्वत पर हिंसक पशु भी घूमते होंगे। सांप, बिच्छू और अजगर भी होंगे, किन्तु अपने मन में इतनी बात पाते ही, उसने एकाएक अपने आप कहा, ऐसे ही पशु और जीव-जन्तु इस इन्सान के समाज में भी हैं। इन्सान ही इन्सान के लिये दु:सह है, कठोर है, भयावह है। वह शारदा की ओर देखकर बोला—'हाँ शारदाजी, प्रत्येक व्यक्ति के समक्ष पथरीली दीवार खड़ी है। वह उसकी गति रोकती है। निर्मम इन्सान ने अपनी सूरत भयावनी और घिनौनी बना ली है।'

उसी समय वहाँ सन्तू चौधरी आया और बोला—'बाबू यह गोली लो। चाय के साथ ले लो।'

मधुकर ने कहा—'भाई सन्तू, तुम मेरे लिये बहुत कष्ट उठा रहे हो।'

सन्तू ने कहा—'यह हमारा काम है। आप हमारे मेहमान हैं। दु:ख यही है कि हम गरीब हैं। इस धरती के ऊपर और आसमान के नीचे क्षुद्र समझे जाते हैं।'

गद्‌गद् बनकर मधुकर बोला—'तुम उदार हो, महान हो।'

तभी बाला चाय का लोटा भर कर लायी। कई गिलास लायी।

शारदा ने उसके हाथ से लोटा ले लिया और उसका हाथ पकड़ कर कहा—'अरी तेरा ब्याह है!'

सुनकर, बाला ने शारदा की ओर देखा और सहज भाव से शरमा

कर अपना, मुँह नीचे झुका दिया।

शारदा बोली—'तूने जो कुछ सोचा, वह कठोर था। घिनौना था। तुझे आत्महत्या का विचार भी नहीं करना था।'

मधुकर ने कहा—'कभी ऐसा भी सोचा जाता है, किया जाता है।' वह चाय लेने के लिये उठ कर बैठ गया।

९

गोधू की लड़की बाला का विवाह हो गया। वह ससुराल चली गयी। किन्तु अगले दिन जब मधुकर स्वस्थ हो कर शहर जाने के लिये प्रस्तुत हुआ, तो तभी, वह यह देखकर चकित हुआ कि गोधू की स्त्री उसके पैरों में पड़ गयी और बोली—'तुम अभी न जाओ। मेरे जीवन में जो आंधी उठी है, उसे निकल जाने दो।'

मधुकर इस बात को नहीं समझ सका। संयोग से उस स्थान में शारदा को छोड़, और कोई नहीं था। इसलिये जब गोधू की औरत इतनी विनीत और आतुर दिखायी दी, तो मधुकर बोला—'आखिर बात क्या है ?'

उस नारी ने कहा—'मेरा आदमी बदला लेगा। गाँव वालों ने जो कुछ किया है, इस सन्तू चौधरी ने, तो उसे वह सहज में न भूल सकेगा। लड़की तो गयी, अब वह इसी काम में लगेगा।'

सुनकर, शारदा तड़प उठी—'जब तेरा आदमी अपने पैरों में खुद कुल्हाड़ी मारना चाहता है, तो भला कोई दूसरा क्या कर सकेगा, क्या कोई रोकेगा ?'

गोघू की औरत बोली—'मेरे मन में यही डर है कि उसके मन का पाप मैंने समझ लिया है।'

शारदा ने कहा—'उसे शहर भेजना। समझायेंगे। बात करेंगे।'

उस समय मधुकर मौन बना बैठा था। जैसे उसके मन में सन्नाटा छा गया था। गोघू की औरत ने जो कुछ कहा, वह भी उसकी समझ में नहीं आ रहा था। उसके विचारों से मेल नहीं खाता था। इसलिये वह बोला—'बाला की माँ, मैं न तो धर्मात्मा हूँ न पुण्यात्मा, भला मेरी बात का क्या असर पड़ेगा।'

बाला की माँ बोली—'इस गाँव के सब आदमी तुम्हें अच्छा आदमी समझते हैं। औरतें भी बड़ाई करती हैं।'

मधुकर ने कहा—'सभी सीधे हैं, साफ हैं। पर मैं कहता हूँ कि मैंने जो कुछ किया, आकस्मिक किया। मैं न सुधारक हूँ न किसी धर्म का प्रचारक।'

उसी समय अपनी लाठी के बल चलता हुआ बूढ़ा हल्धर वहाँ आया। मधुकर को जाने के लिये प्रस्तुत देख, वह बोला—'क्यों बाबू! अब चले जाओगे। इतनी जल्दी लौट आओगे।'

मधुकर बोला—'हाँ, बाबा! मैं जाऊँगा। भगवान ने चाहा, तो फिर कभी इस गाँव में आऊँगा।'

हल्धर बोला—'अब क्या आओगे। यहाँ आकर्षण ही कौन सा है। और आये भी तो क्या मुझे दिखायी दोगे!'

मधुकर ने इतनी बात सुनी तो वह बोला तो कुछ नहीं, परन्तु उस वृद्ध की मानसिक अवस्था को अवश्य समझ गया। उसे स्पष्ट लगा कि यह बाबा अब अपनी मृत्यु के दिन देख रहा है। इस जिन्दगी से नाता तोड़ने की बात सोच चुका है। दुःखी है, पीड़ित है, परन्तु जीवन का मोह इसे भी सताता है।

शारदा ने कहा—'चलो।' उठो।

'हाँ, चलो।' मधुकर खड़ा हो गया। वह उन सब से विदा

लेकर चल दिया। दोनों ने गाँव छोड़ दिया और पहाड़ के ऊपर चढ़ना शुरू कर दिया। जब वे ऊपर जाकर नगर के समीप पहुँचे' तो शारदा थक चली थी। एक स्थान पर जाकर रुक गयी। जब दोनों उसी स्थान पर बैठ गये, तो तभी अवसर पाकर मधुकर ने उसे टँकोरा—'शारदा देवी, एक बात बताओ, अब तुम्हारा कार्यक्रम क्या है! तुम्हारे विषय में शास्त्री ने मुझे सभी कुछ बता दिया है। रात जाने कितनी देर तक तुम जागती रहीं। मेरा ही ध्यान रखे रहीं। मैं अब सोचता हूँ, जब भगवान ने अकस्मात ही, मुझे तुम्हारे समीप लाकर खड़ा कर दिया, तुम्हारी सद्भावना और सहानुभूति पाने का भी मैं अवसर पा गया, तो मुझे स्पष्ट होकर तुमसे यह प्रश्न करना चाहिये, अब तुम्हारा लक्ष्य क्या है?'

शारदा ने कहा—'मैं निराश्रिता हूँ, पथभ्रष्ट हूँ!' वह बोली—'जब शास्त्री ने मेरी स्थिति का बयान कर दिया, तो फिर मुझे क्या कहना है। भला औरत का रहस्य क्या है!'

मधुकर बोला—'शास्त्री कहता था कि तुमने यहाँ के बालिका विद्यालय में अध्यापिका के लिये आवेदन-पत्र दिया है। यह विचार अच्छा है।'

शारदा ने कहा—'लेकिन मैं सफल नहीं हो सकती। आज कल अधिकारी न्याय नहीं अपने करते, आवेदकों को ही प्राथमिकता देना पसन्द करते हैं।'

मधुकर बोला—'यह देश का दुर्भाग्य है। अवस्था का भी दोष है।'

शारदा ने कहा—'लोग कमीने हैं, चोर हैं।'

मधुकर ने फिर प्रश्न किया—'तो इस समय गुजारा कैसे होता है? बुरा न मानो, तो बताओ, तुम्हारा आधार क्या है?'

इतनी बात सुनते ही, शारदा ने मधुकर की ओर अपनी उदा[illegible] आँखों को पसार दिया। उसी अवस्था में उसने कहा—'गुजारा त[illegible] होता है। हुए जाता है।' यह कहते हुए शारदा ने साँस भरी औ[illegible]

बोली अबाध रूप से जिन्दगी का कारवाँ चलता है तो किसी न किसी प्रकार पेट भरता है।'

इतना सुनते ही, मानो मधुकर का आगे का रास्ता अवरुद्ध हो गया। शारदा ने जिस तत्परता और तल्लीनता से अपना मत व्यक्त किया और उसकी बात का जवाब दे दिया, तो उसे सुनकर, वह भावुक और कल्पनालोक में विचरण करने वाला मधुकर ऐसा तनिक भी नहीं सोच सका कि यौवन से भरी और सुन्दर शारदा के मन में भी हा-हाकार होगा, चीत्कार होगा और शास्त्री कुन्दनलाल ने उससे यही कहा था कि यह शारदा सहायता की आकांक्षिणी है। अतएव जब स्वयं शारदा ने अपना ऐसा अभिप्राय प्रकट नहीं किया, तो वह मौन रह गया। किन्तु कुछ क्षण बाद ही, उसने फिर कहा—'शारदाजी, मैंने कहा न, यह संयोग की बात है कि यहाँ मसूरी आकर तुमसे परिचय हो गया। मैं तुम्हारी सद्भावना भी पाने में समर्थ हो गया। इसलिये मेरी बात है, मेरे ऊपर जो काम सौंपो वह बता दो, मैं शक्ति भर उसका पालन करूँगा।'

यह सुनकर, शारदा मुसकरा दी। तनिक हँस भी दी। बोली—'मुझे पता था कि तुम मुझसे इस प्रकार की बात करोगे। तुम रात को भी कुछ कहना चाहते थे।'

तुरन्त ही, मधुकर ने कहा—'निस्सन्देह, मेरे मन में यही बात उमड़ रही थी, जो नारी मेरा इतना ख्याल करती है मेरा भी उसके प्रति कोई कर्तव्य है। रात तुमने मुझे पेशाब करने बाहर नहीं जाने दिया। कह दिया बाहर हवा लगेगी, वहीं मिट्टी के पात्र में पेशाब करने को बाध्य किया। वह पेशाब तुमने फेंका। भला क्यों? किस आत्मीयता के नाते?'

शारदा ने हँस कर कहा—'मधुकरजी, आत्मीयता का नाता बड़ी चीज है और नारी तो पैदा ही सेवा के लिये हुई है। देखा नहीं आपने अस्पतालों में नर्सें काम करती हैं। वे सभी सम्भ्रान्त और

लीन घरों की ही होती हैं। वे रोगी के समस्त शरीर का शोधन रती हैं।'

मधुकर बोला—'यह उनका काम है। वे वेतन-भोगी हैं।'

'ओह, कैसी क्षुद्र बात लेते हैं, आप! उनके साथ जो पुनीत भावना काम करती है, उसे क्यों भुला देते हैं।'

मधुकर ने कहा—'जो हो, तुम्हारे प्रति मेरा कोई कर्त्तव्य है। मैं इसे देख नहीं पाता, तुम दिखा दो, वह दिशा बता दो तो तुम्हारा कृतज्ञ होऊँगा।'

शारदा ने हाथ की हथेली पर ठोढ़ी रख ली और कहा—जो व्यक्ति स्वयं अपना अर्तव्य और दिशा नहीं देख पाता, उसे मैं क्या दिखा सकूँगी। यह मेरा काम नहीं। तुम स्वयं अपना कर्तव्य निर्धारित करो।'

मधुकर बोला—'मैं जीविका के हेतु कुछ काम करता हूँ, जो अर्जित करता हूँ, उसका एक भाग तुम्हें भेज सकता हूँ।'

शारदा ने हथेली से मुँह हटा लिया और कहा—'बस, यही! तुम इसी कर्तव्य की बात सोचते हो। यही कहना चाहते हो कि ले शारदा, तू भूखी है, तो मैं अपनी रोटी में से एक टुकड़ा तुझे भी दे सकता हूँ?' वह बोली—'मधुकरजी, आप कुछ मुझे भेजें या नहीं, पर आपको धन्यवाद अवश्य देती हूँ। किन्तु यह कहते भी मैं संकोच नहीं करती कि तुम मुझे कुछ न भेजना। केवल कृपा रखना। मेरी याद रखना। मैं अब ऐसी ही सम्पदा की भूखी हूँ।'

मधुकर मौन रह गया। उसने समझ लिया कि या शारदा सुगम नहीं, सहज नहीं, सुप्राप्य नहीं। अतएव, वह दोनं हाथों की हथेली रगड़ने लगा और उसी अवस्था में सामने ख ऊँचे पर्वत की ओर अपनी आँखों को पसार कर ऐसा ह गया कि जैसे उसके पास कुछ नहीं था, उसका कोई अस्ति

नहीं था।

किन्तु तभी शारदा ने फिर कहा—'और मधुकर जी, मैं जल्दी ही इस धर्मशाला को भी छोड़ दूंगी। मैं शास्त्री की आभारी हूँ कि उसने मुझे निःशुल्क आश्रय प्रदान किया। पहले मैंने किराया भी बहुत दिया। वह माँग तो अब भी दे सकती हूँ। वह न समझें कि मैं आपकी अवस्था नहीं पहचानती। मैं समझती हूँ कि यह नारी का जीवन स्वयं कच्चा धागा है और मेरी अवस्था तो और भी विषम है, विपरीत है।'

मधुकर ने एकाएक कहा—'शास्त्री भले ही भला हो—नेक हो, लेकिन इस धर्मशाला का आश्रय तुम्हारे लिये अशुभ है, शुभ नहीं है।'

जल्दी से, जैसे आतुर भाव में शारदा ने कहा—'निःसन्देह मेरा भी यह अनुभव है।'

मधुकर बोला—'शास्त्री घुटीला है। पत्नी के जाने से वह पीड़ा से भरा है। परन्तु उस जख्म पर किस दिन फाहा रखने की बात सोचे, इसका क्या पता है। और फाहा नारी है।'

शारदा मधुकर की उस बात को पी गयी। बड़ी कषैली और कड़वी बात थी, वह। उसने सूखे होठों पर जीभ फेर कर कहा—'मधुकरजी, तुम ठीक कहते हो। दुर्बल नारी स्वयं पराजित है। हीन है, कायर है, देखिये न, दो दिन में आप तो सहायता और सद्भावना की बात करने लगे, इसीलिये न कि मैं एकाकी हूँ, परित्यक्ता हूँ। अभिशापित हूँ।'

सुनते ही, एकाएक, मधुकर ने शारदा का हाथ कसकर पकड़ लिया और चीख उठा—'शारदा!'

किन्तु शारदा ने सहज भाव से कहा—'बुरा न मानिये, नारी के लिये सभी इसी प्रकार की ममता और प्रेरणा की बातें प्रदर्शित करते हैं। उंगली पकड़ते ही पहुंचा पकड़ने की बात तो आप

भी सुन चुके हैं।'

मधुकर ने शारदा का हाथ खूब कसकर पकड़ रखा था, क्रोध में उसे हिलाया, झिंझोड़ा और तब झटके के साथ एका-एक ही छोड़ कर वह कठिन और कुण्ठित स्वर में बोला—'राम-राम! तुम यह भी कहना जानती हो। इतना कह सकती हो।' उसने कहा—'मैंने सुना तो था कि जिस प्रान्त की तुम लड़की हो, वहाँ वाणी और जिह्वा पर लगाम नहीं। इच्छाएँ भी सीमित नहीं। इसीलिये वहाँ का इन्सान उद्दाम गति से बहता है, तेज दौड़ता है।

शारदा ने कहा—'देखिये, ऐसी बात न कीजिये। यह प्रान्त विशेष की बात नहीं; औरत की बात है, आदमी की बात है। आदमी औरत को किस निगाह से देखता है, इसके लिये प्रान्त, जाति या सम्प्रदाय का प्रश्न लागू नहीं होता। सभी जगह देखने और समझने की कला एक है। सद्भावना एक है, अमानुषिकता एक है!'

मधुकर ने कहा—'हाँ-हाँ, मैं भी इसे स्वीकार करता हूँ। मैं मानता हूँ कि आदमी नारी की सहज दुर्बलता का लाभ उठाता है।'

शारदा ने कहा—'लेकिन मेरा मत यह है कि औरत स्वयं आदमी की परिस्थिति का लाभ उठाती है। बात दोनों की एक है, समान है।'

उसी समय मधुकर ने साँस भरी और बोला—'फिर भी मैं इसके लिये क्षमा माँगता हूँ कि मैंने कुछ असंगत कहा हो।' यह कहते हुए वह खड़ा हो गया।

शारदा भी खड़ी हो गयी और बोली—'मैं अनुभव करती हूँ कि तुम्हें क्रोध जल्दी आता है। अभी मुझ पर कितना क्रोध आया, बोलो, क्या यह संगत रहा। आखिर हमारा सम्बन्ध ही क्या।'

निःसन्देह शारदा तेज थी, कठोर भी थी। उसने थोड़ी ही देर में जैसे अपने वाग्-बाणों से उस भावुक मधुकर का दिल छलनी कर दिया। वह तड़प गया। किन्तु जब शारदा ने अपनी अन्तिम बात कही तो मुँह पर तमाचा सा खाकर वह तिलमिला गया। उसके हाथ मजबूत थे, उनमें बल था। उसके मन में तो आया कि उस शारदा के मुँह पर एक जोर का तमाचा मारे और उसे सुनाकर कह दे—बकवास किये जाती है, कुतिया! किन्तु वह वैसा नहीं कर पाया। वह अपने दोनों हाथों से उसका गला पकड़ कर पहाड़ के नीचे सड़क के खन्दक में भी नहीं फेंक पाया। अपितु हुआ यह कि मधुकर का सिर झुक गया, वह चल दिया। तेज चाल से चलने लगा। उसने नहीं देखा कि शारदा पीछे रह गयी, दूर रह गयी, वह चलता गया, चलता गया।

जब अकेला ही मधुकर धर्मशाला में पहुँचा, तो सामने पड़ते ही शास्त्री मुस्कराया—'आ गये तुम!'

मधुकर ने रूखे मुँह से कह दिया—'जी!'

'और शारदाजी कहाँ हैं?'

मधुकर ने कहा—'वह आ रही है।' यह कहते हुए वह अपने कमरे की ओर बढ़ गया। वहाँ जाते ही दरवाजा खोला और वह पड़ते ही रजाई तान कर ऐसे मुँह छिपा बैठा कि सचमुच ही, उसे अतिशय मानसिक पीड़ा थी, व्यथा थी, उसके मन पर कड़ी चोट पड़ी थी।

यों दिन गया, रात आ गयी। किन्तु मधुकर अपने बिस्तर से नहीं उठा। नहीं उठ सका। जब रात का चौकीदार उधर आया, उसने मधुकर के कमरे को खुला हुआ और वहाँ अँधेरा पाया तो उसने द्वार पर से ही पुकारा—'बाबू—'

बाबू ने कहा—'हूँ।'

चौकीदार बोला—'आज बत्ती नहीं जलाई। प्रकाश नहीं

किया। अब तो रात अधिक बीत गयी, दरवाजा भी बन्द नहीं कर पाये।'

तब कठिनाई से मधुकर ने कहा—'आओ भाई! दिया जला दो। मुझे दो घूँट पानी—'

चौकीदार आया। उसने बत्ती जलाई, तो देखा कि मधुकर उल्टी कर रहा था, बुखार में तप रहा था। चौकीदार पानी लेने चला गया।

किन्तु वह अभी गया था, लौटा नहीं था, तो उससे पूर्व ही, मधुकर ने अनुभव किया कि उसके माथे पर जो ठण्डा हाथ रखा गया वह और किसी का नहीं, स्वयं शारदा का था।

१०

लगभग दो वर्ष बाद जिस नाटकीय ढंग से हलधर फिर गाँव में पहुँच गया, तो यह उसके लिये भी आश्चर्य का विषय था। उसे यह देखकर भी अचरज होता था कि गोधू की बहू अब उसका अधिक ध्यान रखती। यद्यपि हलधर ने स्वंय गांव छोड़ा था, परन्तु उसकी पृष्ठभूमि में गोधू की बहू का हाथ था। वह आये दिन झगड़ा करती और हलधर की लड़की को विविध प्रकार के ताने मारती। और हलधर अपनी लड़की को अधिक प्यार करता था, क्यों कि उसकी पत्नी की एक वही निशानी थी। इस लिये जब वह लड़की के साथ ऊपर पहाड़ पर जाकर मजदूरी करने लगा और वहीं रहने लगा तो गोधू की बहू ने सन्तोष का सांस लिया और अनुभव किया कि चलो

उसका रास्ता साफ हो गया। उसके बाद ही गोघू ने हुल्घर का खेत भी हथिया लिया।

यद्यपि हल्धर अपेक्षा कृत गरीब और दुर्बल था, परन्तु गाँव में वह वयोवृद्ध समझा जाता था गाँव के सभी व्यक्ति इस बात को जानते थे कि वह बूढ़ा अपनी लड़की खोकर पागल हो गया है। परन्तु उसका पागलपन ऐसा तो था नहीं कि वह विचारशून्य हो गया हो, हाँ, अपने-पराये का भाव उसके पास नहीं रह गया था। दुर्नीति और दुर्विचार उस हल्धर के मानस-पटल से उतर चुके थे। अब वह गंगा के जल के समान परम पवित्र बन गया था। वह सभी को सुखी देखकर प्रसन्न होता। सुबह हुई नहीं कि अपनी लाठी उठाता और घर-घर के चक्कर लगा आता। इस विषय में हल्धर बन्धनहीन और स्वतन्त्र था कि कहाँ रोटी खायेगा, कहाँ चाय पीयेगा।

इस प्रकार गाँव में सभी कुछ था, मान-सम्मान था। परन्तु स्वयं हल्धर इस बात से दुःखी था कि उसका भाई गोघू गाँव के कुछ व्यक्तियों के प्रति ईर्षा और दुर्भावना से भरा था। क्यों कि उन लोगों ने गोघू का जातीय बहिष्कार किया, उसे समाज में लड़की वेचू सिद्ध किया। इस लिये गोघू उन लोगों के प्रति जिस प्रकार की बात मन में लिये था और बदला लेने के लिये छटपटा रहा था, हल्धर उस से परिचित था। उसे यह पता था कि गोघू सर्व प्रथम अपने तीर का निशाना सन्तू चौधरी को बनाना चाहता था। कदाचित इसका एक कारण यह भी था कि सन्तू का आर्थिक विकास गोघू से अच्छा था। उसके पास जमीन भी अधिक थी। कई बार शहरों में गया था और वहाँ से उपार्जित कर लाया था।

आश्चर्य था कि गोघू की पत्नी जीवन भर तो अपने पति की सभी बातों में साझीदार रही, परन्तु इस बात में एक मत नहीं थी कि गोघू गाँव में झगड़ा करे, किसी से मार-पिटाई करे, क्यों कि उसका परिणाम क्या होगा, यह भी वह समझती थी। अब वह

कहते, तो क्या अब पहला हल्धर मर गया ? वह खूँखार भेड़िया ! वह ईर्षालु और दम्भी !

तो कहा जाता—'हाँ-हाँ, अब क्या वह हल्धर धरा है । इतना लम्बा सफर तय करके भी क्या पहिला बना रहेगा !'

बात का समर्थन किया जाता—'सचमुच, लड़की ने मार दिया, यह हल्धर अपने ही तीर से घायल गया ।'

कहा जाता—'इस दुनिया में यही होता है । जो दूसरे का बुरा सोचता है, उसका बुरा भी होता है । एक दिन सभी को झुकना पड़ता है ।'

एक बार जब नदी पर कुछ औरतें पानी भर रही थीं, तो संयोग से हल्धर और उसकी लड़की की चर्चा चली । तभी एक स्त्री बोली—'उस लड़की का दोष क्या, इस हल्धर ने ही शौकीन और रूप की परी बना दी ।'

दूसरी बोली—'मैं जानती हूँ, यह बूढ़ा लड़की को ऊपर पहाड़ पर क्यों ले गया था ।' कहते हुए उसने एक दूसरी औरत की तरफ आँख मारी और कहा—'हाँ, भगवान जानता है, यह बात झूठ नहीं थी । बूढ़ा लड़की को किसी अच्छे घर बैठाना चाहता था ।'

किन्तु उसने जिस नारी को लक्ष्य करके अपनी बात कही, उसी ने कहा—'न, पार्वती ! मैं ऐसा नहीं समझती ।'

पार्वती बोली—'बात यही थी ! यह बूढ़ा अपनी लड़की को पट-रानी बनाना चाहता था । जानती तो है कि उसे कितना प्यार करता था । किस तरह सजाकर रखता था । रोज ही कुछ-न-कुछ उस लड़की के लिये लाता था । और वह लड़की ··हरे राम ! मैं तो उसे देखती, तो दाँतों तले उँगली दबा कर रह जाती थी । वह क्या जमीन पर पैर रखती । गांव में निकलती, तो महकती और पैरों में पायजेब छनछनाती और खिलखिलाती दिखती थी । उसका ब्याह हुआ नहीं ! तो तब भी पैरों में महावर और हाथों में मेंहदी लगाना सीख गयी थी ।'

दूसरी औरत बोली—'अरी अच्छा हुआ कि वह बाप के साथ ऊपर

पहाड़ पर जा बैठी। यहाँ गाँव में होती, तो जाने किस-किस के सिर फुड़वाती। वह कुलच्छनी थी।'

उन्हीं के पास खड़ी एक अन्य बोली—'तुम लड़की को दोष देती हो, भला उसका क्या दोष, उसकी तो उम्र ही ऐसी थी। दोष तो बाप का था कि जो घरवाली के मरने पर लड़की को आँखों पर उठाये फिरता था।'

एक अन्य बोली—'उसका भी अपराध नहीं। बे-माँ की लड़की बाप का प्यार न पाती, तो फिर किस सहारे टिकती।'

तभी पहली स्त्री ने आँखें मटकायीं और हाथ नचाते हुए कहा—'पा तो लिया उस प्यार करने का फल! लड़की इतनी सिर पर चढ़ायी कि हाथों से बाहर हो गयी। जगतू कहता था, कि वह बूढ़ा मजदूरी करने जाता, और वह लड़की अड़ोस-पड़ोस के लड़कों से खूब हँसी-मजाक करती थी।'

पार्वती नाम की औरत ने कहा—'अरी, चमेली! तू तो सुनी-सुनायी बात करती है। पर मैं कहती हूँ, आज सब तरफ ऐसी ही हवा चली है। बूढ़े की लड़की तो शहर में गयी कि जहाँ चारों तरफ का आदमी आता है, पैसा पानी की तरह बहता है, पर यहाँ गाँव में देख न, जिसे भरपेट रोटी मिलने लगी कि बस वही ·····'

चमेली ने कहा—हाँ, यह बात तो है!'

पार्वती बोली—'इस बूढ़े ने अपना जन्म बिगाड़ लिया, घर बिगाड़ लिया।'

चमेली बोली—'अब रोता है, सिर धुनता है। जाने कैसा हो गया है, अब। पलटू के लड़के को साँप ने काटा, तो तुरन्त जंगल में गया और जड़ी तोड़ लाया। उसे घोटी और पिला दी। वह लड़का जब तक उठ नहीं गया, वहीं बैठा रहा। रात भर उसी के घर पड़ा रहा। गोधू की बहू गयी, तो उससे भी कह दिया—'मैं नहीं आऊँगा। यह लड़का गया, तो मैं भी चला जा ैगा। चमेली ने कहा—'अचरज

की बात तो यह, जिस तरह पलटू की औरत आँखों से आँसू बहा रही थी, तो उसी तरह यह बूढ़ा भी जार-जार रोये जा रहा था।'

एक औरत बोली—'अब बूढ़े के मन में परमात्मा बोलता है।'

दूसरी ने कहा—'क्या खाक परमात्मा बोलता है! बेचारा दीन और कंगाल बना है। भला अब यह क्या दे सकता है। न शरीर में बल न जेब में बल। जब बल था, तो यह आदमी को तिनका समझता था। धरती पर रह कर भी आसमान में उड़ने की बात सोचता था। अब तो इसे लेना-ही-लेना है, देना क्या! धरती के लिये बोझ बना है।'

उन औरतों में जो एक प्रौढ़ा थी, जब वह नदी के जल से अपना बर्तन भर चुकी, तो किनारे खड़ी उन औरतों के पास आ खड़ी हुई। जब उसने हलधर की बात सुनी, तो बोली—'जगना की माँ, वह पहिले कुछ नहीं दे सकता था, अब दे सकता है। तू पैसे को और शरीर के बल को बड़ा मानती है, पर मैं कहती हूं, हमारी आत्मा में जो परमात्मा बैठा है, उसका आशीष सब से बड़ा है। इस दुनिया को उसी की आवश्यकता है। उस दिन देखा तो, पलटू का लड़का मरा हुआ भी खड़ा हो गया। गाँव में बहुतों की यह राय है कि बूढ़े हलधर की दुआ ने और प्रार्थना ने उस लड़के को मौत के मुँह से निकाल लिया।' उसने कहा—'जवानी के दिनों में सच्चा और भला बनना बड़ा कठिन है। तब तो इन्सान आँधी में उड़ता है। गर्दो-गुबार से भरा रहता है। पर जब बुढ़ापा आता है, जिन्दगी का असली रूप आँखों के सामने आ खड़ा होता है, तो तब आदमी सत्य और भलाई की बात सोचता है। परमार्थ की भी कामना करता है।'

जगना की माँ ने कहा—'नन्दी तू तो शहर में क्या गई, जाने क्या-क्या सीख आयी। पढ़-लिख भी आयी। तेरा आदमी अच्छा है। खुद भी पढ़ा-लिखा है।'

नन्दी बोली—'शहर में बदमाश भी हैं, भले भी हैं। वे बुद्धि का

इस्तेमाल करते हैं। जिन्दगी को चलाने के लिये नये-नये रास्ते बनाते हैं।'

जगना की माँ बोली—'तो अभी रहोगी।'

नन्दी ने कहा—'हाँ, अभी रहूँगी, लड़की का विवाह करके जाऊँगी।'

'लड़का देख लिया ?'

'हाँ, देख लिया, बीबी ! तय भी कर दिया।'

'अच्छा है, सयानी लड़की अपने घर जाये। अब तो इस गाँव का ढर्रा ही खराब हो गया।'

नन्दी ने कहा—'सभी जगह यह बात है। हवा ही ऐसी चली है।' वह बोली—'कल हलधर मेरे घर भी आया। बैठा रहा। जाने कैसी-कैसी बातें सुनाता रहा। खाना भी खा गया।'

जमुना की माँ बोली—'अब उसका यही हाल है। जल्दी मर जायगा। अपनी लड़की का नाम आते ही रो पड़ता है।'

नन्दी ने कहा—'उसे अब भी भरोसा है कि लड़की मरी नहीं, जिन्दा है।'

उसी समय पार्वती भी पास आ गयी और बोली—'यह दो औरों का भी मत है। भला कोई उस लड़की को मार कर क्या लेता।' उसने कहा—'अजी, वह किसी अच्छे घर में होगी। आराम से रहती होगी। अब तक अपने बूढ़े बाप को भी भूल चुकी होगी !'

एक अन्य औरत ने कहा—'भला-भला ! ऐसी पत्थर निकली यह लड़की कि बाप को भूल गयी। और बाप उसके लिये रोता है, कलपता है।'

नन्दी ने कहा—'यही होता है ! वह बाप है न ! लड़की को छाती पर बैठा कर पाला था। उसकी माँ मरी, तो बाप बनने के साथ उसकी माँ भी बना था। उसके मल-मूत्र साफ करता था। रोज इस नदी पर आकर उसके कपड़े साफ करता था।'

जगना की माँ ने कहा—'हाँ, ऐसा मैंने भी कई बार देखा था।'

नन्दी बोली—'मैं तो उस समय यहीं थी। यह हल्वर लड़की को कन्धे पर बैठाये गाँव में और खेतों पर घूमता था। जब खेत में जाकर काम करता, तो लड़की को साथ ले जाता। उसे गोधू की वहू पर भरोस नहीं था।'

एक औरत ने हँस कर कहा—'पर वही गोधू की वहू बूढ़े का आदर करती है। रात में कहीं पड़ा हो, तो उठा कर लाती है।'

दूसरी बोली—'वह औरत मतलबी है। शायद यह भी सोचती हो कि बूढ़े के पास कुछ पैसा होगा! शहर में किसी की दुकान पर रखा होगा।'

यह सुनते ही पार्वती नाम की औरत ने हाथ का अँगूठा दिखाया और कहा—अरे हाँ, अ उसके पास दौलत रखी है। खुद तो अपाहिज है, दाने-दाने को मोहताज है, भला उसके पास पैसा कहाँ से होगा।'

'अरी यह न पूछ पार्वती, आदमी का भरोसा नहीं। पेट काट कर पाई-पाई जोड़ता है। और जब मरता है, तो दूसरों को भोगने के लिये छोड़ जाता है। जिसके भाग्य में हो, वही पाता है।' जिस औरत ने बात कही वह तभी किनारे की ओर बढ़ गयी। दूसरी भी अपने भरे बर्तनों के के पास पहुँच गयीं। उन्होंने अपने-अपने घरों की ओर चलने के लिये पैर बढ़ा दिये। परन्तु उन सब के मन का चिन्तन एक ही था—हल्धर! उसका भविष्य ......उसका वर्त्तमान! जो भूत था, खिलखिलाकर दूर निकल चुका था......।

११

यह मधुकर का दुर्भाग्य ही था कि वह जब मसूरी की धर्मशाला में बीमार पड़ा, तो सुगमता से स्वस्थ नहीं हो सका। वह अनायास ही शारदा-शास्त्री के लिये चिन्ता का विषय हो गया। उस पहिली रात में जब शारदा ने चौकीदार से मधुकर की अवस्था सुनी, तो तब, उसके मन में आया था कि मधुकर बीमार है, तो वह उसकी कौन है। किन्तु फिर भी वह उठ आई और उस मधुकर के लिये तन्मय बन गयी। इस प्रकार मधुकर का बुखार कई दिन तक रहा। उसे निमोनिया हो गया, इस लिये शारदा को अधिक तत्परता और सावधानी से उसकी परिचर्या में लग जाना पड़ा।

फलस्वरूप, मधुकर का बुखार उतर गया था। परन्तु अभी वह बिस्तर पर था। उठ-बैठ नहीं सकता था। इस बीच में शारदा ने उसके लिये सभी कुछ किया। जिस तरह एक स्नेहशील नारी अपने रोगी पति की परिचर्या करती है, उसके शरीर का शोधन और नगे शरीर को कपड़ा पहनाती है, उसी तरह शारदा ने अपना कार्य सम्पादित किया। परिस्थिति वश वह मधुकर के इतने समीप आ गयी कि अब उन दोनों के मध्य कोई अन्तर नहीं रह गया।

उस दिन प्रातः का समय था। शारदा मधुकर के कमरे से आकर स्वयं अपनी सफाई करने में लगी थी। जब वह स्नान कर के, मधुकर के लिये चाय बना कर लायी, तो तभी वह चाय को मेज पर रख कर उस मधुकर की ओर झुकी। लेकिन वह देख कर चकित हुई, एका-

एक बोल नहीं सकी कि वह मधुकर उस समय तकिये पर सिर रखे रो रहा था। जाने वह किस पीड़ा से भरा था।

यह देखते ही शारदा ने अपना कोमल हाथ उसके सिर पर रखा और कहा—'बताओ भला 'यह रोता क्यों हो ! किस कारण !'

सुनते ही, मधुकर ने शारदा का हाथ पकड़ लिया और अपनी उन पीड़ित, अश्रुपूरित आँखों से उसकी ओर घूर कर कहा—'शारदाजी, मेरे मन में बात है कि मेरी माँ तो रही नहीं, वह ममता मुझ से छिन गयी, तो अब तुम .... हाँ क्या तुम भी छिन जाओगी, मुझ से !'

शारदा ने इतनी बात सुनी, तो वह बलात स्वयं भी अशांत बन गयी, किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो गयी। वह बोल नहीं सकी। यह जरूर हुआ कि उसकी गरम साँसें, मधुकर की आँखों के निकटतर चली गयीं।

शारदा की उन्हीं गरम साँसों को ग्रहण करते हुए, मधुकर ने कहा—'शारदाजी, मैं तुम्हें छोड़ कर जीवित नहीं रह सकता। तुम्हारे बगैर मेरा यह कोमल प्राण····· ।'

एकाएक शारदा ने अपना मुँह उस मधुकर की छाती पर पटक दिया और कहा—'अरे, तुम···ओह !' और उसने स्वयं भी रोना शुरू कर दिया।

मधुकर ने अपनी दोनों बाँहें शारदा के ऊपर डाल दीं। उसका मुँह अपनी छाती से और सटा लिया और नितान्त आतुर बन कर बोला—'शारदा देवी, भगवान ने मुझे वरदान रूप में तुम्हें दिया है। इस पहाड़ पर आकर मैंने इस सम्पदा को पाया है। बोलो, मुझे वचन दो। इस बार मुझे तुमने बीमार किया है।'

शारदा ने अपनी रोती हुई आँखें मधुकर की आँखों पर रख दीं और कहा—'सच तुम मेरे प्राण हो।'

'आह, मेरी रानी!' और जैसे एकाएक तेज हवा में उड़ते हुए, आसमान की ओर जाते हुए, उस मधुकर ने अपने दुर्बल होठों को, रोती हुई

आँखों को शारदा के उन मुलायम, गुच्छेदार सिर के बालों में रख दिया। उसने शारदा को कस कर पकड़ लिया। उसी अवस्था में वह बोला—"अब मैं मुखी बनूँगा। खूब लिखूँगा। वह सभी अपनी रानी को सुनाऊँगा। मैं विपन्न बनकर भी अपने को धनिक मानूँगा।" यह कहते हुए उसने शारदा को छोड़ दिया।

तभी शारदा ने अपनी धोती के पल्ले से मधुकर की आँखें पोंछ दीं, अपनी भी पोंछ लीं। उसने मधुकर को उठा कर बैठाया। तब चाय का प्याला उसके हाथों में थमा दिया।

जब मधुकर चाय पीने लगा, तभी शारदा ने अपने मन में छुपे सत्य का उद्घोष किया और कहा—"मैंने समझ लिया था, उस दिन पहाड़ पर मैंने जो कुछ कहा, वह तुम्हें पसन्द नहीं आया। पर मुझे वही कहना था। मैंने तुम्हारा मन पहले दिन ही समझ लिया था। लेकिन तुम कवि हो, भावुक भी हो, इसलिये सोचा, ऐसी बात कहूँ, जिससे तुम मेरे प्रति अनुराग न रखो। उपेक्षा का भाव लेकर ही यहाँ से लौटो! लेकिन तुम - हे राम! इन पाँच-छः दिनों में मेरे भगवान तो कृपा कर गये। मैं बार-बार पछतायी कि हाय! मैंने क्या कह दिया! तुम्हारे मन में क्या चुभा दिया।" यह कहते हुए शारदा ने साँस भरी—"और जानते तो हो ही तुम, समझ चुके हो कि मैं ठुकरायी हुई हूँ, उच्छिष्ट पदार्थ हूँ . . ."।

"ओह, क्या अनर्गल बात कहती हो, तुम! तुम परम पवित्र हो, देवी हो। पूजा के योग्य हो।" मधुकर ने एक ही साँस में कहा और उसके मन का रोष मुँह पर उतर आया। वह बोला—"शारदा देवी, वह आदमी मूर्ख था कि जिसने तुम्हें पाकर भी ठुकरा दिया। वह हड्डी चूसने वाला कुत्ता था। उसने हीरा छोड़ कर कोरा शीशा ग्रहण किया। मैं समझ गया, वह व्यवसायी है। पैसे का भूखा है। पैसे वाले की लड़की पा गया।"

शारदा बोली—'मैं उसकी दृष्टि में भ्रष्ट हुई। दूसरे सम्प्रदाय में गयी।'

'अरे, राम-राम !' मधुकर ने तुरन्त कहा—'यह बात इस युग में नहीं निभने वाली।' वह बोला—'तुम प्रसन्नता से एक मुस्लिम परिवार में नहीं गयीं। ले जायी गयीं। जब तुम्हें अवसर मिला, तो लौट आयीं।'

शारदा ने कहा—'हमारे सम्प्रदाय या धर्म की यह मान्यता नहीं।'

मधुकर चीख पड़ा—'तुम्हारा सम्प्रदाय या धर्म पंगु है, लुंज है। बेकार है। उसके पास विवेक नहीं, विचार नहीं, उसका कोई नैतिक आधार नहीं।' उसने कहा—'मैं ऐसे व्यक्ति पर, ऐसे समाज पर थूकता हूँ। उसे हीन मानता हूँ।'

शारदा सहज भाव से मुसकरायी, विशेष भाव से हँस भी दिया।

मधुकर ने चाय पी ली और प्याला शारदा को पकड़ा दिया। उसने एक सिगरेट सुलगायी और बोला—'शारदाजी, हमारा देश धर्म-प्रधान है। और आश्चर्य यह है कि यहाँ के आदमी ने धर्म को व्यवहार में कभी नहीं अपनाया। स्वीकार नहीं किया। इस देश की नारी सदा ही उस धर्म की धार पर पटकी गयी और मार दी गयी। बताओ तुम्हारा यह सुन्दर जीवन, यह परम भावनाओं का केन्द्र क्या इस योग्य था कि इसे यों भ्रष्ट किया जाय। इस प्रकार पत्थर के समान समाज के खुले पथ पर पटक दिया जाय !' मधुकर और अधिक भावुक बन गया। उसने कहा—'मैं ऐसी कमीनी जाति को, ऐसे इन्सान को हैवानों का गिरोह मानता हूँ। उन्हें पशु समझता हूँ।'

उस समय सचमुच ही शारदा अतिशय गम्भीर थी। उसकी आँखें कमरे के बाहर उठी थीं। सामने का पर्वत इतना ऊँचा था कि कमरे के द्वार से ऊपर चला गया था। इसलिये वह दैत्याकार पर्वत जैसे किसी राक्षस के समान खिलखिला रहा था, चीत्कार कर रहा था।

क्योंकि बाहर तेज हवा चल रही थी। पर्वत के पेड़ और उनके पत्ते हिल रहे थे, शोर कर रहे थे। मधुकर जिस भावना पर टिक कर अपनी बात कह रहा था, सचमुच, वह शारदा के दिल को छू रही थी। वह भी उससे सहमत थी। किन्तु कठिनाई यह थी कि बात उसी को लेकर चली थी। वह उस वार्ता का केन्द्र बिन्दु भी थी और माध्यम भी। इस लिए यह अपना मत देने में असमर्थ थी। उसी समय शास्त्री वहाँ आया। उसने आते ही उन दोनों को उदास और गम्भीर देखकर कहा—'क्यों मधुकरजी आज तो ठीक है तबीयत ?'

मधुकर ने कहा—'जी आपकी कृपा है।'

शास्त्री बैठ गया और बोला—'सोच नहीं पाता कि क्या कहूँ आपको कि यह मसूरी-यात्रा शुभ रही, या अशुभ।'

मधुकर ने कहा—'मुझे तो यह यात्रा शुभ लगी। आप लोगों से परिचय हुआ, दर्शन हुआ।'

शास्त्री ने कहा—'हाँ, यात्रा का यह पहलू तो ठीक रहा, परन्तु यहाँ आकर शारीरिक कष्ट भी मिला, वह हितकर नहीं रहा।'

मधुकर बोला—'यह कष्ट तो अन्यत्र भी मिलता। भाग्य का लिखा क्या मिट सकेगा।'

एकाएक मधुकर से वह भाग्य की बात सुनकर शास्त्री हँस दिया। वह स्नान और पूजा करके आया था। माथे पर चन्दन लगा था। सिर के बाल भी सँवारे हुए थे, चेहरा चमक रहा था। जब वह हँसा तो मुँह और चमक उठा। उसकी तुलना में मधुकर बरबस ही अपने को हीन मान बैठे। लेकिन शास्त्री ने हँसते हुए कहा—'तो तुम भाग्य मानते हो न, हाँ, मानते हो।'

मधकर ने बात सुनी तो चुप रह गया। वह शारदा की ओर देखने लगा।

शारदा ने कहा—'यह भाग्यवाद माना ही जायगा।'

मधुकर निश्चय ही उस वाद को पसन्द नहीं करता था, परन्तु उस

नहीं, सिर झुका कर बैठा रहा ।

ने कहा – 'भाग्य और कर्म परस्पराश्रित हैं । एक-दूसरे के
। मैंने यही समझा है ।'

ी समय मधुकर ने अपना झुका हुआ मुँह ऊपर उठाया
हा—'भाग्य के मानने का अर्थ यह है कि हम अपने को
हैं, वास्तविकता से दूर हो जायें । मेरा अब भी मत यह है
कुछ बातों का निर्माण हमारे समाज ने स्वतः ही किया है ।
लिये, इस शारदा का क्या दोष था ! इसे क्यों पद दलित किया गया ।
किस अपराध का इसे दण्ड मिला ? भाग्यवादी होने के नाते आप
कहेंगे कि इसके भाग्य में यही लिखा था ।'

शास्त्री ने कहा—'वस्तुस्थिति भले ही कुछ हो, परन्तु सुगमता से
समझने के लिये यही कहा जायगा कि शारदाजी के भाग्य में यह
लिखा था ।'

मधुकर ने एक हाथ की मुट्ठी बाँध ली और दूसरे हाथ की
हथेली पर मारी । जिससे स्पष्ट था कि वह शास्त्री की बात से
भी पूर्णतः असहमत था । उसे अनर्गल और अशिष्ट मानता
तभी उसने कहा—'महाशय, यह भाग्यवाद हमें सदा ही वास्तवि
से दूर ले गया । असलियत समझने से रोकता रहा । मैं कह
मनुष्य स्वयं अपने भाग्य का निर्माता है । सुना नहीं आपने—

लोग कहते हैं कि बदलता है जमाना अक्सर,
पर मर्द वह हैं कि जो जमाने को बदल देते हैं ।

शास्त्री जी ने कहा—यह भी सत्य हो सकता है ।
मनुष्य जमाने को बदल सके, युग-प्रवर्त्तक और युग-स्रष्टा
तो वह भी भगवान के आदेश पर होगा ।'

मधुकर सहज भाव से मुसकराया—'मैं आप
आदर करता हूँ ।'

शारदा ने कहा—'मधुकरजी, तुम कमजोर हो। कम बोलो। देर से बोल रहे हो।'

शास्त्री ने कहा—'अच्छा, देर से बोल रहे हैं, लगता है, तुम्हारी चर्चा पर अटके हैं।'

शारदा ने साँस भर कर कहा—'अब मेरी चर्चा क्या है! वह अस्तित्वहीन है।'

इतना सुनते ही, मधुकर फिर लाल पड़ गया—'तुम समझती हो कि यह केवल एक तुम्हारी समस्या है। नहीं; यह इस देश के समूचे नारी-वर्ग की चिन्तनीय अवस्था है। एक दिन इतिहास लिखेगा कि हिन्दुओं की कर्तव्यहीनता के कारण चितौड़ के दुर्ग में हजारों राजपूतानियाँ अग्नि की गोद में सो गयीं; तो इसी तरह इस युग में फैले हुए विषैले धुँए में सैकड़ों हिन्दू नारियाँ इसलिये पथ-भ्रष्ट हो गयीं कि उनके पति, अभिभावक और माता-पिता जाति और धर्म की पाशविक और कठोर साँकलों से अपने दिल और दिमाग के द्वार बन्द करके खोल नहीं सके। वे उदार और विचारशील मानव नहीं बने। उस विषैले वातावरण में अपनी पत्नियों, बेटियों, और बहनों की तड़प, प्राणों का रोदन और मौत की कड़वाहट को देख न हिले, न भागे। वे पत्थर बने रहे।'

शास्त्री ने अपने हाथ की मुट्ठी बनायी और कुर्सी के हत्थे पर मार कर कहा—'निःसन्देह!

मधुकर बोला—'वह इतिहास यह भी लिखेगा कि ऐसी जाति, ऐसा धर्म मनुष्य के लिये नहीं, पशु के लिये हो सकता है। जिस सम्प्रदाय या जाति में चेतना नहीं; जागृति नहीं, वह मरेगी, जीवित नहीं रह सकेगी।'

उस समय बरबस शास्त्री भी गम्भीर बन गया। सामने बैठी हुई शारदा की ओर देखने लगा। शारदा ने एक नयी लाल किनारी की धोती पहिनी थी। वह उसके गोरे बदन पर भली लग रही थी—जब

बात शारदा को लक्ष्य कर के कही तो शास्त्री को भी लगा
ब इस बेचारी का दोष क्या था ! यह स्वतः नहीं गयी,
दाय में । इस तरह की जाने कितनी गयीं । कितनी मर गयीं
कुएँ और पोखरों में डूब गयीं । कितनी नारियों ने स्वतः ही
या कृपाण से आत्महत्या कर ली ।

मधुकर बोला—'प्रथम विश्व-युद्ध की गुप्तचर एक नितान्त सुन्दरी
शत्रु के शिविर में पहुँच करने में सफल बनी थी । बड़े-बड़े अधि-
रियों को अपने प्रेम-पाश में आबद्ध कर सकी थी वह । उसने अपने
का बड़ा नाम किया । उसने अपने शरीर और सौन्दर्य की चिन्ता
ही की । देश की रक्षा के लिये कुर्बानी दी । उसने राष्ट्र-धर्म की
पूजा की ।' उसने कहा—'लेकिन यदि वह सुन्दरी आपके देश में पैदा
होती तो क्या ऐसा करती । वह अपना शरीर बेच पाती । सौन्दर्य को
बिखेरती । निश्चय ही, वह अपने नारीत्व के छोटे से धर्म के लिये राष्ट्र
धर्म को भुला देती, ठुकरा देती ! पर वह नारी अपने कार्य में सफल
बनी । उसने अपने राष्ट्र का उद्देश्य पूरा किया । फिर अन्त में अपने
राष्ट्र के लिये फाँसी के तख्ते पर झूल गयी ! '

शास्त्री ने कहा—'हाँ मैंने वह चित्र देखा था । अद्भुत और अपूर्व
था ।'

मधुकर बोला—'हमारे देश में धर्म और नैतिकता का थोथा नार
लगाया जाता है, व्यवहार में कुछ नहीं पाया जाता । सचमुच, जि
व्यक्ति के साथ इस शारदा देवी का विवाह हुआ, वह नर-पशु है, औ
दास है अपने पौराणिक और अन्धे विचारों का । वह क्या मनुष्य
ऐसे व्यक्ति को राज्य की ओर से दण्ड मिलना चाहिये ।'

शास्त्री ने कहा—'यही मेरा मत है ।'

किन्तु मधुकर तो जोश में था । फिर बोला—'वह मुझ
तो उसका मुहँ नोच लूँ, खून पी डालूँ उस नर-पशु का । अब ले
ने कहा—'देखिये फिर बुखार आ जायेगा ।

मत बोलिये । जो होना था हो गया। मुझे यही देखना था, भोगना था।'

शास्त्री ने साँस भरी और खड़ा होकर बोला—'हाँ, यही होना था।' वह चल दिया। वहाँ से चला गया।

१२

कानपुर नगर के एक सम्भ्रान्त परिवार से गत कई वर्षों से मधुकर का सम्बन्ध था। वह उसी परिवार में दिन का कुछ समय बिताता था, जहाँ से उसे गुजारे भर को पैसा मिल जाता था। किन्तु उसी फर्म के मालिक की लडकी एकाएक विधवा हो गयी। वह ससुराल के घर को छोड़कर पिता के घर आ गयी। मधुकर पर उसको पढ़ाने का भी काम पड़ गया। सयोग की बात कि मधुकर उसी जाति का था कि जिस जाति का उस फर्म का मालिक था। मधुकर जानता था कि उसका मालिक नितान्त कृपण और दकियानूसी विचारों का व्यक्ति था। यद्यपि वह इस बात को भी पसन्द नहीं करता था कि कोई युवक उसकी युवा लडकी को पढ़ाये, परन्तु उस समय वह विवश था। यदि लडकी को पढ़ाने के लिये मास्टरनी रखता, तो पचास रुपये से कम न देना पडता। मधुकर सुप्राप्य था इसलिये उसे दस रुपया अधिक देने की बात कह कर वह नया कार्य सौंप दिया।

उस मालिक का नाम मदनलाल था। उसे मधुर के आचार-व्यवहार पर भरोसा था। किन्तु स्थिति यह थी कि जब से

उस लड़की को पढ़ाना आरम्भ किया, तो तभी से उसे वह धनिक की पुत्री जब अपने बाल्यकाल में नहीं पढ़ी, समय क्या पढ़ेगी। वह देखता कि जब लड़की पढ़ने बैठती सकी माँ या तो वहाँ आकर बैठ जाती अथवा उस कमरे के पर एक-दो चक्कर काट जाती। इस प्रकार स्वतः ही, मधुकर उस कार्य से अरुचि थी। मानो उस पर चौकीदारी की जा थी। इसलिये एक दिन उसने मालिक से कह दिया कि वह ढ़ा नहीं सकेगा।

तुरन्त ही, उससे प्रश्न किया गया—'क्यों ?'

मधुकर बोला—'मुझे पढाना नहीं आता। यह विज्ञान नहीं समझ आता।'

मदनलाल चतुर था, व्यवसायी था। उसने कहा—'मैं समझा, तुम्हें कम मिलता है। परिश्रम अधिक पड़ता है। अच्छा दस रुपया और मिलेगा।'

किन्तु मधुकर ने कहा—'यहाँ पैसों का प्रश्न नहीं, नहीं इच्छा का प्रश्न है।'

मदनलाल ने कहा—'तब भी तुम्हें कुछ करना तो होगा इस जिन्दगी को तो गुजारना पड़ेगा। यह कहते हुए उस बरबस ही मधुकर के समक्ष आत्मीयता का भाव प्रदर्शित किया।

उस बात को सुन कर, मधुकर चुप रह गया। वह बोल सका। वस्तुतः जो बात उसके मन में थी, उसे बाहर निकालने सामर्थ्य नहीं पा सका। अन्यथा, वह कहना चाहता था, कि मैं नहीं हूँ। तुम्हारी लड़की रजनी को पढ़ाता हूँ, तो मुझ पर नि रखी जाती है। यह अभद्रता मुझे खलती है।

लेकिन जब मदनलाल ने मधुकर को चुप देखा, तो कह हमारे यहाँ देर से आते हो, तभी रजनी को पढ़ाने का काम

है। तुम पर भरोसा है। जाओ, अपना काम करो। मन परेशान मत करो।'

उस समय मधुकर वहां से हट गया। अपने काम पर जा लगा। फर्म में उसका काम था कि जो पत्र हिन्दी के आते, वह उनके जवाब लिख देता। इस काम में वह चार घण्टे देता। अब एक घण्टा उसका और बढ़ गया, वह दुकान से घर जाने लगा।

उस नगर में ही, मधुकर के मित्रों में कुछ ऐसे भी थे, जो उसके अन्तरंग थे। जब उन्होंने देखा कि मधुकर सेठ मदनलाल के घर भी जाने लगा और उसकी विधवा लड़की को पढ़ाने का काम भी पा गया, तो वे मित्र उसे कौतुक और विस्मय के साथ देखने लगे। उसी में निरंजन और सुधाकर नाम के दो साथी थे। एक दिन जब वे मधुकर से आकर मिले, तो उस समय मधुकर अपने घर में आकर बैठा था। काम से थका था। लड़की को पढ़ाते समय उसे बोलना अधिक पड़ा था, क्योंकि कालिदास के शकुन्तला नाटक के जिस भाग पर वह बोला, उसे सुनने में लड़की की भी अधिक रुचि थी और स्वयं मधुकर भी उसका वर्णन करने में आनन्द ले रहा था। वह स्थल उस समय का था कि जब राजा दुष्यन्त महर्षि की वाटिका में प्रविष्ट हुए थे और वहां अपनी सखियों के सहित शकुन्तला को देख पाया था। वहीं पर दोनों में एक-दूसरे के प्रति आकर्षण पैदा हुआ था। उस दिन एक कठिनाई यह भी थी कि रजनी की मां भी उस समय वहां बैठी थी। वह नारी भी उस कथा के प्रसंग में रस ले रही थी। लड़की के समान, उसने भी मधुकर से राजा और शकुन्तला के विषय में अनेक प्रश्न पूछे थे।

किन्तु जब वे दोनों मित्र वहां आये, तो मधुकर को बिस्तर पर पड़ा देख, निरंजन ने कहा—'वाह-वाह! यह ठाठ हैं, कविजी के! अब क्या है, पांचों घी में और सिर कड़ाही में।'

दूसरा साथी सुधाकर बोला—'अरे, तो क्यों जलते हो

देता है, नजाकत आ ही जाती है !'

रंजन ने कहा—'सचमुच भाग्य हो, तो ऐसा ! हल्दी लगी न री और रंग चोखा ! क्यों मधुकरजी !' उसने मधुकर के पास र, उसके हाथ पर अपना हाथ मारते हुए कहा—'कहा तो, हमने या दूर की कौड़ी ढूँढ़ निकाली !'

सुधाकर बोला—'मधुकर भाई, तुम आजकल मिलते भी नहीं । काफी हाऊस में, न पार्क में ।'

मधुकर कुछ कहता कि निरंजन स्वयं ही कह बैठा—'अब यार-दोस्तों से मिलने का समय निकल गया । वह दिन गये, जब खलील मियाँ फाख्ता उड़ाते थे । अब ये वह मधुकर जी नहीं कि चार पैसे के पान खिलाओ और कविता सुन लो । दो रुपये दो और विवाह पर सुनाने के लिये कविता की लड़ी में पिरोये अपने खानदान के सभी नाम लिखवा लो । अब दोनों की मिठाई से काम नहीं चलता, अब मलाई के कूँजे चलते हैं, कूँजे !'

मधुकर उठकर बैठ गया और बोला—'तुम्हारा दिमाग तो ठीक है, निरंजन !'

निरंजन ने कहा—'जी, मेरे दिमाग के खराब होने का कारण ही क्या है ! अभी कोई ऐसा प्रसंग नहीं । हाँ, आपकी कोई कृपा हो जाय तो बात और है !'

मधुकर को गुस्सा तो आया, पर हँस दिया । बोल नहीं सका ।

सुधाकर ने कहा—'सुनाओ, तुम्हारी शिष्या का क्या हाल है

मधुकर ने माथे पर बल डाल कर कहा—'कैसी शिष्या !'

निरंजन बोला—'हाँ-हाँ, नाराज मत होओ । भोले भी मत उस खूसट और पाई-पाई जोड़ू मदनलाल की लड़की···हाँ, बता हूँ, मदनलाल का पैसा बेईमान का पैसा है । एक शुद न दो श उसकी औरत के खानदान का भी पता है । बड़ी चुड़ैल है, वह मिली है, मियाँ-बीबी की !' यह कहते हुए निरंजन ने

पर हाथ मारा और कहा—'वह हरामजादा अब लड़की को पढ़ाने की बात सोचता है ! जिस लड़के को उसने अपनी लड़की दी, जानते हो, वह बेचारा क्यों मरा ! अरे उसे मार दिया गया। अनमेल जोड़ा था, दोनों का ! दूल्हा छोटा और बहू बड़ी !' कहते हुए वह ठहाका मार कर हँस दिया।

सुधाकर बोला—'वह लडका विवाह के बाद ही बीमार पड़ा, तो फिर उठ नहीं सका। तपेदिक का मरीज बनकर मरा था। बड़ा भला लड़का था, वह ! नितान्त सीधा !'

मधुकर ने कहा—'मैं समझ नहीं पाया। लड़की ने कैसे मार दिया !'

'बुद्धू कहीं के !' निरंजन ने कहा—'लड़की जवानी की ड्योढ़ी फाँद गयी थी, अपने विवाह के समय। और लड़का अभी नयी उम्र का था, कच्चा था। वह बड़ी बहू के नखरे नहीं सम्भाल सका—बस और क्या। अब समझ गये न ?'

साँस भर कर मधुकर ने कहा—'जी, समझ गया।'

निरंजन बोला—'और मेरी सरकार यह भी समझ गयी कि उस कन्जूस मदनलाल ने क्यों छकड़े के साथ गाड़ी को जोड़ा है !'

'इसका क्या मतलब !' जैसे चौंक कर मधुकर ने उसकी ओर देखा।

किन्तु निरंजन बोला—'कविजी, यह कविता का क्षेत्र नहीं, दुनियादारी का मैदान है। यहाँ अवां मर्द पट्ठे लडे जाते हैं, पट्ठे ! बोलिये आप में दम है।' उसने अपने स्वर पर जोर देकर कहा—'आज कहे देता हूँ कि वह मदनलाल अपनी लड़की को तुम्हारे गले मढ़ने की बात करेगा। वह दुनियादार है, दुकानदार है। कौड़ी-कौड़ी जोड़ता है, पर समय पर थैली का मुँह भी खोलना जानता है।'

मधुकर ने कहा—'यही मेरा मत है।'

निरंजन ने कहा—'और उस लड़की को अपनी पत्नी बना लेने का अर्थ है, जीवन का नाश करना। अपने हाथों गला घोंट लेना। आज सभी ओर इस बात की चर्चा है कि सुन्दर और जवान मधुकर को उस मदनलाल ने लड़की के लिये चुन लिया है।'

मधुकर ने कहा—'तोबा कहो! मैं ऐसा ख्याल भी नहीं कर सकता। मैं उस जगह भी देर तक नहीं रहूँगा।'

निरंजन बोला—'भाई, हम तो तुम्हारे भले की बात कहते हैं। तुम्हें सावधान करना अपना कर्तव्य मानते हैं कि वह मदनलाल तुम्हारे मर्मस्थल पर चोट करेगा। तुम्हारे पास पैसे का अभाव है, तो वह तुम्हें पैसा देगा, यह भी हो सकता है कि रहने को एक मकान भी दे दे।'

मधुकर ने तेज स्वर में कहा—'मैं उन पर थूक दूँगा।'

निरंजन ने कहा—'यही करना कठिन हैं। जब पैसे का अभाव होता है, तो आदमी झुकता है। कायर बनता है। अशुभ बात को भी स्वीकार करता है।'

मधुकर इस बात को सुनकर चुप रह गया। एकाएक बोल नहीं सका।

किन्तु निरंजन ने कहा—'यही स्थान है कि जब आदमी अपने सिद्धान्त से लड़ता है। उसका महत्व आँकता है। निश्चय ही दुर्बल इन्सान पराजित बनता है।'

मधुकर ने कहा—'भाई निरंजन, मेरा अपना कोई सिद्धान्त नहीं। परन्तु यह सत्य है कि मैं उस लड़की का पति नहीं बन सकूँगा। विवाह करने का जो उद्देश्य है, पुराने लोग भले ही दूसरी दृष्टि से देखते हों, पर मैं तो उसे स्वान्तः सुखाय ही मानता हूँ। उसे जीवन का बोझ नहीं समझता।'

सुधाकर ने कहा—'अभी एक दिन हमारे मित्रों में इसकी चर्चा

चली थी। कुछ का मत था कि तुम नहीं झुकोगे, परन्तु कुछ का कहना था कि जब मदनलाल लड़की देने के साथ रुपये का चमकता हुआ मुँह भी दिखायेगा तो तुम सिद्धान्तवादी न रह सकोगे।'

इस चर्चा के समय मधुकर अतिशय गम्भीर बना था। वह जैसे किसी और में उलझा था। तभी उसने कहा—'मुझे लगता है कि आपने उस सेठ को गलत समझा है। मेरा मत है कि मदनलाल अपनी पुत्री का दूसरा विवाह नहीं करेगा। वह पुराण-पन्थी है, पुराने विचारों का समर्थक है।'

निरंजन ने कहा—'ऐसा हुआ, तो वह व्यक्ति गुरुतर अपराध करेगा। अपनी लड़की का जीवन नष्ट कर देगा।'

सुधाकर बोला—'लड़की स्वयं विद्रोह करेगी।'

मधुकर ने कहा—'विद्रोही बनना अपराध नहीं। परन्तु इतनी चेतना उस रजनी में होगी, मुझे भरोसा नहीं होता।'

निरंजन ने कहा—'चेतना स्वतः नहीं पैदा होती, करायी जाती है। ऐसी प्रेरणा बाहर से मिलती है।'

सुधाकर ने कहा—'तुम कवि हो, भावुक हो, सुधारवादी हो, तो इसका प्रयत्न करो। इस लड़की का जीवन सोने-चाँदी के तराजू पर मत तुलने दो।'

मधुकर बोला—'मेरा अपना मत है कि मदनलाल लड़की को इसलिये साक्षर बना रहा है कि जिससे वह धार्मिक भावना को जागृत करे और भागवत-रामायण का पारायण करती रहे।'

निरंजन बोला—'हमारी युवक मण्डली ने एक तालिका तैयार की है कि जिसमें यह दर्शाने का प्रयत्न किया गया है कि नगर की ऐसी कितनी महिलाएँ हैं जो नित्यप्रति गंगा-स्नान करने के लिये जाती हैं और उनमें विधवाओं की संख्या कितनी है।'

मधुकर ने एकाएक उत्साहित होकर कहा—'खूब! सूझ अच्छी है।'

सुधाकर ने कहा—'महाशय, तुम भी उस युवक-मण्डली के सदस्य

हो। परन्तु तुम्हारा सहयोग नहीं मिलता । हमने यह खोज भी की है कि गंगा-स्नान करने वाली महिलाओं में अनुपातः अधिक संख्या विधवाओं की है, उनमें भी युवा नारियों की । ऐसी नारियाँ नित्य-प्रति अन्धेरे में घर छोड़ती हैं, जाड़े, वरसात और गर्मी में गंगा में गोता मारने जाती हैं और वहाँ पण्डे-पुजारियों के अतिरिक्त साधु-सन्यासियों की भी सेवा करती हैं। देखते तो हो कि कितने साधु गंगा तट पर धूनी रमाये बैठे रहते हैं। वे सभी उन भक्तिन बनी नारियों की भावना का खून करते हैं उनका नारीत्व लूटने का प्रयत्न करते हैं।'

बरबस ही मधुकर के मुँह से निकला—'राम-राम !'

निरंजन ने कहा—'उस तालिका में हमने यह भी स्पष्ट किया है कि नगर में सहस्रों की संख्या में जो विधवाएँ हैं, उनमें वे अधिक हैं कि जिनका बाल-विवाह की वेदी पर बलिदान हुआ, या अनमेल विवाह के कारण। उनमें बाल विधवाएँ ही अधिक हैं।'

सुधाकर बोला—'भाई मधुकर हमारा समाज बातें तो ऊँची करता है, नये-नये सिद्धान्तों का निरूपण करता है, परन्तु उसके घर में जो आँधी है, आग सुलगी है, उसकी ओर से मुहँ फेर कर खड़ा रहता है। यह निश्चित है हमारी जाति ने नारी के साथ न्याय नहीं किया जिसका परिणाम यह है कि पाप बढ़ रहा है··· समाज का शरीर सड़ रहा है ····· उससे पीप चू रहा है ·· · ···'

इतनी देर में मधुकर कठिन बन गया। उसने अपने सिर के बड़े-बड़े बालों में उँगलियाँ दे लीं और कमरे के बाहर खुले अन्तरिक्ष की ओर देखने लगा। सचमुच उस वार्ता से वह अत्यधिक कातर बन गया, तभी उसे ध्यान आया कि सेठ मदनलाल के लड़के की बहू घर में छमछम करती फिरती है, स्वयं सेठ की पत्नी भी लकदक बनी रहती है, परन्तु लड़की रजनी एक सादी-सी धोती पहने, नंगे हाथ

लिये अपने वैधव्य का बोझ लिये इस धरती पर टिकी है। मन में उठती हुई इस भावना का परिणाम यह हुआ कि मधुकर की समस्त सद्-भावना सिकुड़ कर एक जगह एकत्र हो गयी और उस मदनलाल की लड़की के चरणों में जा गिरी। सहज ही मधुकर ने अनुभव किया कि निश्चय ही इस लड़की के मन में प्रतिशोध होगा। हा-हाकार उठता होगा। उसका यौवन चीखता होगा और उसे आन्दोलित करता होगा। ऐसी विषम अवस्था में वह क्या कर बैठे, उस बड़े महल में किस क्षण आग लगा दे इसकी कल्पना मात्र से वह सिहर उठा। उसी अवस्था में अपने उन दोनों साथियों की ओर देखने लगा। वह बोला—'तो क्या हो हाँ, क्या।'

सुधाकर ने कहा—'एक ही रास्ता है कि सेठ मदनलाल अपनी लड़की का विवाह कर दे। ऐसा विवाह अब विवाद का विषय नहीं रहा। अमान्य भी नहीं। युग बदला है, तो इन्सान भी अब बदल गया है।'

निरंजन ने कहा—'मदनलाल चाहे तो हम उसे लड़का बता देंगे।' वह आगे बोला-यह तो निश्चित है, कोई पैसे वाला लड़का उसे नहीं मिलेगा। सामान्य मिलेगा। मैं कहता हूँ कि लड़की को सुख देने के लिये वह ऐसा क्यों न करे।'

सुधाकर ने कहा—'ये पैसे वाले मूर्ख हैं। समता का व्यवहार पसन्द करते हैं। धनवान सदा ही धनवान से सम्बन्ध बनाता है।'

मधुकर बोला--'यही उस वर्ग के विचारों की अराजकता है उसने पैसे को ही सर्वोपरि मान रखा है।' उस आगे कहा—'मदनलाल महत्वा-कांक्षी और मूर्ख व्यक्ति है। वह जीवन को दूर तक नहीं देखता। दुर्भाग्य यह है कि वह जिस वर्ग का सदस्य है, उसमें प्राय ऐसे ही व्यक्तियों का प्राधान्य है। उनकी विचार धारा दूसरी है। दुनिया दूसरी है।'

निरंजन बोला—'यह वर्ग अशिक्षित है। यही दुर्भाग्य है कि पैसा ऐसे ही वर्ग के पास है। वह साँपों का वर्ग है जो कुण्डली मारे धन के ऊपर बैठा है। जीवन की वास्तविकता और गति-

हो। परन्तु तुम्हारा सहयोग नहीं मिलता। हमने यह खोज भी की है कि गंगा-स्नान करने वाली महिलाओं में अनुपातः अधिक संख्या विधवाओं की है, उनमें भी युवा नारियों की। ऐसी नारियाँ नित्य-प्रति अन्धेरे में घर छोड़ती हैं, जाड़े, वरसात और गर्मी में गंगा में गोता मारने जाती हैं और वहाँ पण्डे-पुजारियों के अतिरिक्त साधु-सन्यासियों की भी सेवा करती हैं। देखते तो हो कि कितने साधु गंगा तट पर धूनी रमाये वैठे रहते हैं। वे सभी उन भक्तिन वनी नारियों की भावना का खून करते हैं उनका नारीत्व लूटने का प्रयत्न करते हैं।'

वरवस ही मधुकर के मुँह से निकला—'राम-राम !'

निरंजन ने कहा—'उस तालिका में हमने यह भी स्पष्ट किया है कि नगर में सहस्रों की संख्या में जो विधवाएँ हैं, उनमें वे अधिक हैं कि जिनका वाल-विवाह की वेदी पर वलिदान हुआ, या अनमेल विवाह के कारण। उनमें वाल विधवाएँ ही अधिक हैं।'

सुधाकर वोला—'भाई मधुकर हमारा समाज वातें तो ऊँची करता है, नये-नये सिद्धान्तों का निरूपण करता है, परन्तु उसके घर में जो आँधी है, आग सुलगी है, उसकी ओर से मुहँ फेर कर खड़ा रहता है। यह निश्चित है हमारी जाति ने नारी के साथ न्याय नहीं किया जिसका परिणाम यह है कि पाप वढ़ रहा है··· समाज का शरीर सड़ रहा है ······ उससे पीप चू रहा है ·· · ···'

इतनी देर में मधुकर कठिन वन गया। उसने अपने सिर के वड़े-वड़े वालों में उँगलियां दे लीं और कमरे के वाहर खुले अन्तरिक्ष की ओर देखने लगा। सचमुच उस वार्ता से वह अत्यधिक कातर वन गया, तभी उसे ध्यान आया कि सेठ मदनलाल के लड़के की वह घर में छमछम करती फिरती है, स्वयं सेठ की पत्नी भी लकदक वनी रहती है, परन्तु लड़की रजनी एक सादी-सी धोती पहने, नंगे हाथ

लिये अपने वैधव्य का बोझ लिये इस धरती पर टिकी है। मन में उठती हुई इस भावना का परिणाम यह हुआ कि मधुकर की समस्त सद्-भावना सिकुड़ कर एक जगह एकत्र हो गयी और उस मदनलाल की लड़की के चरणों में जा गिरी। सहज ही मधुकर ने अनुभव किया कि निश्चय ही इस लड़की के मन मे प्रतिशोध होगा। हा-हाकार उठता होगा। उसका यौवन चीखता होगा और उसे आन्दोलित करता होगा। ऐसी विषम अवस्था में वह क्या कर बैठे, उस बड़े महल में किस क्षण आग लगा दे इसकी कल्पना मात्र से वह सिहर उठा। उसी अवस्था में अपने उन दोनों साथियों की ओर देखने लगा। वह बोला—'तो क्या हो हां, क्या।'

सुधाकर ने कहा—'एक ही रास्ता है कि सेठ मदनलाल अपनी लड़की का विवाह कर दे। ऐसा विवाह अब विवाद का विषय नहीं रहा। अमान्य भी नहीं। युग बदला है, तो इन्सान भी अब बदल गया है।'

निरंजन ने कहा—'मदनलाल चाहे तो हम उसे लड़का बता देंगे।' वह आगे बोला-यह तो निश्चित है, कोई पैसे वाला लड़का उसे नहीं मिलेगा। सामान्य मिलेगा। मैं कहता हूँ कि लड़की को सुख देने के लिये वह ऐसा क्यों न करे।'

सुधाकर ने कहा—'ये पैसे वाले मूर्ख हैं। समता का व्यवहार पसन्द करते हैं। धनवान सदा ही धनवान से सम्बन्ध बनाता है।'

मधुकर बोला--'यही उस वर्ग के विचारों की अराजकता है उसने पैसे को ही सर्वोपरि मान रखा है।' उस आगे कहा—'मदनलाल महत्वा-कांक्षी और मूर्ख व्यक्ति है। वह जीवन को दूर तक नहीं देखता। दुर्भाग्य यह है कि वह जिस वर्ग का सदस्य है, उसमें प्रायः ऐसे ही व्यक्तियों का प्राधान्य है। उनकी विचार धारा दूसरी है। दुनिया दूसरी है।'

निरजन बोला—'यह वर्ग अशिक्षित है। यही दुर्भाग्य है कि पैसा ऐसे ही वर्ग के पास है। वह साँपों का वर्ग है जो कुण्डली मारे धन के ऊपर बैठा है। जीवन की वास्तविकता और देश की गति-

उसकी माँ का आदेश प्राप्त था।

किन्तु मधुकर को लगा कि जैसे उसकी इच्छा के विरुद्ध उसे योग का पाठ पढ़ाया जा रहा था। उस रजनी का यौवन से पूर्ण शरीर जैसे किसी अग्नि-शिखा में डाल कर जला देने का प्रयत्न हो रहा था।

लेकिन एक बार जब किसी पूर्व-प्रतिष्ठा के हेतु उस घर में पूजा का विशेष आयोजन किया गया, तो संयोग से मधुकर भी उसी समय रजनी को पढ़ाने पहुँच गया। सेठानी ने उसे देखकर कहा – 'मास्टर जी, आज पूजा का दिन है, इसलिये रजनी का पढ़ना नहीं हो सकेगा।'

मधुकर ने बात सुनी, तो वह लौट पड़ने वाला था कि तभी सेठ मदनलाल ने कहा—'इस शुभ आयोजन में तुम भी सम्मिलित हो सकते हो।'

मधुकर की इच्छा नहीं थी, परन्तु बैठ गया, क्योंकि वह धर्म को मान्यता देने के लिये उस प्रकार के प्रपञ्च पसन्द नहीं करता था। वैसे उसे पहले दिन ही पता चल गया था कि एक पण्डितजी बाहर से आये है। प्रकाण्ड ज्योतिषी हैं। सही बताते हैं। लेकिन जब वह भी उस पूजा-स्थल पर बैठ गया तो सर्व प्रथम उस पण्डित को देखने लगा जिसकी प्रशंसा पिछले दिनों सेठानी ने की थी। किन्तु मधुकर ने उस पण्डित को देखकर अनायास अनुभव किया कि वह अधिक शिक्षित नहीं, लम्पट है। पूरा तान्त्रिक है। लेकिन मधुकर तो वह सभी प्रक्रिया देख रहा था और कौतुक का अनुभव कर रहा था कि आखिर यह सब क्या है, क्यों है ! इस प्रकार झूठी प्रणाली स्वीकार करके इन्सान क्या प्राप्त करता है। यह तो कोरी आत्म-प्रवञ्चना है। तभी उसका ध्यान एकाएक टूटा। जैसे उसे झटका लगा। अथवा किसी ने उसे अनायास ही झिंझोड़ दिया। पण्डित ने सेठानी को सम्बोधित किया था और कहा—'विधवा

लड़की को अलग रखना। अपनी पुत्र-वधू को ही हम वेदी पर बैठाना।'

और इतना सुनने के साथ, मधुकर ने देखा कि वह पुत्र-वधू एक कीमती रेशमी साड़ी पहिने लकदक कर रही थी, किन्तु विधवा रजनी केवल एक सादी धोती पहिने हुए थी। जब पण्डित ने सेठानी को, विधवा और सधवा की व्याख्या करते हुए, उस अनुष्ठान की विशेषता समझाई और कहा कि हमारे यहाँ विधवा का स्थान नगण्य है, तुच्छ है और अशुभ है तो मधुकर रह नहीं सका और बोला—'महाराज यह किस पोथे में लिखा है। आप पण्डित होकर भी इतने अनुदार न बनें! ऐसा गलत और निकृष्ट विचार भी प्रचारित न करें।'

पण्डित ने बात सुनी, और उसने मधुकर की ओर देखा। जैसे उसे घूरा।

लेकिन मधुकर तो कुण्ठित बन चुका था। उसके मन का रोष मुँह पर आ गया था। अतएव वह खड़ा हो गया, और जाने लगा।

सेठ ने यह देखा, तो कहा—'अरे, क्यों! मधुकर जी!'

मधुकर ने कहा—'सेठजी क्षमा करें, यह पण्डित अभद्र है। अयोग्य है। अमानुषीय है। इसने अभी एक सभ्य परिवार में बैठ कर जो कुछ कहा वह मेरी दृष्टि से असंगत है।'

पण्डित बोला—'तुम शास्त्र नहीं जानते। धर्म की रीति नहीं पहचानते।'

सेठ मदनलाल ने कहा—'पण्डितजी, यह कवि हैं, हिन्दी के लेखक हैं। विद्वान हैं।'

पण्डित बोला – 'विद्वान बनना और बात है और धर्म की मर्यादा पहचानना और बात! मैंने कुछ अशुभ या अनुपयुक्त नहीं कहा। हमारे शास्त्रों में विधवा का मुँह देखना भी त्याज्य है। आज कोई

मधुकर ने कहा --'रजनी देवी, मैं इसे स्वीकार नहीं करता। जो देश और समाज नारी का सम्मान नहीं कर सकता, निश्चय ही, वह मर जायेगा। विधवा बनकर नारी क्षुद्र और अशुभ होजाती है, मैं यह नहीं मानता। ऐसी अवस्था में तो समाज को उसका अधिक आदर करना चाहिये।'

रजनी ने कहा—'विधवा तिरस्कार पाती है, अशोभनीय बातें 'पाती है।'

उस समय मधुकर का मुँह गंगा की ओर था। प्रातः काल की हवा उन लहरों से खिलवाड़ कर रही थी, जैसे उन लहरों पर तैरती हुई झिलमिला रही हो। तभी उसने अपने स्वर पर झटका-सा खाया और रजनी की ओर देखकर बोला---'यही हमारा पाप है। ऐसे तो नारी की हत्या की जाती है।' उसने कहा---'यदि नारी का सम्बल पुरुष है तो एक पुरुष के जाने पर वह दूसरा प्राप्त कर सकती है हमारे यहाँ अब पुनर्विवाह की प्रणाली चालू है।' यह कहते हुए मधुकर ने बरबस ही, अपनी दृष्टि को उस युवा रजनी की आँखों पर टिका दिया। वह यह देखने के लिये उत्सुक था कि उसकी बात इस रजनी के मन पर किस प्रकार की प्रतिक्रिया करती है। यह क्या कहती है। क्या वह उसकी बात को आश्चर्य की वस्तु मानती है या नितान्त अभद्र।

लेकिन देखा कि रजनी के मन पर जैसे उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उसका मुँह भी गंगा की ओर उठा था, वह उसी प्रकार रहा। उसने मुँह से कुछ नहीं कहा।

मधुकर बोला---'रजनी जी, ऐसी अवस्था में तुम्हें अपनी ससुराल में रहना चाहिये था। वही घर तुम्हारे योग्य है। यह माँ-बाप का घर नहीं।'

रजनी बोली—'पिता जी स्वयं ले आये थे।'

मधुकर ने कहा—'जहाँ रहो, सम्मान के साथ रहो। वह पण्डित

सचमुच ही अमद्र था। मुझे बाजार में मिलता, तो उसे मारता। मैं उसे अच्छी प्रकार बताता कि नारी का अपमान करना कितना बड़ा अपराध है।'

उसी समय रजनी ने साँस भरी और कहा—'मास्टरजी, उस पण्डित का क्या दोष, हमारे घरो में यही होता है।'

मधुकर ने अपने स्वर पर जोर देकर कहा—'यह पाप है! जघन्यता है। मैं स्पष्ट देखता हूँ कि हिन्दू घरों में जीवित चिताएँ जल रही हैं।'

रजनी बोली—'विधवा बनकर ही मुझे लगा कि माता-पिता भी बदल गए। अब उनमे वह ममता नही। प्यार की भावना नही। आये दिन मुझे कुछ-न-कुछ सुनना पड़ता है। जो भाभी एक दिन मेरा आदर करती थी, अब वह भी तिरस्कार करती है। जैसे मुझे समाज की जूठन मानती है।'

उस समय सचमुच ही, मधुकर के प्राणो में जैसे जहरीला धुआँ घुट गया। वह तड़प उठा। उसने स्पष्ट देखा कि यह रजनी अपने मन में अथाह सागर समेटे हुए है। उसमें भूचाल उठा है। वह सागर हाहाकार कर रहा है।

रजनी बोली—'उस दिन हमारे घर में पूजा तो हुई, पर तुम्हारे लौटने पर जो विषाद भरा वातावरण बना, वह नही सुधरा। मैंने उस रात मुँह में दाना भी नही दिया। मैं रोती रही, पर किसी ने एक बार भी मुझसे आकर यह नही कहा कि तेरे मन मे क्या दुःख है, कैसी पीड़ा भरी है।'

मधुकर बोला—'अजीब परम्परा है यह कि लड़की विवाह होने के बाद अपने माँ-बाप के घर की नही रहती। वह विधवा भी बन जाये, तो उनसे सहायता या सद्भावना पाने की आशा नही रख सकती।' उसने आगे कहा—'ऐसा समाज, ऐसा इन्सान, किसी सीमा तक अपने और

मधुकर ने कहा —'रजनी देवी, मैं इसे स्वीकार नहीं करता। जो देश और समाज नारी का सम्मान नहीं कर सकता, निश्चय ही, वह मर जायेगा। विधवा बनकर नारी क्षुद्र और अशुभ होजाती है, मैं यह नहीं मानता। ऐसी अवस्था में तो समाज को उसका अधिक आदर करना चाहिये।'

रजनी ने कहा—'विधवा तिरस्कार पाती है, अशोभनीय बातें पाती है।'

उस समय मधुकर का मुँह गंगा की ओर था। प्रातः काल की हवा उन लहरों से खिलवाड़ कर रही थी, जैसे उन लहरों पर तैरती हुई झिलमिला रही हो। तभी उसने अपने स्वर पर झटका-सा खाया और रजनी की ओर देखकर बोला—'यही हमारा पाप है। ऐसे तो नारी की हत्या की जाती है।' उसने कहा—'यदि नारी का सम्बल पुरुष है तो एक पुरुष के जाने पर वह दूसरा प्राप्त कर सकती है हमारे यहाँ अब पुनर्विवाह की प्रणाली चालू है।' यह कहते हुए मधुकर ने बरबस ही, अपनी दृष्टि को उस युवा रजनी की आँखों पर टिका दिया। वह यह देखने के लिये उत्सुक था कि उसकी बात इस रजनी के मन पर किस प्रकार की प्रतिक्रिया करती है। यह क्या कहती है। क्या वह उसकी बात को आश्चर्य की वस्तु मानती है या नितान्त अभद्र।

लेकिन देखा कि रजनी के मन पर जैसे उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उसका मुँह भी गंगा की ओर उठा था, वह उसी प्रकार रहा। उसने मुँह से कुछ नहीं कहा।

मधुकर बोला—'रजनी जी, ऐसी अवस्था में तुम्हें अपनी ससुराल में रहना चाहिये था। वही घर तुम्हारे योग्य है। यह माँ-बाप का घर नहीं।'

रजनी बोली—'पिता जी स्वयं ले आये थे।'

मधुकर ने कहा—'जहाँ रहो, सम्मान के साथ रहो। वह पण्डित

'सचमुच ही अभद्र था। मुझे बाजार मे मिलता, तो उसे मारता। मैं उसे अच्छी प्रकार बताता कि नारी का अपमान करना कितना बड़ा अपराध है।'

उसी समय रजनी ने सांस भरी और कहा—'मास्टरजी, उस पण्डित का क्या दोष, हमारे घरों में यही होता है।'

मधुकर ने अपने स्वर पर जोर देकर कहा—'यह पाप है! जघन्यता है। मैं स्पष्ट देखता हूँ कि हिन्दू घरों में जीवित चिताएँ जल रही हैं।'

रजनी बोली—'विधवा बनकर ही मुझे लगा कि माता-पिता भी बदल गए। अब उनमे वह ममता नही। प्यार की भावना नही। आये दिन मुझे कुछ-न-कुछ सुनना पड़ता है। जो भाभी एक दिन मेरा आदर करती थी, अब वह भी तिरस्कार करती है। जैसे मुझे समाज की जूठन मानती है।'

उस समय सचमुच ही, मधुकर के प्राणों में जैसे जहरीला धुआँ घुट गया। वह तड़प उठा। उसने स्पष्ट देखा कि यह रजनी अपने मन में अथाह सागर समेटे हुए है। उसमें भूचाल उठा है। वह सागर हाहाकार कर रहा है।

रजनी बोली—'उस दिन हमारे घर में पूजा तो हुई, पर तुम्हारे लौटने पर जो विषाद भरा वातावरण बना, वह नही सुधरा। मैंने उस रात मुँह मे दाना भी नही दिया। मैं रोती रही, पर किसी ने एक बार भी मुझसे आकर यह नहीं कहा कि तेरे मन मे क्या दु:ख है, कैसी पीड़ा भरी है।'

मधुकर बोला—'अजीब परम्परा है यह कि लडकी विवाह होने के बाद अपने माँ-बाप के घर की नहीं रहती। वह विधवा भी बन जाये, तो उनसे सहायता या सद्भावना पाने की आशा नही रख सकती।' उसने आगे कहा—'ऐसा समाज, ऐसा इन्सान, किसी सीमा तक अपने और

दूसरों के साथ न्याय कर पाता है, मैं नही समझ सकता। ऐसे माँ-बाप सचमुच ही अदूरदर्शी हैं, अविवेकी हैं और ममताहीन हैं। वे क्या आत्मा और परमात्मा की भावना को मानते हैं, वे तो कोरे स्वार्थी हैं।'

रजनी ने कहा—'अब मैं जल्दी ही अपनी ससुराल लौट जाऊँगी। वहाँ मेरा जीने का सहारा तो है। जायदाद में हिस्सा है।'

मधुकर ने पूछा—'वहाँ कितने आदमी हैं?'

रजनी बोली—'चार भाई थे एक मर गया, तीन बाकी हैं। उनका बड़ा कारोबार है, जायदाद है।'

मधुकर बोला—'तो क्या उन भाइयों में से किसी एक से—'

चंचल बनकर रजनी ने कहा—'उनके लिये भी यह शुभ नहीं त्याज्य है।'

उसी समय पड़ोस की एक बुढ़िया वहाँ आई और रजनी को टँकोर कर बोली—'रजनी बीबी··· '

'हाँ, दादी! चलोगी। चलो!' रजनी ने मधुकर की ओर देखकर कहा—'अच्छा, मास्टरजी! मैं आपकी उस दिन की बात भूलूँगी नहीं याद रखूँगी!'

उस दादी ने कहा—'अच्छा यही है वे तेरे मास्टर!' वह बोली—'कल्लू नौकर बता रहा था कि मास्टरजी ने पण्डित को खूब फटकारा।' यह कहते हुए उस वृद्धा ने सामने खड़े मधुकर की ओर देखकर कहा—'पर भैया, इससे होता क्या है! इन बड़े घरो में विधवा का मोल क्या है!'

मधुकर ने कहा—'वह मोल छोटे घरों में भी नहीं।'

बुढ़िया बोली—'हाँ, बेटा! विधवा के लिये सभी की आँखें एकसी हैं। औरत विधवा बनती ही जब है कि जब उसका भाग्य फूटता है, देखने वाली आँखें भी उसकी ओर से फिर जाती हैं।'

मधुकर ने कहा—'अम्मा, यह पाप इस जाति को ले डूबेगा। आग

लगा देगा घर-घर में !'

बुढ़िया बोली—'वह आग तो लगी है। दहक रही है। कोई न देखे, तो इसका इलाज क्या है ! सेठ रामपत की लड़की कुएँ में डूब कर मर गयी, भला क्यों ! अरे, बेटा ! पेट की भूख तो एक बार मुला भी दी जाय, पर इन्द्रियों की भूख तो पागल बना देती है। और राँड़ें तो रह जायें, पर रँडुवे रहने दें, तब तो ! जैसा देश, वैसा भेष ! घर में सब रसगुल्ले खायें और एक मुँह ताका करे, यह नहीं होगा। वह चोर बनेगा। चोरी करके खायेगा !'

एकाएक अपने स्वर पर जोर देकर मधुकर ने कहा—'तुम ठीक कहती हो, अम्मा।'

अम्मा ने कहा—'बेटा, पूरे चालीस वर्ष हो गये, मुझे रँडापा भोगते ! पर वह जमाना और था, आदमी भी और ! आज तो घर-घर के दरवाजे पर गुण्डे लगे हैं ''कुत्ते की तरह सूँघते फिरते हैं, रास्ते में पड़ी हड्डी को !'

मधुकर बात सुनने के साथ उस बुढ़िया को देख रहा था। वह कितने स्पष्ट रूप से अपनी बात कह रही थी, सत्य का उद्घोष कर रही थी, इसका वह प्रत्यक्ष अनुभव कर रहा था।

बुढ़िया ने कहा—'लाला इस लड़की को दूसरी जगह बैठा दे, तो अच्छा है !' वह बोली—'पर वह ऐसा नहीं करेगा। [illegible] रहेगा।' यह कहते हुए उसने रजनी को साथ लिया और गंगा का वह पावन किनारा छोड़ दिया।

किन्तु मधुकर वहीं खड़ा रहा, वह उन दोनों को देखता रहा, देखता रहा।

१५

वाजार में बैठने वाला व्यक्ति जिस प्रकार से छल और कपट का व्यापार करता है, उसका प्रभाव घर पर भी पड़ता है। सेठ मदनलाल अपनी चतुराई से छोटी पूँजी लगाकर मालदार बना था, इसलिये जब उसकी लड़की विधवा हुई, तो वह इस वात को नहीं भूल सका कि लड़की जवान है, जीवन लम्बा है, उसको विताने के लिये किसी सहारे की आवश्यकता है। और वह सहारा उसकी दृष्टि में था। वैधव्य पाने के वाद जब वह रजनी को घर ले आया, तो उसने समझाने का प्रयत्न किया कि यह संसार असार है, यह सब झूठी माया है, शरीर आज है, तो कल जा सकता है। किन्तु उस सेठ की इस वात का प्रभाव वाजार की दुकान पर आये ग्राहक पर भले ही पड़ता हो, वह ग्राहक उस मदनलाल को ईमानदार और भला आदमी समझता हो, परन्तु स्वयं लड़की ने अपने पिता की उस भावना को बलवान नहीं पाया। क्योंकि व्यवहार में उसने अपने पिता को विपरीत पाया। उसे पता था कि घर का कोई सदस्य उसके प्रति अनुराग नहीं दिखा सका। जो मुलम्मा था, वह जल्दी उतर गया। सोने के स्थान पर पीतल दिखायी देने लगा। माता-पिता, भाई और उसकी पत्नी — वे सभी मानो एक ही लकीर के फकीर थे। जड़तावादी थे। सभी के समान, जवान विधवा लड़की को घर में देखना वे लोग अपशकुन से अधिक और कुछ नहीं मानते थे।

मदनलाल की दुकान पर एक मुनीम था, कृपाराम। वह विधुर था। घर में केवल माँ थी। उसकी माँ सेठ के घर आती-जाती थी। चतुर और सयानी-थी। जब सेठ की लड़की विधवा हुई, तो उस प्रौढ़ा के मन में अनायास यह वात आई कि सेठ अपनी लड़की को मार देगा। अन्ध-

विश्वासी होने के कारण उसका जीवन बरबाद कर देगा।

संयोग से उसी समय कृपाराम ने माँ को तीर्थ क्षेत्रों में ले जाने की इच्छा पूरी करनी चाही। सेठ ने छुट्टी दे दी। किन्तु जब इस बात का पता सेठानी को चला, रजनी को भी मालूम हुआ, तो उसने स्वयं भी तीर्थ पर जाने की इच्छा व्यक्त की ; बात सेठ तक पहुँची। यह निर्विवाद था कि कृपाराम विश्वासी व्यक्ति था। अतएव रजनी को अनुमति मिल गयी। एक नौकरानी साथ जाने को नियुक्त की गयी। सेठ की पुत्री, नौकरानी, कृपाराम और उसकी माँ चल दिये। कई दिन बीत गये। अन्त में हरिद्वार, ऋषिकेश और बद्रीनाथ। वे लोग बद्रीनाथ से लौटे तो तब तक एक मास से ऊपर उन्होंने यात्रा में व्यतीत कर दिया था। कृपाराम की माँ कल्याणी ने अपने व्यवहार और स्नेह से सेठ की पुत्री रजनी को अपनी बना लिया था। उसका बेटा कृपाराम भी रजनी का अधिक ध्यान रखता था। मानो दोनों ने एक-दूसरे को समझने का पूर्ण प्रयत्न किया था। मौन भाव से कृपाराम ने अपने मन का भाव भी उस यौवन मयी रजनी पर प्रगट करने का प्रयत्न किया। किन्तु स्वयं रजनी ने उसकी भावना को समझा था नहीं, यह कहना कठिन था। उसी समय कृपाराम के साथ एक दैवी दुर्घटना घटित हुई। जब वह बद्रीनाथ से लौट रहा था, तो रास्ते में अनायास ही उसकी माँ बीमार पड़ी और दो दिन बाद मर गयी। उस समय निःसन्देह उसे रजनी की संवेदना मूल्यवान जान पड़ी। उसकी आवश्यकता भी अनुभव हुई। इस घटना के साथ एक बात यह और हुई कि जब माँ मरी तो वह सेठ की पुत्री रजनी को सम्बोधित कर इतना कहने में समर्थ बनी कि मेरा कृपाराम अकेला है ···तुम्हारा सहारा मिला, तो इसका जीवन सुखी बन सकता है···

निःसन्देह, रजनी इतनी अनजान नहीं थी कि वह कृपाराम की माँ का वह अन्तिम बोल न समझ पायी हो। उस वाणी में [illegible] किस सत्य का उद्घोष था, रजनी ने उसे सरलता से [illegible]

फलस्वरूप, जब कृपाराम मातृहीन बना, तो वहां अपनी नौकरानी के साथ एक-अकेली बनी रजनी ने सहज भाव से उसे आश्वस्त किया। उसे धीरज बंधाया।

जिसका परिणाम यह हुआ कि कृपाराम का मन बरबस ही दूसरी दिशा की ओर मुड़ गया। वह मां का विछोह भूल गया और उस रजनी की ओर आतुर बनकर बढ़ जाने का प्रयत्न करने लगा। सचमुच ही, वह भूल गया कि रजनी उसके मालिक की लड़की है, जिस पर भरोसा करके वह साथ भेजी गयी है। उसे तो लगा कि रजनी केवल एक नारी है, यौवनभरी है, अभाव भरी है। वह सहज ही उसे प्राप्त हो सकती है। फलस्वरूप, जब वह वासना का जहरीला धुआं उस कृपाराम के प्राणों को मथने लगा, तो वह अपनी परिस्थिति भूल गया। माँ की अस्थियां गंगा में विसर्जित करते ही, वह अपने नगर की ओर न लौट कर पहाड़ पर ऊपर की ओर चल दिया।

उस दिन सूरज अभी पश्चिम की ओर जाना आरम्भ हुआ था। मसूरी के छोटे-से पार्क में मधुकर शारदा के साथ बैठा हुआ था। बीमारी से उठकर वह प्रातः-सांय उस बाग की ओर जाता था। एक-दो दिन में ही वह उस पर्वतीय मार को छोड़ने का विचार कर चुका था। वह इस उलझन में भी था कि उसके भविष्य की रूपरेखा क्या हो। यद्यपि उसे पता था कि भविष्य स्वयं बनता है, भगवान बनाता है। परन्तु सभी के समान मधुकर भी किसी निश्चय पर पहुँचने के लिये उत्सुक था। उसकी सबसे बड़ी विवशता यह थी कि वह उस बीमारी में शारदा के अधिक निकट पहुँच चुका था। कदाचित् शारदा ने स्वयं इसे स्वीकार किया था। उसने एक बार ही नारी की ममता और अनुभूति उस मधुकर को प्रदान कर दी थी। मानो यही उसकी आस्था थी। वह किसी दैवी प्रेरणा से प्रेरित बनकर ही ऐसा कर सकी थी।

उस समय मधुकर बेंच पर बैठा हुआ था। शारदा उसके पास से उठ कर बाग के उस पेड़ के पास पहुँच गयी थी कि जिस पर गुलाब

का एक सुन्दर फूल खिला था । यदि वह उस फूल को तोड़ने के लिये स्वतन्त्र होती तो निश्चय ही तोड़ लेती परन्तु उस पेड़ के पास ही मोटे अक्षरों में लिखा बोर्ड टँगा था, —फूल तोड़ना वर्जित है ।

कुछ देर उस पेड़ के पास खड़ी होकर जब शारदा लौटी तो वह प्रसन्न थी, गुलाब के फूल के समान महक रही थी । मधुकर के पास आते ही वह मुसकरायी और हँस पड़ी । उस समय मधुकर भी प्रसन्न था । उस दिन मौसम भी अच्छा था । न गर्मी थी, न अधिक ठण्ड थी । आसमान साफ था । वह छोटा-सा कम्पनी बाग जो कि सभी ओर से सिमट कर फूलों का गुलदस्ता बना था, भला लग रहा था । वह शारदा को देखते ही बोला—'मन करता है कि सदा तुम सामने बैठी रहो । इसी प्रकार मुसकराती और महकती रहो ।'

इतनी बात सुनी तो शारदा खिलखिला कर हँसी । वह बोली—'कवि जी, सभी की तरह एक दिन मैं भी बुढ़िया बन जाने वाली हूँ । अभी तो जीवन का दीया जल रहा है, परन्तु एक दिन बुझ जायेगा । फिर तो अन्धेरा ही रह जायेगा इस काया के खोल में ।

बात सुनी, तो मधुकर ठण्डा पत्थर बन गया । वह बोला—'तुम समझती हो कि दीये में प्रकाश नहीं रहता है वह रहता है । ऐसे ही जीवन नहीं मरता । रूप बदल जाता है ।' उसने आगे कहा—'शारदा देवी मेरा यह निश्चित मत है कि हम केवल इस एक जीवन के साथी नहीं । अनन्त जीवनों में, इस अनन्त पथ को पार करते चले आये हैं । बहते पानी की तरह यह जीवन भी ऐसे ही बहता रहेगा । चलता चलेगा ।'

शारदा ने कहा—'ओह ? कहाँ की बात लेते हो । किस ने देखा है दूसरा जीवन ।'

लेकिन तुरन्त ही मधुकर ने फिर अपने स्वर पर जोर दिया—'प्राणों का स्पन्दन, प्राणों का प्राण कभी नहीं मरा करता, मेरी रजनी ।'

शारदा ने अपनी आधी आँखें मींच लीं और इठलाते हुए कहा—'मेरे राजा, इतने भावनावादी मत बनो । जो जीवन पाया है, उसी को

देखा। उसी का मर्म समझो।'

परन्तु मधुकर का तो यह मानसिक दोष था कि वह एक बात ले बैठता, तो उसे सहज में नहीं छोड़ता था। उसने कहा—'इस जीवन को समझने के लिये भी भूमिका चाहिये। पीछे का इतिहास चाहिये। और तुम उसे महत्व नहीं देतीं। तुम भगवान की योजना में विश्वास नहीं करतीं शारदा देवी।'

शारदा ने सांस भरकर कहा—'मैं उसे मानती हूँ। समझती हूँ।

'तब तुम समझो, हमारे इस परस्पर मिलन, स्नेह-बन्धन को भी भगवान का आशीष प्राप्त है। उसी के आदेश से मैंने तुम्हे पाया है। लगता है कि भटके हुए दो राही जाने कितनी देर बाद अब यहाँ आकर मिले हैं। खोये हुए एक-दूसरे को पा गये हैं।'

एकाएक हँस कर शारदा ने कहा—'इन पत्थरों में········इस पर्वत की गोद में।'

मानों चंचल बन कर मधुकर बोला—'यह स्थान सब से उपयुक्त है, परम और पवित्र है। यहीं पर तो प्रकृति का प्रखर रूप प्रकट होत है। उसका दर्शन मिलता है। शहरों में नर्क है, विषाद है, पाप है।'

शारदा ने कहा—'वह पाप और दुर्गन्ध यहाँ भी है। इन्सान यह भी तृषित और पीड़ित है।'

सुनकर मधुकर चुप रह गया। वह एक अपूर्व भावना मयी दृि के साथ शारदा की ओर देखने लगा।

शारदा को प्रातः की एक बात का ध्यान आया और उसने कहा- 'बूढ़े के गाँव का एक आदमी आया था वह कह गया था कि बू हलधर ने तुम्हे बुलाया है।'

मधुकर बोला—'मैं वहाँ क्या करूँगा! अब यहाँ से लौट जाऊँगा तुम्हारी नौकरी का परिणाम पाते ही यहाँ से चला जाऊँगा।'

शारदा बोली—'वह आदमी कहता था कि गाँव में कोई ब फिसाद हो जाने वाला है। बूढ़ा हलधर परेशान है। वह तुम्हें अप

सहायता के लिये ग्रामन्त्रण दे रहा है।'

मधुकर ने कहा—'मैं सुधारक या नेता नहीं। मेरा यह रास्ता नहीं। मुझे अब जल्दी ही कोई काम करना होगा।'

शारदा ने कहा—'मेरा काम लग जायेगा तो तुम्हें कुछ नहीं करना होगा। दोनों का गुजारा चलेगा।'

सुनकर मधुकर हँस दिया ग्रौर बोला—'जी हाँ गुजारा चलेगा। तब तो मुझे तुम्हारा गुलाम बनना पड़ेगा। तुम्हारे आदेश पर.... '

एकाएक खिन्न बनकर बात को बीच में रोकते हुए शारदा बोली—'क्या कहते हो जी। इतनी ओछी बात करते हो।'

मधुकर ने सधत बनकर फिर कहा—'मेरी बात ग्रोछी हो या हीन, पुरुष बनकर मुझे काम तो करना पड़ेगा। सगत ग्रौर न्याय की बात चाहिये।'

शारदा बोली—'यह सभी जानते हैं कि ग्रौरत की कमाई से गुजारा नहीं होता। यह मार-वहन ग्रादमी को शोभा देता है।'

मधुकर हँस दिया—'लोग नारी के प्रति आकर्षित तो होते हैं, परन्तु जब वह पुरुष के जीवन मे प्रवेश करती है, तो लगता है आँधी की तरह ग्राती है ग्रौर लौटती बार उसे खोखला ग्रौर निकम्मा बना जाती है।' वह बात को ग्रागे बढ़ाते हुए बोला—'ग्रौरत से सम्बन्ध बनाकर ग्रादमी जीवन तो पाता है, पर मौत भी पाता है।'

सुनकर शारदा भी हँस दी—'तभी तुम ग्रौरत से डरते हो। उसे बोझीली मानते हो।'

मधुकर बोला—'निःसन्देह। बहुधा ग्रौरत ग्रादमी के जीवन मे प्रवेश करने के साथ ग्राशीष कम ग्रभिशाप ग्रधिक लाती है। उसका जीवन झिंझोड़ देती है।'

इतनी बात सुनी, तो शारदा जोर से खिलखिला कर हँस पड़ी। मधुकर ने जिस भोलेपन से ग्रपनी बात कही, वह उसे भली लगी। किन्तु तदनन्तर ही वह बोली—'महाशय, ग्राप यह क्यों भूलते हैं कि

नारी ही नर का निर्माण करती है। उसे कर्मण्य बनाती है।'

यह सुनते ही मधुकर सहज बन गया। वह शारदा की ओर दृष्टि उठाकर इस प्रकार देखने लगा कि जैसे सचमुच उसकी बात में कोई तथ्य था, सार था।

किन्तु तभी शारदा ने फिर कहा— 'नारी जब पुरुष के जीवन में प्रवेश करती है, तो वह उसे प्रेरणा और उत्साह प्रदान करती है। जीवन की जोत से जगमगाती है, उस नर-पुंगव को।'

बरबस, मधुकर ने कहा 'यह मानता हूँ।' लेकिन तभी उसने अपने मन की छुपी बात को लेकर कहा – 'लेकिन इस युग में, इस अर्थ युग में नारी कितनी बोझाली और कष्टप्रद हो सकती है, क्या कभी इसकी कल्पना की तुमने। मेरा अपना यह भी मत है कि एक नारी पाकर मनुष्य अपनी प्रवृति को भले ही शान्त करता हो, परन्तु वह भला और नेक नागरिक तब भी नहीं बनता। वह अपने पशुत्व को नहीं छोड़ पाता। परिस्थितिवश दबे, यही कहा जा सकता है। नारी पाकर आदमी बहु-व्यसनी और बहु धन्धी बनता है। अधिक स्वार्थी और स्वेच्छाचारी होता है। वह अपने स्त्री-बच्चों के सुख की कामना तो कर पाता है परन्तु शेष समाज को मूर्ख बनाकर ही, लूट कर ही, उस कामना की पूर्ति करता है।' यह कहते हुए मधुकर का मुँह लाल पड़ गया। वह बोला— 'शारदा जी, गृहस्थ बनकर ही आदमी अर्थ संचय की आराधना करता है। इस दुर्गन्ध में ही अपना जीवन खपा देता है। बताओ, ऐसे जीवन से एक इन्सान क्या प्राप्त करता है। ऐसा व्यक्ति न देश की बात सोचता है, न समाज की। वह कुएँ के मेढ़क के समान टर्र-टर्र करता हुआ इहलीला समाप्त कर देता है।'

मानो उस बात से स्वयं शारदा भी सहमत थी, समझती थी। अतएव, उसने सांस भरी और छोड़ दी। वह मुँह उठाकर बाग के एक बड़े पेड़ की ओर देखने लगी।

१५

पार्क में दूर दूसरी बेंच पर रजनी बठी थी और कृपाराम था।
जिस समय शारदा ने मधुकर को उस ओर देखने का संकेत किया, तो अवसर की बात थी कि उसी क्षण रजनी अपने स्थान से खड़ी हुई और उस कृपाराम के मुँह पर जोर से तमाचा मार कर बोली—'दुष्ट !'

किन्तु कृपाराम मदहोश था, वह अपनी मनःस्थिति खो चुका था। जब उसका सन्तुलन नष्ट हुआ, तो तमाचा खाकर भी नहीं चेता, वह तेज चाल से चलती हुई रजनी के पीछे दौड़ पड़ा। लेकिन वह उसे पकड़े, उस पर अपनी इच्छा व्यक्त करे, इससे पूर्व ही अपने स्थान से आगे बढ़ते हुए मधुकर को पा उस भयभीत बनी रजनी ने पास आते ही चीत्कार किया—'मास्टर जी···'

मधुकर ने उसे आश्वस्त किया—'चिन्ता न करो, घबड़ाओ नहीं !'

उसी समय कृपाराम भी वहाँ पहुँच गया। वह मधुकर को देख एकाएक सहम गया। उसका सिर झुक गया।

मधुकर ने कहा—'कृपाराम तुम लज्जा करो। पहिले यह देखो कि तुम्हारी उम्र क्या है। अवस्था क्या है !'

रजनी बोली—'मास्टर जी, तुम मिल गये हो, तो मुझे घर पहुँचा दो। इस मुनीम की नीयत खराब हो चुकी है। जब घर से चला तो आदमी था अब पशु बन गया।'

उसी समय शारदा वहाँ पहुँच गयी। रजनी कौन है मधुकर से किस

प्रकार परिचित है यह जानने के लिये उत्सुक हो उठी।

किन्तु मधुकर ने स्वतः ही सुनाया—'यह रजनी है मेरे नगर के एक सेठ की लड़की। यह विधवा है। यह कृपाराम नाम का व्यक्ति इनका मुनीम है। यह तो भला आदमी था। मेरी दृष्टि में अच्छा था। अब जाने कैसा बन गया।'

शारदा ने पूछा—'तो यहाँ कैसे आये ये लोग? यह रजनी देवी इस मुनीम के साथ क्यों?'

रजनी ने कहा—'हम-तीर्थ यात्रा के लिये आये थे। इस मुनीम की माँ भी थी। वह बद्रीनाथ के रास्ते में मर गयी। मैं साथ में मिसरानी लायी।' वह आगे बोली—'ऋषिकेश में इस मुनीम ने कहा कि मसूरी में एक सम्बन्धी हैं, उनसे मिलकर लौटना है, आज ही यहाँ आये थे।'

बात सुनी, तो बलात् शारदा मुसकरा दी। वह आँखों से हँस दी।

किन्तु तभी रजनी ने मधुकर की ओर देखकर कहा—'मास्टर जी, ऋषिकेश में ही मेरे मन मे खटका पैदा हुआ था। मिसरानी ने मुझसे कहा था कि इस मुनीम के मन में चोर है। पाप बैठा है।'

उस समय मधुकर गम्भीर था। उसी अवस्था मे उसने कृपाराम की ओर देखा कि जैसे वह अभियुक्त बना खड़ा था और अपने-आप ही पश्चाताप की आग मे जला जा रहा था। यह देख, जाने किस भावना से भर, मधुकर को उस पर घृणा और क्रोध के स्थान पर दया उपज आई! वह आगे बढ़ा और उसके कन्धे पर हाथ रखकर कहा—'मुनीमजी मैं जानता हूँ तुम सेठ के विश्वास-पात्र हो। उस दुकान के पुराने कर्मचारी हो।'

कृपाराम ने कहा—'मधुकरजी, मैं लज्जित हूँ।'

मधुकर बोला—'न, मुनीमजी, आदमी भूल करता है। लेकिन

जो व्यक्ति अपनी गलती को जल्दी स्वीकार कर लेता है, वह क्षमा के योग्य है।' उसने रजनी की ओर देखकर कहा—'इन्हें क्षमा कर दो। अच्छा यही है कि इस घिनौनी बात को यहीं भुला दो।'

रजनी ने कहा—'मास्टरजी, आप न मिलते, तो मेरा क्या होता।'

मधुकर ने कहा—'मेरे मिलने, न मिलने का कोई महत्व नहीं। तुम तो तीर्थाटन के लिये निकली हो, भगवान की पूजा में लिप्त हो तो यह मत भूलो कि वह भगवान तुम्हारा यहाँ भी सहायक बना है। सभी की तरह वह तुम्हारा भी पथ-प्रदर्शन करता है। वह द्वारपाल बनकर तुम्हारे जीवन द्वार पर खड़ा है। रक्षा करता।' वह बोला—'रजनी देवी,भूल सभी करते हैं। हम-तुम भी करते हैं। इसमें आश्चर्य क्या कि ये विदुर बने हुए मुनीमजी अपने शरीर की भूख मिटाने के लिये लालयित हैं, अभी अतृप्त बने हैं। अवसर और संयोग की बात कि इनके मन की प्यास जाग गयी। उससे ये चंचल और व्यग्र बन उठे। इनका सुनना तुम्हें अरुचिकर लगा, तो उसे मत सुनो। एक कान से सुनो तो दूसरे से निकाल दो।'

एकाएक शारदा ने कहा—'क्या कहते हो जी! ऐसे आदमी को गोली मार दो जो दूसरे की बहू-बेटी ......'

'ओह, इस प्रतिशोध और प्रक्रिया की कोई सीमा नहीं है, शारदा देवी! तुम एक व्यक्ति को मार सकती हो, उस की भावना को नहीं। वह इच्छा और दुर्भावना तो जागृत रहेगी। विष-बेलि के समान सभी ओर फैलती दिखाई देगी। एक व्यक्ति क्या, वह तो समूचे मनुष्य और नारी जगत को प्रभावित करेगी।'

फिर भी शारदा ने उपेक्षित और क्षुब्ध स्वर में कहा—'हमारे विधान का अर्थ ही यह है कि खून का बदला खून......थप्पड़ का जवाब घूँसा......जो व्यक्ति आचरणहीन हो, समाज के नियमों के विरुद्ध चलता हो, उसे दण्ड मिलना चाहिये। चोर को कैद, खूनी को

फाँसी···हाँ, इस मुनीम को इसी एक अपराध पर सजा हो सकती है' पुलिस इसका चालान कर सकती है।'

इतना सुनते ही, मधुकर और अधिक विषम बन गया। उसने कहा—'इस नारकीय यन्त्रणा का कोई अन्त नहीं है, शारदा देवी। यह रोग का उपचार नहीं। बोलो, क्या इससे समाज के दोष घटे हैं। उत्तरोत्तर बढ़े हैं। अपराध एक प्रवृत्ति है जिसका विकास आदमी की मानसिक और आत्मिक दुर्बलता से होता है। जब समाज उस दुर्बल भावना के विकास-बिन्दु को बन्द नहीं कर पाता, तो अपराध भी होता रहेगा, आदमी अपनी दुर्बलता का प्रदर्शन करता रहेगा!'

एकाएक तेज स्वर में शारदा ने कहा - 'तो हो क्या···हो क्या!'

शान्त और स्थिर स्वर में मधुकर ने कहा—'क्षमा और दया!'

'ओह! यह असम्भव है। जानते तो हो कि मनुष्य हीनता का दास है। कहते हुए शारदा ने सामने खड़े कृपाराम और सेठ की लड़की रजनी की ओर देखा। तभी उसने सहज भाव से हँस देने का प्रयत्न किया।

मधुकर बोला—'शारदाजी, यह कृपाराम मुनीम मेरा देखा-सुना व्यक्ति है। यह सेठ का लाखों रुपये का व्यापार चलाता है। ईमानदार हैं। इसने कभी एक पैसे का गबन नहीं किया। तुम्हारे कथनानुसार यह मुनीम सजा भी पा सकता है और यदि यह रजनी देवी नगर लौट कर अपने पिता से इसकी शिकायत करेगी, तो नौकरी से भी पृथक् किया जा सकता है।'

शारदा ने कहा—'निश्चय ही। यह होना चाहिये।'

मधुकर सहज भाव से मुसकराया—'हाँ, तुम्हारा विधान तो यही कहता है। आदि युग से इन्सान इसी मनोवृत्ति का परिचय देता आया है। पर मेरा तो मत है इस रजनी को न पुलिस में जाना चाहिये, न पिता से कुछ कहना चाहिए, अपितु इस विश्वासी मुनीम पर दया और अपनत्वता की भावना प्रदर्शित करनी चाहिये।' वह बोला—'जानती तो हो कि वासना की आग जब सुलगती है, तो हर पुरुष और स्त्री दोनों

को भस्म कर देती। उनका विवेक छीन लेती है। तो क्या ऐसे नर-नारी को दण्ड देना चाहिये···न, न, उसे तो सद्भावना चाहिये, नेह चाहिये।'

एकाएक खिलाखिला कर शारदा हँस पड़ी और बोली—'मधुकरजी तुम्हारे सरीखे मनुष्य इस धरती पर आ जायें, तो समझ लो फिर किसी की रक्षा नहीं; खैर नहीं! तब तो सर्वत्र अराजकता फैलेगी। जिसके मन में जो बात हो, यह फलेगी और फूलेगी।'

उसी समय देर से शान्त खड़ी रजनी बोली—'मास्टरजी जो आप कहते हैं; वही होगा। पर मैं तो आज डर गयी, सचमुच सहम गयी कि इन मुनीमजी के मन में कौन-सा राक्षस आ बैठा।'

तुरन्त ही, मधुकर ने कहा—'वह राक्षस सभी के मन में है। तुम्हारे मन में भी है। वह जब तब किल-किलाता है और अपनी पाशविक प्रवृत्तियों को समेट कर इन्सान के विवेक और सद्-इच्छा का खून कर देता है। ऐसा राक्षस कब जागे, कब हुंकार भरे, भला इसका कुछ पता है। यह भी तो हो सकता था कि वह मुनीम जी की जगह तुम्हारे मन में बोलता। तुम्हें परेशान करता। क्योंकि तुम्हारा समय है तुमसे ऐसी सम्भावना है। यदि इस प्रौढ़ मुनीम के स्थान पर कोई युवक होता, शायद···हाँ···'

रजनी ने एकाएक चीत्कार किया—'मास्टरजी, मैं इसे पाप मानती हूँ, अधर्म समझती हूँ।'

लेकिन मधुकर ने फिर शान्त और मृदुस्वर में कहा—'ऐसा तो सभी मानते हैं। रजनी देवी! पर मैंने कहा न, यह आसुरी भावना मदान्ध बना देती है। विवेक का गला घोंट देती है।'

रजनी ने कहा—'मास्टरजी, तुम मेरे साथ चलो, मैं लौट जाऊँगी।'

शारदा ने हँसते हुए मधुकर की ओर देखा—'तो तुम मास्टरजी···

मधुकर ने कहा—'मैं किसी समय इस रजनी को पढ़ाने जाता था। रामायण और भागवत पढ़ाता था। इस रजनी के पिता की दुकान

पर भी कुछ समय देता था।'

शारदा ने कहा—'वाह-वाह ! क्या ही अचूक औषधि प्रदान करते थे इस विधवा को !'

मधुकर ने शारदा का अभिप्राय समझ लिया। अतएव उसने कहा—'ऐसा वैद्य बनना मुझे प्रिय नहीं था। असंगत मानता था।'

शारदा ने फिर चुटकी ली—'पर तुम अपने पैसे तो बनाते थे, इस बहाने से ही उपार्जित करते थे।' उसने कहा—'लोग अपना स्वार्थ देखते हैं, दूसरे की मनःस्थिति समझने का प्रयत्न नहीं करते। जाने इस रजनी का पिता कैसा था कि जो पुत्री को इस भरी जवानी में योग का पाठ दिला ने चला था। वह सचमुच ही अन्धा था। और उसके अन्धेपन का लाभ स्वयं मास्टरजी ने भी उठाना पसन्द किया।' यह कहते हुए शारदा ने रजनी की ओर दृष्टिपात किया—'क्यों बहिन, तुम्हें उस रामायण और भागवत से कुछ मिला ? इस तीर्थ-यात्रा में भगवान का दर्शन हुआ ?'

रजनी ने कहा—'इन स्थानों में भगवान तो क्या मिलना था, पण्डे-पुजारियों के रूप में लुटेरों से जरूर पाला पड़ा। मेरा एक हजार रुपया खर्च हो गया।' वह बोली—'मैं तो समझती थी कि गुण्डे हमारे ही शहर में हैं, पर मैं तो जहाँ गयी, ऐसे ही आदमियों को देख पाया।'

शारदा ने कहा—'औरत के लिये आदमी कहीं भी उदार नहीं, चेतनशील नहीं।'

तुरन्त ही मधुकर ने कहा—'शारदा जी, यह तो ठीक है कि मनुष्य औदार्य भावना से प्रेरित नहीं; किन्तु आज की नारी भी अपने अस्तित्व को समझने में समर्थ नहीं। नारीत्व की पुकार में अनुप्राणित नहीं।'

उसी समय कृपाराम बोला—'मास्टर जी बात बड़ी है। मैं मानता हूँ कि आज मैं अन्धा बन गया। इन्सानियत से गिर गया।'

मधुकर ने कहा—'नही, दोष सेठ का है, आपका नहीं। उसे अपनी पुत्री को आपके साथ नहीं भेजना था। उसे नर और नारी के जीवन की इस विषमता को समझना था।'

कृपाराम बोला—'कुछ हो, मुझ पर सेठ को भरोसा था। मैंने उसका खून किया।'

रजनी ने कृपाराम की ओर देखकर कहा—'डेरे पर चलिये मुनीमजी मैंने भी अच्छा नहीं किया आपके मुँह पर···'

शारदा ने कहा—'नहीं ठीक किया। तुम्हें यही करना था।'

मधुकर बोला—'वह अशुभ था, अशोभनीय था। जब मुनीमजी ने आदि युग के इन्सान की जड़ता का अनुसरण किया, तो भला बताओ तो इस रजनी देवी ने कौन-सी सुन्दर भावना का प्रदर्शन किया वही रोष और प्रतिशोध इस युवती के प्राणों को झंकृत कर गया। एक ने शरीर की भूख मिटाने की याचना की और दूसरे ने तमाचा मार कर घिनौनापन दिखाया ··· यह मुनीम अपनी पुत्री के सदृश इस रजनी से प्रेम की भीख मांगता नहीं लजाया तो इसने भी ऐसे प्रौढ़ व्यक्ति के मुँह पर थप्पड़ मारना अशोभनीय नही समझा! दोनों अपराधी हैं। दोनों अमानुषिक हैं। दोनों विवेकहीन!' यह कहते हुए मधुकर का मुँह लाल बन गया। वह लौट चला। सभी चल दिये।

मधुकर ने जिस तन्मयता और अधीर भाव में अपनी बात कही तो उससे सभी गम्भीर बन गये। वे धीरे-धीरे कदम बढ़ाते हुए नगर की ओर लौटने लगे। जब वे एक मकान के समक्ष पहुँचे, तो रजनी और मुनीम कृपाराम वहाँ रुक गये। यह देख, मधुकर ने कहा—'यहाँ ठहरे हो मुनीम जी!'

मुनीम जी बोले—'हां मास्टर जी, यह सेठ के व्यापारी का मकान है।'

रजनी ने कहा—'आओ ऊपर चलो मास्टर जी।'

मधकर बोला अब नहीं। सन्ध्या आ गयी। ठण्ड बढ़ गयी।' उसने कहा—'मैं इसी सड़क के सिरे पर धर्मशाल में ठहरा हूँ, जरुरत पड़े

तो बुला लेना। मुनीमजी ने कुछ कहा उसके लिये मैं भी तुम से क्षमा मांगता हूँ।'

मुनीम ने कहा—'दोष मेरा है। दण्ड का अधिकारी मैं हूँ।'

मधुकर ने कहा—'कोई दोष नहीं इसका कोई दण्ड नहीं।'

रजनी बोली—'मैं कल सुबह चल दूंगी।'

मधुकर बोला—'हां-हां, चाहो तो और रहो। इस पहाड़ पर आयी हो, तो घूमो।'

उसी समय अपने मन में देर से बात लिये रजनी ने शारदा का परिचय पाना चाहा। जिसके उत्तर में मधुकर ने कहा—'उस धर्मशाला की यह भी एक मुसाफिर है।'

मधुकर और शारदा चल दिये। और आगे बढ़ गये। रास्ते में ही, शारदा ने हँस कर कहा—'मैं सोचती थी कि रजनी ने मेरा परिचय नहीं लिया, सो, अन्त में ले ही लिया!' यह कहते हुए उसने बरबस हँस दिया।

एकाएक मधुकर ने पूछा—'क्यों हँसी कैसे आई? क्या रजनी की बात पर?'

शारदा ने कहा—'हां, मेरा अपना मत है कि नारी स्वतः ही सन्देह-शील है! इस रजनी के मन में यह जरूर आया होगा कि मास्टरजी के साथ यह शारदा कौन है!' वह आगे बोली—'मधुकरजी, मेरा मत है कि नारी ही नारी के प्रति समवेदनशील नहीं। अपितु उसके प्रति ईर्षालु है, कुटिल है और जलनशील है!'

मानो अज्ञात भाव से मधुकर ने कहा—'शायद!'

शारदा ने अपने स्वर पर जोर दिया—'शायद नहीं, जरूर!'

मधुकर हँस दिया—'हां-हां कहा तो, यही होगा।'

शारदा बोली—'इस लड़की का पिता सचमुच ही मूर्ख है। जवान बेटी को ज्ञान सिखाता है। इस अवस्था में योगिनी बनाना चाहता है।' उसने कहा—'और मधुकरजी, तुम यह न समझना कि इस मुन

मुँह पर तमाचा मार कर इस लड़की ने यह सिद्ध किया कि वह बड़ी पारसा है, चरित्र का महत्त्व समझती है. मेरा मत है कि ऐसी स्त्रियाँ जल्दी ही जीवन के अन्धकार में जाकर खो जाती हैं।'

किन्तु इतना सुनकर भी मधुकर मौन था, जैसे भारी बना था। निश्चय ही वह शारदा की बात मनोयोगपूर्वक नहीं सुन पा रहा था। उसका ध्यान कहीं और था। उसने अपने कदम और तेज किये और बार-बार रुक कर पीछे रह जाती शारदा के लिये खड़ा होने लगा। इसीसे, शारदा बोली—'भागते क्यों हो, धीरे चलो। मैं टट्टू नहीं हूँ।'

लेकिन आश्चर्य, मधुकर तब भी मौन बना रहा। जब वह धर्मशाला पहुँचा, तो आदत के अनुरूप शास्त्री के कमरे में नहीं गया, सीधा अपने कमरे की ओर बढ़ गया।

किन्तु मधुकर अभी कठिनाई से आध घण्टा बिता पाया होगा कि तभी देखकर चकित रह गया, एक छोटे लड़के के साथ,रजनी वहाँ आई और चिन्तित बनकर बोली—'मास्टजी, चलिये तो, मुनीमजी का बुरा हाल हो गया। उन्हें चक्कर आया और खून की उल्टियों का दौरा पड़ गया…'

१६

संयोग से रजनी के पीछे ही, शारदा वहाँ आ खड़ी हुई। जब रजनी ने खिन्न भाव से मुनीम कृपाराम की अवस्था बतायी, तो तभी, मधुकर तड़प कर उठ बैठा और वह एकाएक ही अपने स्वर में आक्रोश भरकर बोला—'तुमने जो कुछ किया, उसका परिणाम यही होगा। वह बेचारा मर जायगा। तुम्हारे हाथों मरेगा!'

किन्तु उस समय सेठ मदनलाल की लड़की ऐसी स्थिति में नहीं थी कि कुछ कहती, वस्तुतः वह अपना दोष स्वीकार कर चुकी थी। लेकिन जब वह नहीं बोल सकी, तो तभी, शारदा ने आगे आकर कहा—'तुम क्या कहते हो जी! तुम्हारा मतलब है कि यह रजनी' वह बूढ़ा मुनीम जो कुछ कहने चला, उसे यह स्वीकार कर लेती!'

आश्चर्य कि शारदा की इतनी स्पष्ट और तीखी बात सुनकर भी मधुकर अपनी भावना नहीं बदल सका। वह तुरन्त बोला—'हाँ इसे स्वीकार करना था। इसका यही कर्तव्य था।'

'ओह, तब तो भ्रष्टाचार और पापाचार के फैलने का रास्ता खुल जायगा। ऐसे तो इस नारी का कोई अस्तित्व नहीं रहेगा।' शारदा ने बरबस ही फिर झुँझलाकर अपना मत व्यक्त किया।

किन्तु मधुकर ने बिस्तर छोड़ कर जूते पहनते हुए कहा—'शारदा जी, मत भूलो, इस भेड़िया पुरुष पर नारी ने शासन किया है। यह रजनी चाहती तो उस कृपाराम को दया और अपनत्व के साथ समझा सकती थी, उसकी और अपनी स्थिति व्यक्त कर सकती थी। परन्तु यह

तो रूढ़ और क्रूर बनकर उसके सन्मुख प्रस्तुत हो गयी । इससे तो उसकी आत्मा घायल हो गयी ।' उसने कमरा बन्द कर दिया । शारदा को भी चलने के लिए कहा ।

शारदा ने कहा—'तुम जाओ । मैं थक गयी हूँ ।'

किन्तु मधुकर नहीं माना । शारदा को आगे कर लिया । जब ये लोग वह रास्ता पार करके वहाँ पहुँचे, तो मकान मालिक डाक्टर ले आया था । वह कृपाराम की शारीरिक परीक्षा कर रहा था । देखकर उसने कहा—'दिल कमजोर है । थोड़ा खून दिया जा सकता है ।'

मधुकर ने कहा—'खून मेरा ले लो ।'

शारदा ने कहा—'नहीं, अभी तो बीमार पड़ कर उठे हो ।' वह डाक्टर की ओर देखकर बोली—'मेरा लिया जा सकता है ।'

डाक्टर ने शारदा को देखकर कहा—'हाँ तुम्हारा लिया जा सकता है ।' यह कहते हुए उसने शारदा के बदन से एक ट्यूब खून लिया और मुनीम कृपाराम के शरीर में पहुँचा दिया । दवा दी और उसने कृपाराम को पूर्ण आराम करने का आदेश दिया ।

अगले दिन जहाँ रजनी को लौटना था, वहाँ मधुकर को भी वह स्थान छोड़ देना था । किन्तु जब शारदा ने स्वयं उस कृपाराम को अपना रक्त-दान किया, तो वह उस रात उस स्थान से बहुत देर में लौटा । वह धर्मशाला जाकर शारदा के साथ ही उसके कमरे में पहुँच गया । निश्चय ही, शारदा कुछ थकी थी, रक्त देकर कुछ दुर्बलता भी अनुभव करती थी । मधुकर ने शारदा को बिस्तर पर पड़ने को कहा और स्वयं स्टोव जलाने लगा । उसने चाय के लिये पानी रखा । जब वह फिर शारदा के पास जाकर बैठा, तो तभी शारदा ने साँस भर कर कहा—'मधुकरजी मैं स्वीकार करती हूँ कि उस रजनी को उदार बनना था । उस मुनीम पर दया का भाव दिखाना था ।'

किन्तु उस समय मधुकर नहीं बोला उसने शारदा का गरम दुशाला ओढ़ लिया और बाहर पड़ते हुए कोहरे की ओर देखने लगा ।

शारदा ने फिर कहा—'सचमुच, ऐसे तो मुनीम कृपाराम मर जाता। उसके दिल पर गहरा आघात पहुँचा। इस रजनी ने थप्पड़ क्या मारा, उसके प्राणों को घायल कर दिया।'

मधुकर बोला—'मैं इस रजनी का मन पहचानता हूँ। यह नितान्त मूर्ख है। आदमी की भूखी है। यह दूसरा विवाह करना पसन्द करती है।' कहते हुए मधुकर उठा और फिर स्टोव के पास पहुँच गया। उसने खौलते पानी में चाय डाली और उसमें दूध डाल दिया। चीनी डाल दी। उस अवस्था में ही उसने शारदा से सुना, वह कह रही थी—'औरत की यह बड़ी हीनता है कि आदमी की कल्पना करती है · अपना दिल पत्थर पर पटक देना चाहती है!'

मधुकर ने स्टोव बन्द कर दिया। दो प्यालों में चाय कर ली। उसमें से एक प्याला शारदा को दिया, दूसरा स्वयं लेकर जब फिर चारपाई पर जा बैठा तो सहज भाव से शारदा ने मुसकराया—'तुम चाय बना लेते हो!'

मधुकर बोला—'अकेला आदमी सभी कुछ जान लेता है। मैं खाना भी बना लेता हूँ।'

शारदा बोली—'लेकिन मुझे यह पसन्द नहीं कि मेरे सामने तुम काम करो।'

मधुकर हँस दिया—'जब यहाँ से जाऊँगा तो ऐसे ही करना पड़ेगा। बोलो तुम्हें कहाँ पाऊँगा।'

शारदा ने कहा—'तुम अभी नहीं जा सकते। शास्त्री कहता था कि बूढ़े हलधर ने एक आदमी भेजा था। वह तुम्हें बुला गया था। शास्त्री को भी।' वह बोली—'शास्त्री तो नहीं जा सकेगा। तुमसे उस गाँव जाने को कहेगा।'

मधुकर बोला—'मैं अब धर्मशाला छोड़ दूँगा। शास्त्री का अधिक आभार वहन नहीं कर सकूँगा।'

शारदा ने हँस कर कहा—'और शास्त्री कहता है कि मैं मधुकर

जी को नहीं जाने दूँगा। यहाँ एक कवि सम्मेलन होने वाला है। एक राजा साहब हैं। वे आयोजन कर रहे हैं। तुम्हें भी आमन्त्रण आने वाला है।

मधुकर ने चाय पी ली, प्याला रख दिया और बोला—'वह राजा बहादुर मेरी कविता पसन्द नहीं करेंगे। उन्हें चाहिए शृंगार रस की कविता वह मैं न सुना सकूँगा।'

शारदा ने कहा—'इस चाय से कुछ गरमी मिली। डाक्टर ने शरीर से कुछ खून लिया, तो लगा, जैसे कुछ चला गया, घट गया।'

मधुकर बोला—'मन पर असर होता है।' उसने आगे कहा—'आज तुमने अनुपम उदारता का परिचय दिया। जिस कृपाराम की तुमने उपेक्षा की उसी को रक्त-दान दिया।'

शारद ने आंखों से मुसकराया और कहा—'वह मुझे ही देना था। सचमुच मैंने उसका विरोध किया था। कुछ कठोर शब्दों का भी प्रयोग किया। यह कहते हुए शारदा के माथे में बल पड़ गये, उसने कठिनाई से अपने मन का भाव व्यक्त किया—'मधुकर जी, यह भी विवशता है, इस इन्सान की नारी की! शरीर में बैठा, यह राक्षस सभी को तड़पाता है। मन में कसक पैदा करता है। कातर और चंचल बनाता है।'

उस समय बाहर कोहरा अधिक गहरा हो गया था। सामने का पहाड़ उस कोहरे में ढँक गया था। किन्तु मधुकर का मुँह उधर ही उठा था। उस अवस्था में ही वह बोला—'मेरा मत है कि सेठ मदन-लाल की यह लड़की अपनी इस सीमा को लाँघ जायगी। उसके अभि-भावक अदूरदर्शी हैं। लड़की के मन में क्या डोलता है, उससे वे बेखबर बने हुए हैं।'

शारदा तकिये के सहारे पड़ गयी और बोली—'क्षमा करना, मैं थकान-सी अनुभव करती हूँ।' और तभी मधुकर की बात लेकर उसने

कहा—'यह विषय छिछला है, घृण्य है। आखिर क्या एक यह विषय रह गया है, इस जीवन में, कोई और नहीं। समस्याएँ तो बहुत हैं।'

मधुकर ने कहा—'यह धनिक की लड़की है। धनिक परिवार में बिवाही गयी है। इससे आगे यह और क्या सोच सकती है। पुराने संस्कारों की दीवार इसके सामने खड़ी है। बोलो, इस तीर्थ यात्रा से यह क्या कुछ पा सकी है। निश्चय ही वासना की पुकार इसके प्राणों में उठती है। यह लड़की उससे प्रभावित होती है।'

एकाएक हँस कर शारदा ने कहा—'अच्छा तो है। तुम्हारे लिये सुयोग है। रजनी अपने मास्टर से प्रभावित है।'

'ओह छोड़ शारदा!' एकाएक मधुकर ने उसकी ओर देखा और शारदा के सिर के जूड़े में अपने हाथ फँसाता हुआ बोला—'सभी की तरह तुम्हें भी यह कहना आता है। एक दिन मेरे मित्रों ने भी यह कहा था। परन्तु जानती हो, अपनी कमजोरी को मैंने स्वय ही समझा और सेठ के यहाँ से हट गया। इस लड़की को पढ़ाना बन्द कर दिया।' उसने कहा—'मैं नारी को दाल-भात नहीं मानता। सड़ी हुई कीचड़ में डालने की वस्तु भी नहीं समझता। जहाँ अनुराग नहीं, अनुभूति नहीं प्राणों में झंकार नहीं। वहाँ शरीर की भूख मिटाना भी मेरी दृष्टि में मूर्खता है, जंगलीपन है। अमानवीय है।' यह कहते हुए मधुकर ने शारदा का दुशाला उतार दिया और वहाँ से अपने कमरे की ओर जाने के लिये प्रस्तुत हुआ।

किन्तु तुरन्त ही शारदा ने उसे पकड़ लिया और अपना कम्बल उसके कोट पर डाल कर कहा—'और बैठो, अभी नहीं।' वह फिर बोली 'आज जाने क्या बात है, मेरा मन करता है कि तुम बैठे रहो। ऐसे ही कुछ कहते रहो।'

मधुकर हँस दिया और अपने हाथ की घड़ी दिखा कर बोला—'देखती हो, दो बज रहा है। शहर भर सो रहा है। इस धर्मशाला में

भी सन्नाटा है। दूर कोई पक्षी बोल रहा है।'

जल्दी से शारदा ने कहा—'पागल चकवा अपनी चकवी को पुकार रहा है। यह भी हो सकता है कि दीवानी चकवी अपने चकवे की राह में आँखें बिछाये अपने कातर मन से भगवान से प्रर्थना कर रही हो, चकवे की खैर मनाती हो!'

मधुकर आँखों से हँस दिया—'तुम कविता करती हो।'

लेकिन शारदा के मन मे जो भावना उठ आई थी, उसने उसे टूटने या बिखरने नहीं दिया, उसने एकाएक उद्विग्न बनकर कहा—'मधुकर जी, तुम तो कवि हो। आखिर कहो तो, इस जीवन मे और क्या है। एक युवा नारी भी अपने मन की बात किसी से कहना चाहती है। अपने प्राणों का स्पन्दन किसी दूसरे को सुनाना पसन्द करती है। पर नारी होते, तो समझते उस रजनी के मन की बात··· उसकी कथा··· करुणा भरी पुकार···'

सचमुच ही शारदा का मन भारी हो गया। उसकी आँखों में कुछ छलछला आया। यद्यपि मधुकर ने वह तो नहीं देखा, परन्तु जिस भावना पर टिक कर उस शारदा ने अपनी बात कही वह उस पर अवश्य टिक गया। इसलिये वह स्वतः ही अतिशय गम्भीर बन गया। उसे लगा कि सचमुच, नारी का विज्ञान वह नहीं समझता। वह अब तक जितना देख पाया है, समझ सका है, वह बेकार है, झूठा है। किन्तु जब उसने शारदा की आँखों के नीचे मोती सरीखी बूँदें देखीं तो तुरन्त ही उसकी ओर झुक गया और नितान्त उद्वेलित बनकर बोला—'शारदा, मुझे क्षमा करो। मैं अभी अनजान हूँ। भला नारी के मन की इस परम्परा से अभी अवगत कहाँ हो सका हूँ। मैं सदा डरा हूँ कि कोई मुझे चोर न समझ ले—लुटेरा; वासना का दास।' यह कहते हुए उसने अपना हाथ शारदा की उन आकुल बनी आँखों पर रख दिया।

शारदा ने कहा—'यह मैंने समझा है। तुम्हें देखा है। पर कहो तो, नारी की इस रीत को त्याज्य क्यों माना जाय। ऐसी नारी को

उच्छिष्ट और अशुभ क्यों समझा जाय ! तुम्हारा मन तो कहता है कि उसे सड़ने दिया जाय, जीवनेतर अँधेरे में भटकने के लिये छोड़ दिया जाय। और यह समझना भूल जाते हो कि वह वासन या प्रणय बन्धन की भूखी नहीं, प्यार की भूखी है। नारी मनुहार चाहती है। उसका यही विज्ञान है। यही व्याख्या है, उसके जीवन की।'

जल्दी से मानो चंचल बनकर, मधुकर बोला—'हाँ-हाँ यही शारदा !'

लेकिन शारदा ने अपनी बात पर और जोर देकर कहा—'शायद यही सत्य है, शिवम् और सुन्दरम् है।'

मधुकर ने आँखों से हँस कर कहा—'हाँ-हाँ, कहा तो। मैं मानता हूँ।'

किन्तु शारदा ने फिर कहा --'तुम भावनावादी हो, कविता करते हो, तो उसमें नारी को परी-लोक की वस्तु मानते हो, भला क्यों ? किस लिये, तब क्या तुम उसका उपहास नहीं करते। आखिर मेघदूत में कालिदास ने जिस अमर सत्य की कल्पना की, अपनी उस कृति में जिस स्वर्गीय प्रेम और उसकी भावना का वह चित्रण कर पाया, क्या उसके प्रति उपेक्षित बनोगे ? उससे घृणा करोगे ? उसे इस धरती के अनुपयुक्त और अव्यवहार्य मानोगे ?' वह बोली --'मधुकर जी नर की तरह नारी भी इसी को आधार मान कर जीती है। इसी अनुराग भरे दीपक की जोत से जगमगाती है। तुम्हारा समाज, तुम्हारा धर्म, तुम्हारी पूजा और तुम्हारा बौद्धिक विकास सभी झूठे हैं। थोथे आदर्शवाद पर टिके हैं। तभी तो बाजार में चकले खुलते हैं। घर-घर में व्यभिचार के अड्डे बने दिखायी देते हैं। आखिर क्यों ? वह इसी दुर्विचार के कारण हैं। यह जवान रजनी अपनी भाभी को सजती देखती होगी, माँ को भी शृंगार किये पाती होगी, ससुराल में देवरों की दुलहनों को गर्वित हुई अनुभव करती होगी, तब इस के मन पर क्या बीतती होगी, कभी की इसकी कल्पना। कहे देती हूँ यह रजनी उन घरों में आग लगा देगी। जब वे घर धू-धू करके जलेंगे,

तो यह ठहका मार कर हँसेगी, खिलखिलायेगी। यह नागिन बन कर अपने परिवार के सदस्यों को डस लेगी यह रजनी!.....'

एकाएक चीखकर मधुकर ने कहा—'शारदा !'

किन्तु लगता यह था कि जैसे शारदा के मानस में भरा क्रोध मनस्ताप और प्रतिशोध का भाव उस रजनी की आड़ लेकर स्वतः ही फूट पड़ा था। उसकी आँखें चढ़ी थीं, माथे में बल पड़े थे और उसने मधुकर के सम्बोधन पर बिना ध्यान दिये सर्पिणी के तरह फूत्कार किया—'अजी कवि जी तुम क्या समझो, इस नारी के मन का हाहाकार। यह भी सीमा लांघना जानती है, यह समाज को बता देना पसन्द करती है कि उसके मन का प्रतिशोध क्या है। उसके आचरण का रूप क्या है.......'

इतनी देर में जैसे सचमुच ही मधुकर विक्षिप्त बन गया। वह अपनी मनःस्थिति से बेकाबू हो गया और तुरन्त ही, उस शारदा के मुहँ पर जोर से तमाचा मार बैठा और बोला—'बकवास करती हो। तुम प्रेम और भावना पर पोता फेर देना चाहती हो घिनौनी औरत पाप भरी बाजार की कीचड़ बना देना चाहती हो, इस नारी को ?'

लेकिन तमाचा लगते ही जैसे उस शारदा का दिमाग सुन्न पड़ गया। उसकी आँखें जिस प्रकार क्रोध का अंगारा उगलती हुई फैली थीं वैसी ही फैली रह गयीं। मानो उस मधुकर ने कोई अप्रत्याशित और अनधिकृत कार्य कर डाला। यह उस तेजोमयी और बलोमयी बनी हुई शारदा पर इस तरह हावी हो गया कि जैसे चतुर सवार तेज दौड़ते हुए घोड़े को एकाएक ही लगाम खींच कर रोकने में सफल हो जाये। यद्यपि थप्पड़ लगने के साथ शारदा की आँखें तो उसी प्रकार फैली रह गयीं, परन्तु वाणी रुक गयी। अब न उसके माथे में सलवटें थीं न भवें चढ़ी थीं। वह जैसे खोयी-खोयी सी, विस्फारित बनी केवल उस मधुकर को देखती भर रह गयी। जैसे वह समझने के लिये चेष्टित बन गयी कि यह युवक, यह गौरव से

पूर्ण, यह तेजोमय मधुकर आखिर जो अपने पुरुषत्व का अपने दम्भ का और अपने विवेक का इस प्रकार उस एक अकेली शारदा पर उपयोग कर सका है, तो और क्या शेष रह गया है- इसके पास !

परन्तु शारदा की वह मुखाकृति और मनःस्थिति देर तक स्थिर नहीं रह सकी। उसने तकिये पर पड़ा अपना सिर उठाया और हाथ को मधुकर के पैरों पर रखकर, उसकी आँखों पर अपनी आँख टिकाते हुए कहा—'तुमने मुझे मारा है, तो हाथ में चोट तो नहीं लगी। रोना मुझे चाहिये और यह कार्य तुमने सम्पादित किया है।'

मधुकर ने कहा—'मैं क्षमा माँगता हूँ, शारदा देवी ! मैं पागल बन गया।'

शारदा ने कहा—'पर नारी तो पुरुष को ऐसा ही पागल देखना चाहती है। उसे अनुभव तो हो कि उसका कोई है, मन से उसकी बात सुनता है।' वह बोली—'मुझे अब तक जो भी मिला, मीठी बात करता रहा। मुझे ठगने की ही टोह लगाता रहा। मेरे नख-शिख का वर्णन करता रहा। पर ·· आह !' और उसने अपना वह मुँह मधुकर की बहती आँखों पर रख दिया। अपने गालों पर उसने इन आँसुओं को ले लिया और तभी फिर उसकी आँखों के नीचे अपनी आँखें ले जाकर कहा—'मधुकरजी आज ही तो मुझे अनुभव हुआ कि कोई मेरा है; मेरा साथी है। अब मैं अकेली नहीं हूँ। इस भरी रात में मैं इसके सन्नाटे में किसी के पास बैठ सकती हूँ और अपने मन की बात कह सकती हूँ। बस यही विज्ञान है। यही गर्व और सम्मान है। इतना पाने के लिये नारी अपने को मुटा देती है। माँ-बाप-भाई और अन्य परिजनों को छोड़ देती है। वह दूर देश में बसे अपने पिया की नगरी में जाकर अपना ही संसार बनाती है और उसी में अपने जीवन का विसर्जन कर देती है। देखिये तो, कैसी अजीब आस्था और परम्परा है, इस नारी की ! वह स्वयं ही अपना संसार अपने साथ लिये रहती है।

इतना सुनते हुए, मधुकर सचमुच ही अपने को भूल गया।

अपनी दोनों बाँहों में शारदा को समेट लिया और उसकी ओर झुकता हुआ बोला—'शारदा देवी आज तक कल्पना की थी, पर अब साकार और मूर्तिमान रूप में देखा कि नारी सचमुच देवी है। वह शिवा है, जो अपने शिव का—'इस इन्सान का विष स्वयं पान करती है फिर भी उसे जीवन प्रदान करती है। तुमने मुझे क्षमा कर दिया, यह देखकर मैं आभारी हूँ। सचमुच, मैं नारी को महान और शुभ्र सम्पदा मानता हूँ। यह ऐसी खान है कि जो हीरे उगलती है। इस धरती पर ऐसे जीव हैं कि जो स्वयं अंगारे खाते हैं और आँखों से तरल आँसू बहाते हैं; नारी भी एक ऐसी है!'

शारदा ने एकाएक साँस भर कर कहा—'आह, तुम मेरे हो!' और उसने निढाल तथा अशान्त बनकर अपने को मधुकर के ऊपर छोड़ दिया।

१७

बहुधा किसी व्यक्ति-विशेष के लिये लोग जिस प्रकार की धारणा निर्धारित करते हैं, वह सत्य नहीं उतरती। बूढ़े हलधर की अवस्था भी ठीक ऐसी ही थी। नगर में रहते वह शराब पीता, फिर विक्षिप्त सदृश बना रहता, तो इस तरह दीन और मोहताज व्यक्ति किसी की दृष्टि में भी अच्छा सिद्ध नहीं हो सकता था। किन्तु वह हलधर जब एकाएक ही फिर अपने गाँव पहुँच गया, तो उसकी उस मलिन अवस्था के अन्त-पंट में जिस प्रकार का प्रकाश दिखायी दिया, वह सचमुच ही, अप्रत्याशित और अनुपमेय के समान उसके मनस से फूट निकला था। हलधर का

नाम जल्दी ही दूसरे गाँवों में भी प्रचारित हो गया। इन गाँवों का स्त्री और पुरुष समाज उसके पास आने लगा, इस अभिलाषा को लिये कि वह इन्हें आशिष देगा, उनकी मुराद पूरी कर देगा। और समाज में किसी को सन्तान की इच्छा थी, किसी को धन की। उन्ही में कुछ ऐसे भी व्यक्ति आते कि जो अपने प्रतिद्वन्द्वी को पछाड़ना चाहते, मुकदमे में विजय चाहते।

इन समस्त धारणाओं, मान्यताओं और इच्छाओं को उस एक समाज में आकर, हलधर स्वयं तो उन्हें क्या दे सकता था, परन्तु उसने यह अवश्य पाया कि इस धरती पर अंधेरा है। सभी ओर अज्ञान और स्वार्थपरता का बोलबाला है। अपने मन में पैदा हुई इस धारणा का परिणाम यह हुआ कि वृद्ध हलधर बरबस ही इस बात को भूल गया कि कौन अपना है कौन पराया है। उसने मित्र-अमित्र का भेद करना भी छोड़ दिया। शनैः-शनैः उसने गोधू के घर जाना भी बन्द कर दिया। गाँव मे जो शिवालय था, वही पर उसका डेरा लग गया। रात और दिन के हर प्रहर मे अधिकांश समय उसके पास दो-चार व्यक्ति बैठे रहते और वे उस हलधर से विविध चर्चाएँ करने में निमग्न रहते। वह हलधर, कि जिसने कभी धर्म का एक अक्षर नही पढ़ा अब, लोगो से धर्म और विवेक की बात करता। उन्हें इनसानियत का सबक देता। जिसके प्रतिफल स्वरूप लोग उसे फल-मिठाई भेंट करते, भोजन देते और वस्त्र प्रदान करते। आश्चर्य कि हलधर वह सभी कुछ गाँव के उस अभावग्रस्त समुदाय को दे देता कि जो सचमुच ही उन वस्तुओं के लिये तरसते और उन्हें अपने लिये अप्राह्य मानते।

किन्तु उन्ही दिनो गाँव का कदाचित ही कोई व्यक्ति इस बात को जानता था कि बूढ़ा हलधर लोगों को दया-ममता का उपदेश देने के साथ स्वयं भी परेशान था। वह विषम बना था। और उसका कारण अन्य कोई नही, स्वयं उसी का भाई गोधू था। धीरे-धीरे उस गोधू ने एक पार्टी बनायी थी और वह सन्तू चौधरी तथा उसकी पार्टी के

विरुद्ध षड्यन्त्र रचने की तैयारी कर रहा था। लगता था कि उस गाँव के क्षितिज पर विपत्ति मँडरा रही थी और वहाँ के समाज के हृदयों में भरा जहरीला धुआँ समूचे गाँव को ग्रस लेना चाहता था, प्रभावित कर रहा था।

एक दिन जब सन्ध्या गयी, रात आ गयी, तो हलधर मन्दिर पर बैठा हुआ यद्यपि कुछ आदमियों से बात कर रहा था, परन्तु उसका ध्यान कहीं और था। इसलिये वह बार-बार चौंकता और एक दार्शनिक की तरह कभी सामने बैठे लोगों की शक्ल देखता और कभी अपने-आप ही, तारों से भरे आसमान की ओर देखने लगता। उसके मन में क्या था, यह तो कोई नहीं जान सका, किन्तु यह निश्चित था कि बूढ़ा हलधर बार-बार उस शिव की पिण्डी की ओर देखता और होंठों को फड़फड़ाता। एक-एक कर सभी आदमी उसके पास से उठ गये और वह अकेला रह गया। उसी समय हलधर उठा और मन्दिर से चल दिया। गांव में अन्धेरा था। सभी घर बन्द थे। किसी-किसी घर में कोई बच्चा रोता, कहीं कोई खटका होता। कभी गलिहारे का कोई कुत्ता भौंक उठता।

उस समय हलधर का लक्ष्य था, सन्तू चौधरी का मकान। वह सन्तू, जिस चारपाई पर सोता हलधर वहीं गया। देखा कि वह अकेला था, जाग रहा था छोटे-से टिमटिमाते दीपक के प्रकाश में हलधर ने कहा— 'सन्तू तूने सदा मेरा कहा माना है। तो आज भी मान। बात पीछे जानना। पहिले मेरा कहा कर। तू मन्दिर पर जा बैठ। मैं जब तक न लौटूं तू वहीं रह, चल उठ !

सुनकर, सन्तू चौधरी चकित हुआ। उसने कहा—'फिर भी बात क्या ?'

'ओह, कहा न मैंने ! बात मैं आकर बताऊँगा तू जा।'

सन्तू उठ लिया। उसने लाठी उठाई और मन्दिर की ओर बढ़ गया। उसी समय हलधर उस चारपाई पर पड़ गया। वह सोया नहीं,

परन्तु साँस जोर-जोर से लेने लगा। उसने दिया बुझा दिया।

संयोग की बात कि उसी समय दो-तीन व्यक्ति वहाँ आये। उनमें एक गोधू। उसी ने हाथ से टटोला कि चारपाई पर सन्तू है या नहीं। तुरन्त ही उसने धीरे से कहा—'है।'

'है, प्रत्युत्तर में साथी ने बात की पुष्टि चाही और तभी गोधू ने हाथ में ली हुई लाठी का पहिला वार उस चारपाई पर कर दिया। दूसरी लाठी पड़ी, फिर तीसरी जिसके साथ ही एक चीख निकली और उस अन्धेरे में विलीन हो गयी। किन्तु सन्तू मन्दिर तक नहीं गया, वह रास्ते से लौट आया। क्योंकि उसके मन में यह आश्चर्य विद्यमान था कि आखिर यह बूढ़ा हलधर किस नाटक का अभिनय कर रहा है। अतएव वह विस्मय तथा जिज्ञासा से भरा जब फिर अपने स्थान पर लौटा, तो रास्ते में ही उसने चीख सुनी, तो लाठी सम्भालकर, जैसे ही आगे लपका तो अपने स्थान से कुछ आदमियों को लौटता देख, उसने ललकारा—'कौन !'

एकाएक परिचित स्वर सुन पड़ा—'अरे, सन्तू !'

दूसरा स्वर उठा—'क्या, सन्तू !'

किन्तु सन्तू चौधरी तो बलवान था, उसने आगे बढ़ कर फुर्ती से एक आदमी को पकड़ लिया और चिल्लाया—'रे, गाघू !'

गोधू ने कहा—'हूँ।'

सन्तू चौधरी ने उसका गला पकड़ लिया और चीत्कार किया—'जान से मार दूँगा, तुझे ! बोल, क्यों आया, मेरे घर ! वह भल्खू पल्टू ···'

संयोग की बात कि अभी लोग सोये नहीं थे, घरों में जाग रहे थे। कुछ लोग घरों से बाहर आ गये।

सन्तू ने कहा—'इस गोधू ने कुछ किया है। बूढे हलधर को [illegible] है। मेरा दिया जलाओ। देखो।'

एक आवाज उठी—'तुम्हारा दीया···तुम्हारा घर··· [illegible]

भला वहाँ हलधर क्यों जायेगा। वह तो मन्दिर पर होगा।'

किन्तु सन्तू क्रोध में था, पागल बना था, सफाई नहीं दे सका। एक आदमी ने उसका दीया जलाया और जब हलधर की चादर हटाई तो देखकर सभी सन्न रह गये कि वह बूढ़ा खून में लथपथ पड़ा था। गठरी बना था। जैसे मांस का लोथड़ा बन गया था।

देखते ही, सन्तू ने उस गोधू का गला दाब लिया और चीखा—'अरे कम्बख्त!'

इतनी देर में स्त्री-पुरुषों की भीड़ और जमा हो गयी। सन्तू ने ऊँचे स्वर से सभी को सुनाया—'यह बाबा हलधर आज साक्षात शिव बन गया। जो जहर मुझे पीना था वह पी गया।'

एक आवाज उठी—'फिर भी बात क्या है, यह रहस्य क्या...?'

दूसरा बोला—'यह बूढ़ा यहाँ क्यों आया और यह गोधू? इसका भाई को मारने का मतलब?'

तीसरे ने कहा—'यह गोधू इस सन्तू से खार खाता था। षड्यन्त्र रच रहा था।'

चौथा बोला—'मैं शाम को बाबा के पास बैठा था। हरचन्दा आया और चुपके से कुछ कह गया।'

'हरचन्दा.. वह मभंलू का लड़का!'

'हाँ, वही! आजकल वह गोधू के साथ रहता है। खेत पर बैठ कर साथ-साथ तम्बाकू पीता है!'

'तो बुलाओ उसे! पूछो उससे!'

और तभी देखा कि हरचन्दा स्वतः ही आ गया। देखते ही सन्तू ने कहा—'अरे हरचन्दा...'

हरचन्दा ने कहा—'हाँ चौधरी, आज गोधू ने तुम्हें मारने का प्रोग्राम बनाया था। मैंने सुन लिया था। बाबा को बता आया। मल्खू और पल्टू ने साथ देने का वचन दिया था, क्योंकि उन दोनों ने तुमसे मुकदमा हारा था।'

इतना सुनना था कि वहाँ पर खड़े समस्त स्त्री-पुरुष समुदाय का सिर झुक गया। सभी के मन में खून से लथपथ पड़े उस बूढ़े हलधर के प्रति आदर और श्रद्धा का भाव उमड़ आया। वह बूढ़ा, ऐसा त्याग भी कर सकने में समर्थ बना, उसकी आत्मा मे ऐसा प्रकाशमान तेज जागरित हुआ, यह देख, सभी को दुःख तो हुआ, पर कौतुक भी हुआ।

उसी समय एक आदमी ने हलधर की नाक पर हाथ रखा और कहा—'साँस आता है, आ रहा है!'

दूसरा स्वर उठा—'साँस है हे राम!'

एक औरत ने कहा—'मैं देवता को प्रसाद चढ़ाऊँगी।'

दूसरी बोली—'मैं देवि को बकरा भेंट दूँगी।'

किन्तु उन सभी के विपरीत सन्तू चौधरी ने नितान्त विह्वल बनकर कहा—'भाई यह चारपाई उठाओ। अस्पताल ले चलो। मैं इस बाबा के लिये अपना घर लुटा दूँगा। भिखारी बन जाऊँगा।'

किसी एक ने कहा—'पुलिस में ले चलो। इन जल्लादों को पकड़-वाओ।'

और तभी उन चार आदमियों ने वह चारपाई उठा ली। सर्दी तेज पड़ रही थी। रात अन्धेरी। परन्तु इसकी किसी ने चिन्ता नही की। दो-तीन लालटेनें चली, बीसियों आदमी चले और उसके साथ-साथ चार कन्धों पर बाबा हलधर की चारपाई चली। तभी कुछ औरतें रो पड़ी। आदमियों की आँखें भी विह्वल बन उठीं।

उस समय प्रातः की पौ फट चुकी थी कि जब लोग थाने में पहुँचे। रिपोर्ट लिखाई। मारने वालों मे गोधू, मल्लू और पल्टू के नाम दिये। फिर हलधर की चारपाई अस्पताल मे जाकर रख दी गयी। सभी को जैसे उस समय भगवान की सत्यता पर भरोसा हो गया था, क्योंकि उस वृद्ध के शरीर में अभी प्राण थे। साँस चल रहे थे। उसका सिर फूटा था और शरीर के कई भागो मे घाव हो गया था। वह बे-

और बोलने में असमर्थ था। फलस्वरूप, बूढ़ा हलधर अस्पताल में दाखिल कर लिया गया। दिन निकला, सूरज ऊपर चढ़ा, पुलिस गाँव में गयी और नोधू के साथ उसके दोनों साथियों को गिरफ्तार कर लिया गया।

उसी दिन के प्रातः में जब अधिकांश लोग गाँव लौट गये, तो सन्तू चौधरी सब के साथ नहीं लौटा। वह अस्पताल से सीधा धर्मशाला में पहुँचा। वहाँ जाते ही, उसने शास्त्री के पैरों में सिर झुकाया और रात का समस्त वृत्तान्त उसे विस्तार से बता दिया।

उस प्रातः के समय शास्त्री स्नान करके पूजा पर बैठने वाला था। वह उसका नित्य का कार्यक्रम था। उसमें समय लगाता था। अतएव, जब उसने गाँव की और हलधर की अवस्था का वह वर्णन सुना, तो वह दुःखी हुआ और बोला—'तुम मधुकर से मिलो, शारदा से भी। वह तो ऊपर हैं। अपने कमरों में !

सन्तू उधर गया। जाकर देखा कि मधुकर सो रहा था। उस रात प्रातः के समय ही सो पाया था। शारदा भी सो रही थी। दोनों ही रात भर जागते रहे थे। उस रजनी और कृपाराम की बात पर अटके थे। वे व्यर्थ ही उसे विवाद का विषय बना बैठे थे। उन्हें सोता देख सन्तू ने चाहा कि लौट जाये। किन्तु यह भी उसके लिये कठिन था। उसकी आत्मा में शोर उठा था। उस हा-हाकर में वह सभी-कुछ भूल चुका था। क्योंकि बूढ़े हलधर ने उसकी प्राण-रक्षा के लिये अपने प्राणों का विसर्जन किया। ऐसा ऊँचा भाव उसने जीवन में कहाँ देखा था। कभी अनुभव नहीं किया। वह स्वयं भी अच्छा आदमी नहीं था। उसने पैसे के लिये व्यक्ति को ठगा था, इन्सानियत का खून करना उसका स्वभावगत कर्म था। किन्तु हलधर ने जिस भावना का और अमर सत्य का उद्घोष किया, वह तो उसकी दृष्टि में जैसे सर्वथा अलौकिक और किसी दूसरे लोक का विचार था। किसी दूसरे ही इन्सान का दृष्टि-बिन्दु था। और स्वयं सन्तू पढ़ा नहीं, कभी अच्छे व्यक्तियों में भी नहीं बैठा,

इसलिये, वह उस नयी परम्परा की, ऊँची धारणा को जब ग्रहण नहीं कर सकता, तो जैसे बिलकुल निचाई पर खड़े रह कर भी, वह उसे निहारने लगा, अपने से दूर की वस्तु मानकर भी श्रद्धा और आदर के साथ उसकी ओर झुक गया।

इसलिये, उस मधुकर से दो बात करना सन्नू चौधरी के लिये आवश्यक था। वह हलधर को अस्पताल में सौंप कर भी गाँव जाना पसन्द नहीं करता था। अतएव उसने पुकारा—'बाबूजी···मधुकरजी···'

जैसे चौंककर मधुकर जगा—'कौन !'

'मैं सन्नू !'

'तुम, सन्नू चौधरी ! क्यों ! इतने सुबह !' मधुकर उठ कर बैठा हुआ।

सन्नू ने कहा—'बाबूजी अब तो सूरज चढ़ा है। मैं आया था, आप के पास ! उन बीबीजी के पास···'

मधुकर ने कहा—'हाँ चौधरी ! हम रात में देर में सोये। चार बजे सोये। तुम बोलो।'

सन्नू ने कहा—'बाबूजी, हमारे गाँव का नाश हो गया। बेचारा बाबा उसके भाई गोधू ने '

'क्या मार दिया, बाबा !' एकाएक चिन्तित बनकर मधुकर ने कहा।

किन्तु सन्नू बोला—'हाँ बाबूजी, वह मरे के बराबर है। बस साँस अटका है। अब वह अस्पताल में···'

'अस्पताल में है, बाबा हलधर ! ओह ! कब से ?'

सन्नू ने कहा—'अभी सुबह लाये। बात रात की···'

'राम-राम ! ऐसे जंगली हैं लोग। उस बूढ़े पर हाथ उठाया। वह तो स्वयं ही मौतकी चादर ओढ़े हुए था। कभी भी मर सकता था। वह क्या देर तक रहता।' चिन्तित और खिन्न बना मधुकर उठा और सन्नू को वहीं छोड़ शारदा की ओर गया। देखा कि वह सो रही

उसके सिर के समस्त बाल तकिये पर बिखरे हैं वे जैसे सांपिनों की तरह फैले हुए हैं। कोई और समय होता, तो निश्चय ही, मधुकर शारदा के उस रूप को देख तन्मय बनता, उसे निहारता रहता परन्तु उस समय तो वह बूढ़े हलधर की बात लिये था। इसलिये उसने शारदा का हाथ पकड़ कर हिलाया और उसे जगा दिया। उसने कहा—'तुम सो रही हो, उठो। देखो कितना दिन चढ़ गया।'

किन्तु शारदा ने आंख खोलते ही अंगड़ाई ली और मधुकर का हाथ पकड़ कर एकाएक कहा--'ओह, तुम !' वह बोली--'अभी स्वप्न में भी तुम थे, मेरे पास ! हम दोनों पहाड़ की ऊँची चोटी पर पहुँच गये। तुम मेरे पीछे दौड़ रहे थे मुझे पकड़ना चाहते थे ···'

मधुकर ने कहा 'हाँ, हाँ, अब···अब तो मुझे तुम्हें पकड़ना ही पड़ेगा, तुम्हारे पीछे दौड़ना होगा।'

शारदा बोली—'आह, कितना सुहावना था, मेरा सपना। मुझे सुखकर लग रहा था।'

उसने कहा—'कहो तो, भला ऐसा सपना भी क्या व्यवहार्य होगा !'

मधुकर गम्भीर था। अभी उसका हाथ शारदा के हाथ में था। उस अवस्था में ही वह बोला—'सपना-सपना है। रात में देखा और प्रातः होते ही भुला दिया जाता है। उसे कोई क्या गांठ बांध कर रखता है।'

किन्तु शारदा ने विद्रूप का भाव लेकर कहा—'नहीं, नहीं, मैं अपने सपने को नहीं भूलूँगी। इसे चरितार्थ करूँगी···मैं अपने स्वप्न-देवता के साथ···'

मधुकर बोला—'अब उठो। देखो, वह बाबा के गाँव का सन्तू आया है। रात बाबा को लोगों ने मारा। वह अस्पताल में पड़ा है।'

इतना सुनते ही, शारदा के हाथ से मधुकर का हाथ छूट गया और उसने तड़प कर कहा—'लोगों ने बाबा को मार दिया··· हाय राम !'

मधुकर बोला—'उठो, एक प्याला चाय दो। हमें अस्पताल भी चलना है। एक काम छूटा नहीं, दूसरा आ गया। जाने भगवान को क्या कराना है। मैं अब यहाँ से जाना चाहता था।'

शारदा उठ बैठी और बोली—'मनुष्य कुछ सोचता है, भगवान कुछ कराता है।' उसने मधुकर की ओर देखकर कहा—'मनुष्य का सोचना क्या फलता है, कभी नहीं!'

१७

मुनीम कृपाराम की वह तीर्थ-यात्रा महाप्रयाण में परिवर्तन हो गयी। एक दिन पूर्व ही उसकी अवस्था बिगड़ी, तो वह सुधर नहीं पायी। किन्तु उस चतुर मुनीम ने मरने से पूर्व महत्वपूर्ण बात यह की कि तार भेजकर सेठ मदनलाल को बुलाया। कदाचित उस व्यक्ति को आभास मिल गया था कि वह नहीं बचेगा। सेठ मदनलाल के आने पर उसने एक स्थानीय मजिस्ट्रेट और वकील को बुलाया। लोग नहीं समझ पा रहे थे कि वह क्या करना चाहता है। जो कर्म वह सम्पादित करना चाहता था, उससे पूर्व धर्मशाला से मधुकर और शारदा को भी बुलाया गया। संयोग से शास्त्री भी उनके साथ था।

कृपाराम के निवेदन पर वकील ने एक वसीयतनामा लिखा। उसका एक मकान मधुकर को दिया और बीस हजार रुपया शारदा को। उस वसीयत पर मजिस्ट्रेट ने दस्तखत किये और गवाही के रूप में सेठ मदनलाल और शास्त्री के नाम लिखे गये। उनके भी हस्ताक्षर लिये। आश्चर्य कि उसी दिन की सन्ध्या में मुनीम कृपाराम का देहावसान हो गया। उससे अगले दिन पुत्री सहित सेठ उस नगर से प्रस्थान कर

गया। किन्तु लौटने से पूर्व उसने मधुकर को निमन्त्रित किया और कहा कि वह अपना कार्य पूर्ववत आरम्भ करे। नगर में लौट आये। उत्तर में मधुकर ने सेठ को आश्वासन दिया कि वह आयेगा, अब जल्दी ही इस नगर को छोड़ देगा।

किन्तु जैसे नाटक का पट-परिवर्तन हो चुका था। मधुकर को पता था कि किसी समय मुनीम कृपाराम के पूर्वज नगर के प्रसिद्ध व्यापारी थे। उनकी जायदाद थी। मुनीमजी के पास जो मकान था वह नगर में एक बड़ी कीमत प्राप्त करके बिक सकता था। लेकिन उस मकान क बेच देने की बात तो दूर, मधुकर के मन में यह भी नहीं आया कि वहां नगर जाकर उस मकान का कब्जा प्राप्त करे और उसके विभिन्न पार्श्वों में जो अनेक किरायेदार रहते हैं, उनसे किराया ले। क्योंकि मकान का किराया कम नहीं आता था। अपितु हुआ यह कि मधुकर उस मुनीम के जाने के बाद अतिशय खिन्न और अनमना रहने लगा। जैसे उसे सहज ही अनुभव हुआ कि यह धन, यह जायदाद जिसके लिये आदमी मानवता का खून करता है, इसी को जीवन का चिन्तन मानता है, सर्वोपरि समझता है, इसका सम्बन्ध क्षणिक है. अल्पकालिक है, यह धरा की वस्तु धरा पर ही पड़ी रह जाती है।

बूढ़ा हलधर बच गया था। स्वस्थ हो रहा था। गोधू और उसके साथी जेल में थे। शारदा के लिये प्रसन्नता की बात यह हुई कि बालिका विद्यालय में अध्यापिका नियुक्त हो गयी। उसने एक मकान किराये पर ले लिया और वहां जाकर रहने लगी। शारदा ने मधुकर को भी वहीं ले जाना चाहा, परन्तु वह नहीं गया। धर्मशाला छोड़ना उसे प्रिय नहीं लगा। कदाचित इसका एक कारण यह भी था कि शास्त्री कुन्दनलाल उन दिनों अस्वस्थ चल रहा था। जब शारदा गयी, तो मधुकर को यहां रहना था। और उसके उस नगर में रहने का केवल एक ही प्रयोजन शेष था कि वहां पर आयोजित एक कवि सम्मेलन में उसे आमन्त्रित किया गया था। उसमें सम्मलित होने के लिये

शास्त्री का विशेष अनुरोध था। परिणामस्वरूप वह दिन आया शास्त्री के साथ मधुकर उस सम्मेलन के आयोजन में सम्मिलित हुआ। जब वह मंच पर जाकर बैठा तो उसने देख लिया था कि महिला वर्ग में शारदा भी बैठी है। वह उस दिन विशेष रूप से सजी है। उसकी धानी रंग की साड़ी भली लग रही है। उसने अपने जूड़े में जूही के फूल भी लगा रखे हैं।

जब कुछ कवि कविता पढ़ चुके, तो तभी मधुकर का नम्बर आया। वह खड़ा हुआ। माइक के पास जा पहुँचा। स्वर उसका मीठा था, लचीला था। कविता आरम्भ की। निश्चय ही उस समाज में उसके अधिक परिचित व्यक्ति नहीं थे। शास्त्री और शारदा को छोड़कर एक-दो और होंगे। अतएव शास्त्री का मत था कि मधुकर कोई राजनैतिक कविता पढ़ेगा परन्तु उसने एक नयी लिखी कविता पढ़ी। उस कविता में शृंगार भी था मानव का समवेदन भी। जिसका अर्थ था कि वह कवि रूप में अपनी प्रेमिका को लक्ष्य करके गा रहा था, उसको सुना रहा था— ऐ प्रिये, देखो सुनते कि यह कितना सजा हुआ संसार है। तुम्हारा यह यौवन, जो आज हँस रहा है, खेल रहा है, थिरक रहा है और मचल रहा है, एक दिन चुपचाप ही तुम्हारा साथ छोड़ देगा। और तुम हो कि समस्त विश्व की ओर से आँख मूँद कर एक ही चिन्तन, एक ही राग और एक ही लय में समाविष्ट हो जाना चाहती हो......हाय तुम कैसी रूप गर्विता हो प्रिये। ये हिमालय के धवल हिम शिखर जो आज अपनी ऊँचाई पर इतरा रहे हैं, झिलमिला रहे हैं स्वयं ही रिस-रिस कर नीचे पहुँच जाएँगे और उस पावन गंगा के रूप में परिवर्तित हो, जगती को पखारते उसका पाप और मैल हरण करने को तैयार होंगे। तो प्रिये तुम भी वही बनो। पावन बनो, पवित्र बनो, उदार बनो। तुम भी अपने हृदय के कपाट खोलो और इस दुर्बल, निस्तेज और हीन नाद से भरे निनादों को अपने आँचल में समेट लो......

उस आयोजन के कर्णधार रावराजा इतने मचले और फड़के कि तुरन्त उठे और मधुकर को छाती से चिपटा कर एकाएक बोले—'तुम धन्य हो!'

मधुकर मुसकराया और अपने स्थान पर जाकर बैठ गया।

जब कवि-सम्मेलन समाप्त हुआ तो मधुकर शास्त्री के साथ लौटने वाला था कि तभी शारदा वहाँ आई और बोली—'मैं नित्य धर्मशाला जाती हूँ और लौट आती हूँ।'

मधुकर ने कहा—'हाँ चौकीदार कहता था।'

लेकिन शारदा ने फिर खिन्न बनकर कहा—'पर तुम तब भी नहीं आये। नहीं मिले। देखती हूँ, आज चेहरा भी उतरा है। आज इस कवि-सम्मेलन मे आना था, तो यह भी नहीं सोचा कि पजामा मैला है। यह तो चौकीदार से धुलाया जा सकता था। लांडरी वाला भी धो देता।'

उसी समय शास्त्री पास आया और बोला—'कहो शारदा जी अच्छी हो। मैंने सुना कि तुम आयी थीं संयोग से मैं नहींथा। कहो काम तो ठीक चल रहा है।' उसने तभी मधुकर की ओर देखा और कहा—'राव राजा साहब ने मुझ से कहा है कि कल संध्या का भोजन आपका उनके यहाँ है। वह आपका विशेष सम्मान करना चाहते हैं। शारदा तुम भी आना। वह जनसाधारण का आयोजन नहीं, निजी होगा।'

शारदा ने कहा—'आप जाइयेगा।'

शास्त्री बोले—'नहीं तुम भी। कवि की कविता के स्वर तभी फूटेंगे कि जब तुम सामने होगी।' यह कहते हुए शास्त्री ठहाका मार कर हँस दिया।

किन्तु शारदा को वह हास्य अभद्र लगा। अस्वाभाविक और उसकी कल्पना के परे भी था। शास्त्री के मुँह से ऐसा सुनना भी उसके लिये नया था।

तभी शास्त्री ने कहा—'मधुकरजी ने अपने अनुरूप कविता

आज कही। निश्चय ही वह इस पहाड़ पर बैठ कर लिखी होगी। वह तुम्हारे सम्पर्क में बैठ कर ही लिखी होगी।'

शारदा लजा गयी। सहज भाव से मुसकरा कर रह गयी।

शास्त्री बोला—'आजकल मधुकर जी उस बूढ़े हलधर की सेवा में लगे हैं। उसके गाँव भी कई बार आ-जा चुके हैं। मैंने तो सुना है कि ये पहाड़ के कई गाँवों में हो आये हैं। उसने कहा—'हाँ ठीक भी तो है। अब चिन्ता क्या! सेठ मुझे बता गया था कि उसके मुनीम का मकान कई लाख का है। बड़ा है।' वह हँसा—'और शारदा जी, अब तो तुम भी मालदार हो। बीस हजार रुपये की स्वामिनी हो।'

तुरन्त ही शारदा ने क्षुब्ध बनकर कहा—'शास्त्रीजी वह रुपया मेरा नहीं, उस पर मेरा अधिकार नहीं।'

शास्त्री ने कहा—'क्यों, क्यों, तुमने उस मुनीम को अपना खून दिया था। उस पर उपकार किया था।' वह बोला—'अब तो मधुकर जी भी मालदार हैं। सिवके बन्द हैं। जायदाद वाले कहाते हैं।'

किन्तु उस समय मधुकर चुप खड़ा था। वह सिर के ऊपर चढ़े काले आसमान की ओर देख रहा था। यद्यपि कोहरा पड़ रहा था, परन्तु जिस स्थल पर वे तीनों खड़े थे उसी के पास गहरा खड्ड था। वह दो पहाड़ों का कटाव था, जो कि दूर तक चला गया था। मधुकर को पता था कि पिछले दिनों वहाँ एक मोटर गिर पड़ी थी और उसकी सभी सवारियाँ उस खड्ड में मौत को प्राप्त हो चुकी थीं। अतएव, उसने शास्त्री की बात सुनकर कहा—'शास्त्रीजी, यह खाई देखते हैं यह किसी को भी निमन्त्रण दे सकती है···मुझको भी! तब जायदाद रखी रह जायेगी, जायदाद वाला भी मिट जायगा।'

शास्त्री ने आँख भर कर कहा—'हाँ, भाई! यह तो सभी के लिये हैं। तुम्हारे लिये क्या, मेरे भी लिये है।'

शारदा बोली—'शास्त्रीजी, यदि आप अन्यथा न समझें तो इन 'मधुकरजी को मेरे साथ जाने दें।'

शास्त्री ने कहा—'हां, हां, इन्हें ले जाओ। आज दिन भर से भूखे हैं। मैंने कितनी वार कहा कि भोजन मेरी रसोई में कर लिया करो। पर यह तो इतने संकोची हैं कि न कहते हैं, न खाते हैं, । जब यहां कवि-सम्मेलन के लिये आ रहे थे, तो हजरत ने कहा था कि भूखा हूं। और इस रास्ते में कोई दुकान भी नहीं पड़ी कि जो कुछ खा लिया जाता। मुझे बताया कि सुबह एक प्याला चाय पी थी फिर कुछ नहीं लिया। मैं अनुभव करता हूं कि इनका आजकल ऐसा ही रहता है।'

'ओह, मेरे राम !' शारदा ने एकाएक कहा और जाने कैसी वेदना भरी दृष्टि के साथ सामने खड़े मधुकर की ओर देखा।

किन्तु मधुकर ने जैसे अभियुक्त के सदृश सफाई देते हुए कहा—'आज ही ऐसा हुआ ··'

'जी, हां ! आज ही ऐसा हुआ !' शारदा ने शास्त्री से कहा—'अच्छा, अब आप भी जाकर आराम कीजिये। इन्हें छोड़ दीजिये।'

मधुकर बोला—'नहीं, मैं भी जाऊँगा। अब सोऊँगा।'

लेकिन शारदा ने अपने स्वर पर जोर देकर अधिकारपूर्ण भाव में कहा - 'नहीं, मेरे साथ चलिये।'

शास्त्री ने कहा—'हां-हां, आप जाइये, मधुकर जी !' और वह अपने हाथ की छड़ी नचाता हुआ सड़क पर आगे बढ़ गया।

मधुकर शारदा के साथ चल दिया। जब वे दोनों एक छोटे-से मकान में प्रविष्ठ हुए, तो सामने पड़ती एक बुढ़िया को लक्ष्य कर शारदा ने कहा—'अम्मा, ये हैं मधुकर जी !'

'अच्छा बेटा तुम हो ! कविता करते हो। इस बिटिया के पुराने साथी हो। यह तो रोज ही तुम्हारा नाम लेती है। याद करती है। तुम्हारे लिये उस धर्मशाला में जाती है।'

शारदा ने अपना कमरा खोला। बत्ती जलाई उसने जल्दी से कपड़े बदले और स्टोव जलाना शुरू कर दिया।

मधुकर बोला—'अब ग्यारह बजे हैं। कुछ करना बेकार है ।

किन्तु शारदा ने बात सुनकर भी अपना मत नहीं दिया । उसने स्टोव जलाया और चाय के लिये पानी रख दिया । फिर आलू कतर कर तैयार किये। आटा गूँथ लिया । उसी समय उसने मधुकर के पास आकर कहा—'सिगरेट है ?'

मधुकर चारपाई पर बैठा था। कम्बल ओढ़ रखा था। बोला—'आज सुबह से सिगरेट नहीं पीया।'

'क्यों ? फुरसत नहीं थी। नेताजी बनने का जो शौक था।'

मधुकर ने कहा—'नहीं देवीजी, पास में पैसा नहीं था।'

'ओह, तब तो तुम सचमुच ही रहस्यवादी हो। ऐसे तो तुम मुझसे नहीं समझे जा सकते। मेरी पकड़ में नहीं आ सकते।' उसने अपने बटुवे से एक रुपया निकाला और बुढ़िया को आकर दिया कि वह सिगरेट का पैकट ले आये।

जब शारदा लौटी, तो चाय का पानी खौल चुका था। चाय डाल दी गयी। दूध और चीनी भी। तभी उसने साग छौंक दिया।

चाय पीते हुए मधुकर बोला—'किस्मत की बात है, नहीं तो आज मैंने तो भूखा सोना ही सोच लिया था।'

शारदा ने कहा—'जी हाँ, भाग्य की बात है कि जो मुझे यह अवसर मिल गया।'

उसी समय बुढ़िया सिगरेट का पैकट और शेष पैसे दे गयी। वह बोली—'अब खाना बन रहा है।'

शारदा ने कहा—'हाँ अम्मा ! ये मधुकरजी भूखे हैं। संयोग की बात है कि आज मैंने भी शाम को नहीं खाया। आलस्य किया।'

बुढ़िया ने हँस कर कहा—'बेटी भगवान सब देखता है।' वह लौट गयी।

मधुकर ने सिगरेट सुलगायी और पीने लगा। वह बिस्तर पर

पड़ गया । उसी अवस्था में बोला —'मुनीम कृपाराम की यात्रा का यहाँ अन्त हुआ तो मुझे लगता है कि मेरा भी अन्त इसी पहाड़ पर हो जायेगा ।'

शारदा ने अपना खाली चाय का प्याला रख दिया और कहा—'हाँ, हाँ क्यों नहीं ! इस पर्वत का लोभ भला किसे नहीं होगा । जब आदमी जीते जी यहाँ आना चाहता है, प्रकृति की गोदमें आकर बैठता है तो मरने के बाद क्यों नहीं और तुम तो कवि हो! स्वतः ही भावना-वादी और प्रकृति के पूजक हो ।'

बात सुनी, तो मधुकर हँस दिया। उसने कहा—'मैं जिस-जिस गाँव में गया हूँ, तो वहाँ मुझे आत्मीयता के दर्शन हुए । यहाँ का समाज सरल और निस्पृह दिखायी दिया ।'

किन्तु शारदा ने मधुकर की बात नहीं सुनी, उसके मन में अपनी बात थी । वह उठकर मधुकर के पास गयी और बोली, 'अपना बटुआ दिखाना ।'

मधुकर ने कहा—'क्यों, क्या करना है ।'

'दिखाओ तो !' और उसने स्वतः ही मधुकर की जेब से बटुआ निकाल लिया । देखा कि उसमें केवल एक पैसा पड़ा था । उसे दिखाते हुए उसने कहा –'मैं सोच नहीं पाती कि तुम्हारे मन में क्या है···हाँ, क्या ! बोलो, ऐसा दुराव क्या शोभा पाता है ।' कहते हुए उसने अपना बटुआ उठाया और उसमें रखे दस-दस के दस नोटों में से पाँच उस बटुवे में रख दिये और कहा —'यह कान खोल कर सुनलो, जब तक यहाँ रहो, खाना यहीं खाना है । मेरे पास जो कुछ है, वह मेरा नहीं; तुम्हारा है । किसी समय पिता ने मुझे दस हजार रुपया दिया था, वह अब भी मेरे पास है । और अब तो मैंने स्वतः भी अर्जित करना शुरू कर दिया है ।' यह कहते हुए उसने मधुकर का बटुआ उसकी जेब में रख दिया ।

बात सुनी, तो मधुकर मौन रह गया । भारी बन गया, हाथ में

लगी उसकी सिगरेट काफी जल गयी थी, जली हुई राख लगी थी, लेकिन उसका ध्यान उस ओर नहीं था, वह अपनी ही बात लेकर बोला—'यह रुपये का व्यापार थोथा है, हल्का है, मैं इसे महत्व नहीं देता।'

चंचल और आतुर बनकर, एकाएक स्वर पर भारीपन लिये शारदा ने कहा—'तुम इसी को महत्व देते हो। अपना-पराया देखते हो।'

मधुकर ने उसे पकड़ लिया और बरबस अपनी छाती पर उसका मुँह रखकर बोला—'मुझे क्षमा कर दो शारदा।'

१८

बूढ़े हलधर पर पुलिस और गाँव के अन्य व्यक्तियों ने इस बात का जोर दिया कि वह अपराधियों के प्रति उदासीन न बन जाये, परन्तु उसने पुलिस से स्पष्ट कह दिया कि वह यह नहीं बता सकता कि उसे मारने वाले कौन लोग थे। इसका परिणाम यह हुआ कि अपराधी छूट गये। वे गाँव में आगये। जब नगर छोड़ने से पूर्व मधुकर उस गाँव में गया, तो सभी के विपरीत उसने हलधर को साधुवाद दिया और कहा, 'तुम्हें यही करना था। जब भगवान ने तुम्हारी रक्षा की तो तुम्हें भी उदार-पक्ष अपनाना था।'

जिस समय मधुकर वहाँ पहुँचा, तो शारदा भी उसके साथ थी

उस मन्दिर पर अन्य स्त्री-पुरुष भी आ गये थे। वे सभी मधुकर से परिचित हो चुके थे। लेकिन जब मधुकर ने अपनी बात कही, तो एक व्यक्ति बोला—'बाबा ने भाई का मोह किया, उसे बचा लिया।'

मधुकर ने कहा—'नहीं, तुम्हारा भ्रम है कि बाबा ने भाई का मोह किया। सचाई यह है कि इस बूढ़े ने गांव का मोह किया। इसी हेतु स्वयं मौत की खाई में कूद पड़ा था।'

संयोग की बात कि उस समय गोधू भी वहाँ था। मधुकर स्वयं उसे घर से साथ ले आया था।

मधुकर बोला—'गांव शान्त रहे, भला रहे, इसीलिये तो बाबा ने अपने भाई का रोष अपने ऊपर लिया। सन्तू चौधरी को तो बचाया ही, दूसरों को भी बचाया। ऐसा उदाहरण क्या तुम्हें अन्यत्र मिलेगा। मैं अब भी नहीं सोच पाता कि यह बाबा इतनी ऊँची बात कर सकेगा।'

उसी समय गोधू उठा और बाबा के पैरों में गिर कर बोला—'दादा, क्षमा चाहता हूँ।'

किन्तु दादा ने कहा—'यह बात मुझ से मत कहो, अपने मन से कहो कि जिसने तुम्हें आदमी से हैवान बनाया। क्षमा माँगनी है, तो सन्तू से माँगो। तुमने उसी को अपना दुश्मन मान लिया है।'

गोधू ने अपने सिर की पगड़ी उतारी और पास बैठे सन्तू के पैरों में डाल दी—'तुम मुझे मार दो, भैया।'

लेकिन सन्तू ने गोधू की पगड़ी उठायी और उसके सिर पर रख दी। उसे छाती से लगा लिया। उसने गोधू की पीठ थपथपा कर कहा—'मैं क्या कहूँ, तेरे मन का जहर तो बाबा ने पी लिया।'

गोधू रो पड़ा—'मेरा पाप मेरे सामने आ गया। भगवान ने मुझे ऐसा दण्ड दिया कि अपने तीर से खुद ही घायल बन गया।'

मधुकर उठा और दूर खड़ी एक बच्ची की ओर देखकर उसके पास जाता हुआ बोला—'अरी, माला !'

माला झेंप गयी। सकुचा गयी। जमीन की ओर देखने लगी।

मधुकर ने अपने झोले से एक अमरूद निकाला और उसके हाथ पर रखकर कहा—'ले खा।' वह बोला—'अब फिर कभी इस ओर आया तो तुम्हें देखूंगा।' और उसने तभी अपने-आप कहा—'पर अब क्या आ सकूंगा। यह तो कोई हवा आयी थी जो इधर अपने पंखों पर उड़ा कर ले आयी। भाग्य की बात कि इस दूरस्थ और अपरिचित गांव में आकर भी मुझे लोगों की ममता और प्यार मिल गया।'

एक प्रौढ़ बोला—'तो क्या अब नहीं आओगे, बाबू !'

मधुकर ने कहा—'मैं अब यहां से चला जाऊंगा। कल जाऊंगा।'

'तो फिर कब आओगे ? क्या इस गांव को भूल जाओगे ?' एक औरत ने उसकी ओर देखकर कहा।

मधुकर बोला—'हां, मां ! हां, अब यहां से दूर चला जाऊंगा। तुम लोगों की स्मृति अपने साथ ले जाऊंगा। इस गांव के ये परिचित चेहरे, ये पेड़, यह शिव मन्दिर, वह नदी का किनारा मुझे देर तक याद आयेंगे।'

उसी समय हलधर ने सुनाया—'मैंने जो कुछ कहा, जो कुछ किया, वह सब इस बाबू ने बताया। इसी ने मुझसे अस्पताल में जाकर कहा था कि अपराधियों को क्षमा कर दो। उन्हें जीवन में एक बार फिर समझने का अवसर दो।'

एक व्यक्ति बोला—'यह बाबू उम्र में छोटा है, दिल का बड़ा है।'

एक प्रौढ़ ने कहा—'तुम यहां क्यों नहीं रहते, भैया ! इन गांव वालों को भी आदमी बना दो। इन्हें अच्छी सीख दो।'

मधुकर हंसा—'यहां ये सभी भले हैं। चलते-चलते मटर

। गरीब हैं, इसलिये परेशान रहते हैं।'

तभी एकाएक सभी का ध्यान उस ओर खिंचा कि वह नन्हीं बच्ची माला अपनी एक गुड़िया उठा लायी और मधुकर के पास आकर बोली—'यह मेरी गुड़िया—'

देखते ही मधुकर हँसा नहीं, वह अत्यन्त भावुक बन गया और उसकी ओर झुककर बोला—'वाह, क्या ही अच्छी है, तुम्हारी गुड़िया इससे खेलो। और इसका गुड्डा।'

माला ने कहा—'गुड्डा खो गया।'

मधुकर हँस दिया—'अच्छा, मैं कभी आया तेरी गुड़िया के लिये गुड्डा लाऊंगा।'

किन्तु वह माला तो अपने मन में दूसरी बात लेकर आयी थी तुरन्त बोली 'नहीं, यह गुड़िया तुम ले जाओ। तुम्हारे लिये है।' उसने कहा -'मेरी मां कहती थी कि बाबू अकेला है, बिना गुड़िया का है·· हां, यह गुड़िया तुम्हारी है !'

मधुकर ने वह बात सुनी, तो वह जैसे अचरज से भर गया। वह छोटी-सी लड़की कितने महत्व की बात कह सकी, इसी पर टिककर, वह पास बैठी शारदा की ओर देखने लगा।

शारदा ने कहा—'वह गुड़िया ले लो। इस माला का मन रख लो।'

मधुकर ने गुड़िया ले ली और झोले में डाल ली। उसी समय शारदा लौटने के लिये खड़ी हो गयी।

मधुकर ने बूढ़े हलधर की ओर देखकर कहा—'अच्छा, बाबा ! इस जिन्दगी में तुम्हारे भी दर्शन हुए, यह याद रखूंगा। तुमने सचमुच ही अपना जीवन पखार लिया। अपने को धो-मांज कर साफ कर लिया। लोग गंगा में जाकर गोता मारते हैं और अपने को पवित्र करते हैं, तीर्थों के दर्शन करके पुण्य-संचय की कामना करते हैं, किन्तु तुमने तो अपने गांव में ही गंगा बहा दी, तीर्थ धाम बना दिया,

अपने जीवन को !।

बाबा ने कहा—'बाबू मैं छोटा हूँ, जीवन के पाप से दबा हूँ।'

मधुकर बोला, 'नहीं, नहीं, अब तुम सात्विक हो। पुण्य मय हो।' यह कहते हुए उसने बाबा को हाथ जोड़े और वहाँ पर उपस्थित सभी जनों का अभिवादन कर वहाँ से चल दिया। उस समय गाँव के अधिकांश लोग उसके साथ हो लिये। गाँव के बाहर तक स्त्रियाँ भी चलीं। जब वे दोनों पहाड़ पर चढ़ने लगे, तो मधुकर ने एकाएक कहा—'अब आप जाइये। विश्वास कीजिये, फिर कभी इधर आया तो इस गाँव के दर्शन करूँगा।'

सन्तू चौधरी ने कहा—'बाबू जरूर आना !'

मधुकर बोला—हाँ जरूर !'

उसी समय माला रो पड़ी और सिसकियाँ लेती हुई खड़ी रह गयी। यह देख मधुकर उसकी ओर बढ़ा और उसे गोद में उठा कर, दुलार से उसका मुलायम गाल थपथपाता हुआ बोला—'मैं आऊँगा, माला। तेरे लिये मिठाई लाऊँगा।'

माला ने कहा—'जरूर !'

मधुकर ने कहा—'हाँ, जरूर !' और वह उसे उतार कर, फिर सबसे विदा ले, शारदा का हाथ पकड़ पहाड़ पर चढ़ने लगा। जब वे लोग ऊपर गये, तो मुड़कर उन दोनों ने देखा कि गाँव के नर-नारी तो लौट गये थे, पर वह माला अपनी जगह खड़ी थी और ऊपर मुँह उठाये उन्हीं की ओर देख रही थी।

मधुकर ने अपने स्वर पर जोर देकर कहा—'माला घर जाओ।'

माला ने भी चीत्कार किया—'बाबू तुम लौट आओ।'

और तब गिरे मन के साथ मधुकर कुछ कदम आगे बढ़ते ही पहाड़ की ओट में हो गया। उसी समय शहर की ओर बढ़ते हुए साँस भर कर शारदा ने कहा—'यह है स्वाभाविक अनुराग। बच्चा भी मन देखता है। आदमी देखता है।' और तभी वह अपने स्वर पर भटक-

सा देकर बोली—'अरे, रोते हो तुम ! छि:! ! कोई बात भी हो; वह तो बच्ची थी, ना समझ थी ।'

किन्तु मधुकर ने तुरन्त ही कहा—'शारदा जी, यह बच्ची बड़ी समझदार थी । तुम्हें पता है इसका बाप नहीं, माँ विधवा है । खेत में मजदूरी करती है और इस बच्ची को पालती है । उसका एक लड़का है, जो शहर में मजदूरी करता है । वह मुझे कभी-कभी मिलता है तुम उसे देखोगी, तो कहोगी , कि सचमुच, सांचे में ढला है । पर भाग्य का पोच है किसी के झूठे बर्तन मांजता है । और जिसके यहाँ काम करता है, वह उसे मारता है, डाँटता है । उस परिवार में सभी काले और घिनौने हैं, पर नौकर जैसे चाँद का टुकड़ा लगता है ।'

शारदा ने सांस भर कहा—'उसका भाग्य तो खोटा है ।'

मधुकर बोला—'वह लड़का तुम्हारे पास आयेगा । फुरसत के समय उसे पढ़ाना !'

शारदा वाली—'वह चाहेगा, तो मेरे पास रह सकेगा ।'

मधुकर ने कहा—'यह माला लड़की बड़ी सलोनी है । मैं जब भी गांव में जाता , तो इसके लिये कुछ न कुछ ले जाता । कभी भूल करता और कुछ न ले जाता, तो यह मेरा झोला देखती । कुछ न पाकर उदास बन जाती । आश्चर्य, मैं पैसा देता, अपनी भूल का इस प्रकार समाधान कर पाता, तो यह माला उसे स्वीकार न करती । कह देती, जब तुम्हें मेरी याद नहीं तो पैसा कैसा···इसका मूल्य कैसा ।'

शारदा ने कहा—'सचमुच लड़की समझदार थी ।'

मधुकर बोला—'मैं चाहता हूँ कि कुछ दिन बाद यह लड़की तुम्हारे पास आ जाये । पढ़े और पले ।'

शारदा ने कहा—'मुझे तुम्हारा यह आदेश भी स्वीकार होगा ।'

मधुकर ने कहा— 'आदेश नहीं विनम्र आग्रह । निवेदन ।'

शारदा हँस पड़ी—'सचमुच तुम बड़े चालाक हो । बात कहते हो

ग्रौर मन के कोने में छुप जाना चाहते हो।'

उसी समय वह स्थान ग्राया कि जहाँ एक बार पहिले भी वे दोनों बैठे थे। फिर ग्रन्त मे अनबन करके वहाँ से उठ चले थे। वहाँ पहुँचते ही मधुकर हँस दिया—'इस पत्थर को पहचानती हो।'

स्वयं हँस कर शारदा ने कहा—'हाँ क्यों नहीं। यह भुलाये नहीं भूलेगा। यहाँ से चलकर ही मुझे रोना ग्राया था।'

मधुकर बोला—'ग्राग्रो फिर ग्राज यहाँ बैठें। पता नहीं फिर कभी यहाँ बैठना मिलेगा या नहीं। बातों की पोट तो इतनी बाँध ली है मैंने पर उसमें से कोई एक भी पूरी होगी मैं सहज में भरोसा नहीं करता।'

जैसे झुँझलाकर शारदा ने कहा—'कैसी बात करते हो जी तुम्हारा ग्रात्म-विश्वास बड़ा कमजोर है। क्या इतना ही तुम्हारे मन में बल है।'

उसी समय एकाएक मधुकर को ध्यान ग्राया ग्रौर उसने कुरते की जेब से एक पत्र निकाल कर शारदा के हाथ पर रखा ग्रौर कहा—'यह पढ़ो। ग्राज प्रातः ही मिला। कहो तो उस सेठ की लड़की का जीवन कैसा बरबाद हो गया।'

शारदा ने पत्र पढ़ा। वह मधुकर के किसी मित्र का था। जिसका ग्राशय था सेठ मदनलाल की लड़की का दिमाग खराब हो गया। सेठ ने उसे ससुराल भेज दिया।

शारदा ने पत्र लौटा दिया ग्रौर कहा—'ऐसी घटनाएँ बहुत होती हैं। कोई लड़की मरती है, कोई पागल बनती है। समाज का यह पाप दरिया के सैलाब की तरह बहा जा रहा है।'

मधुकर बोला—'यह जघन्य है क्रूर है। जब ग्रादमी कई विवाह कर सकता है तो नारी को यह ग्रधिकार क्यों नहीं।'

शारदा ने ईर्षा ग्रौर विष भरे भाव में ग्रपने सूखे होठों पर जीभ फेरी ग्रौर कहा—'यह तुम्हारी मान्यता हो सकती है। समाज की नहीं।

एकाएक अधीर बनकर मधुकर बोला—'वहा समाज · वह पत्थर · वह लोहे का बेकार टुकडा···'

शारदा ने अपने स्वर में तेजी लाकर कहा—'वही टुकड़ा नारी को घायल करता है उसकी मौत का कारण बनता है। वह सेठ की लड़की अब मर जायेगी।'

मधुकर ने कहा—'हमारा कानून भी कमजोर है। यदि वह रजनी किसी दूसरे से विवाह करे तो ससुराल की सम्पत्ति से हाथ धो बैठेगी। और यह तुम देख चुकी हो कि वह इतनी सुन्दर नहीं कि किसी धनिक विधुर या कुमार को अपनी ओर आकर्षित कर सकेगी।' वह बोला—'लोग सुन्दर नारी चाहते हैं धनिक परिवार की लड़की भी पसन्द करते हैं।'

शारदा ने कहा—'धनिक लड़की का पिता भी यही चाहता है। वह अपनी पुत्री को किसी गरीब के अर्पण नहीं कर सकता, राज महलों में बैठाने की कल्पना करता है।'

मधुकर ने अपने हाथों की मुट्ठियाँ भींच ली, और सामने की ओर देखने लगा। वह उस समस्या के अन्तराल में डूब गया।

उसी समय शारदा बोली—'तुम जा तो रहे हो, पर कहे देती हूँ देर तक रहे, जल्दी न लौटे, तो मैं स्वयं वहाँ पहुँचूँगी।'

मधुकर ने कहा—'तुम आ सकती हो।' वह बोला—'प्रश्न यह है कि क्या हमें यह बैठकर सोच नहीं लेना होगा कि भविष्य का निर्माण किस प्रकार करना है। मुझे भी जीविका के हेतु कुछ काम करना है, मेरे पास कुछ रुपया है, इच्छा है कि प्रेस खोल लूँ, और एक पत्र का प्रकाशन करूँ। तुम सहयोग दोगी, तो मैं यह कर सकूँगा।'

शारदा बोली—'मैंने कहा तो, तुम बुलाओगे, आजाऊँगी। इस नौकरी को छोड़ दूँगी।'

मधुकर ने कहा—'लेकिन यहाँ का जीवन भी मुझे प्रभावित कर सका है। मानव की भावना का दर्शन मुझे यहीं हुआ। तुम्हारा शास्त्री

भी एक चरित्र है, नितान्त अल्हड़ लगता है कि वह व्यक्ति अपना जीवन बिताने के लिये किसी से भी सम्बन्ध बनाना पसन्द करता है। पैसे को गौण मानता है। वह साहित्यिक नहीं, किन्तु उसका मानव पक्ष मुझे सदा उज्ज्वल और प्रभाव पूर्ण लगा है।'

शारदा बोली 'शास्त्री सचमुच ही परम है, पवित्र है। वह मानसिक और आत्मिक आनन्द पाने के लिये समाज से सम्बन्ध बनाता है। ईर्षा या स्वार्थ का भाव उससे कोसों दूर रहता है। उसकी स्त्री गयी,तो अब नारी के प्रति अनुराग या प्रेरणा का उच्छ्वास भी उसके मन से मिट चुका है। आश्चर्य कि फिर भी वह नारी का आदर करता है, उसका अस्तित्व मानता है।

खड़े होकर मधुकर बोला—'इस यात्रा में बड़े अनुभव हुए। लगता है, मेरे जीवन का निर्माण भी यहीं आकर हुआ। तुम ऐसी मिली कि जिस की याद और पुकार की पुकार में दूर जाकर भी सुनता रहूँगा।'

शारदा ने मनुहार और ममता के साथ मधुकर की ओर देखा और दीपपथ पार करने के लिये उसका हाथ पकड़ लिया।

१९

शारदा की इच्छा थी कि उस तपेदिक के अस्पताल में पहुंचे और उस लड़की को जाकर देखे कि जिसके पास मधुकर जा रहा था। परन्तु संयोग से उस समय बालिकाओं की परीक्षा आरम्भ थी और कई अध्यापिकाएं छुट्टी पर थी, इसलिये शारदा न जा सकी। किन्तु जब मधुकर उस नगर से प्रस्थान करके मोटर में बैठा, तो

शारदा के साथ शास्त्री भी उसे विदा करने गया। आँखों में अश्रु-जल लिये शारदा बोल नहीं पा रही थी, लेकिन जब स्वयं मधुकर ने जल्दी लौट आने की बात कही, तो शारदा ने बरबस ही कह दिया—'मुझे जो कुछ कहना था, कह चुकी। अब उसकी रक्षा करना तुम्हारा काम है।' वह बोली—'जो पंछी जाने किस दिशा से उड़कर मेरी डाल पर आ बैठा, अब वह फिर लौट कर आयेगा यह कैसे कहा जा सकता है।'

मधुकर ने कहा—'नहीं, नहीं, मैं आऊँगा। तुम्हारे लिये फिर बोझ बनकर आ बैठूँगा।' वह तभी शास्त्री की ओर देखकर बोला—'आपकी भावना सदा याद रखूँगा। आपने जिस प्रकार मुझे अनुगृहीत किया उसे क्या भूल सकूँगा।'

शास्त्री ने सुना और हँस दिया। उसने अपनी जेब से पान की डिबिया निकाली और एक पान मधुकर को दिया। उसी समय वह बोला—'धर्मशाला में विविध प्रकार के यात्री आते हैं। कभी तो मेला-सा लग जाता है। मैं उन्हीं में अपना मन बहलाता हूँ। इस दुनिया का सफर कितना छोटा है, यह समझ चुका हूँ।'

मधुकर ने कहा—'आप स्वभाव के कवि है, भावनावादी हैं।'

शास्त्री बोला—'मैं अब प्रत्येक अवस्था में रस लेना पसन्द करता हूँ अपने को भुला देना चाहता हूँ।'

मधुकर ने शारदा से कहा—'मैं तुम्हारे पिता जी के पास जाऊँगा। उनके दर्शन करूँगा।'

शारदा बोली—'मैंने उन्हें पत्र लिख दिया है। तुम्हारा उल्लेख किया है। मिलोगे, तो पाओगे कि वह ऋषि हैं। मेरे साथ जो कुछ घटित हुआ, उसका मनस्ताप उनको बहुत है। इसीलिये वह अब भी मेरी सहायता करते हैं। मैं भूल नहीं सकती कि मेरी मा का प्राणान्त इसी कारण हुआ।'

गाड़ी ने हॉर्न दिया। मधुकर ने कहा—'अच्छा!'

जैसे आतुर बनकर शारदा ने फिर कहा—'देखना, यहाँ से [illegible]ते

हीं भूल न जाना। इस पहाड़ के पत्थरों की तरह तुम भी पत्थर न बन जाना। मैं प्रतीक्षा में रहूँगी।'

गाड़ी चल पड़ी। शारदा ने आँखों के आँसू बहाकर मधुकर को विदा कर दिया। गाड़ी पहाड़ से नीचे उतरी और लोप हो गयी, लम्बी साँस भर कर वहाँ से चलते हुए, शास्त्री ने शारदा को सुनाया—'यह मधुकर भी खूब था, अच्छा युवक था।' वह बोला—रात मधुकर मुझे पचास रुपये दे रहा था, कमरे के किराये के, देखकर मुझे हँसी आई और बोला—महाराज, इन्हें रक्खो। उस कमरे पर अपना सैन-बोर्ड लगा दो आओ तो उसी में ठहरो।' उसने कहा मुझे इसमें सन्देह है कि मधुकर जल्दी आ सकेगा।'

शारदा ने बात सुनली, परन्तु मन नहीं दिया।

शास्त्री बोला—'वह आदमी हृदय का सरल है, तरल है। ऐसा आदमी जहाँ रहेगा वहीं रम जायेगा। उसके मित्रों के नित्य ही पत्र आते जिनमें उसे बुलाया जाता। उन पत्रों में लौटने का आग्रह होता।' उसने कहा—'और अब तो मुनीम ने मकान दे दिया। जायदाद वाला बन गया, यह मधुकर अब जाकर उस मकान का अधिकार लेगा।'

शारदा ने कहा—'शास्त्री जी, वह मधुकर किसी मकान का अधिकार नहीं लेगा। अब उसे यहीं आना चाहिये। आ जायेगा।'

शारदा से उस अधिकार पूर्ण बात को सुनकर, शास्त्री को कुछ अच्छा लगा। उसने सहज हो समझ लिया कि अब यह शारदा उस मधुकर को समझ चुकी है, उसके समीप पहुँच चुकी है।

चौराहे पर जाकर शारदा को दूसरा रास्ता पकड़ना था, अतएव वह रुक गयी और शास्त्री की ओर देखकर बोली—'मधुकर गया है, तो लगता है कि जैसे जीवन में कुछ चला गया।'

तुरन्त ही शास्त्री ने कहा—'हाँ, यही तो! मैं अनुभव करता हूँ कि वह तुम्हारे समीप पहुँच गया।' वह बोला—'तुम्हारी बात तो

वया मैं स्वयं ही उस मधुकर की चिन्ता करने लगा था। जमादार से प्रायः पुछता था कि मधुकर का कमरा खुला है या वन्द है। अजीव आदमी था। सहज ही दूसरे को अपना लेने की क्षमता रखता था।' उसने अपने हाथ की वेंत सड़क के पत्थर पर वजायी और शारदा की ओर देखकर कहा—'एक वार तुम्हारे पिता ने मुझसे कहा था कि शारदा के लिये कोई लड़का मिल जाये, तो अच्छा है। अव भगवान ने वही तुम्हारे पास भेज दिया। संयोग की वात कि तुम्हें श्रेष्ठ पुरुष मिल गया। अभाव मधुकर को भी है, वह एकाकी है, निश्चय ही वह तुम्हारे अनुरूप है।'

शारदा ने साँस भरी और ऊँचे पर्वत की ओर दृष्टि उठा दी। उसी अवस्था में उसने कहा—'शास्त्री जी, मधुकर क्षितिज का वह सुन्दर तारा है कि जिसके प्रकाश में दिशा प्राप्त की जा सकती है, उसे पकड़ा नहीं जा सकता। वह अनुपम और सलौना नक्षत्र है। निःसन्देह, मैं उसके योग्य नहीं, अनुरूप नहीं समतामय नहीं।'

शास्त्री ने कहा—'नहीं, नहीं, तुम योग्य हो। तुम भी श्रेष्ठ नारी हो। तुम्हें पाकर वह मधुकर अपना मार्ग प्रशस्त कर सकता है और अधिक उजागर हो सकता है।'

शारदा ने वात सुन ली और पेट में उतार ली। वह तव शास्त्री की ओर देखकर वोली—'मैंने निश्चय किया है, कि इस मधुकर का पथ अवरुद्ध नहीं करूँगी। वह गंगा का जल है, वहना चाहता है, उसकी यही श्रेष्ठता है। यदि वह रुका, तो सड़ जायगा, मैं नारी हूँ न, तो इस रूप में उस मधुकर के लिये वोझिल वन सकती हूँ, उसके जीवन के चारों ओर घेरा डाल सकती हूँ और मैं यह नहीं करूँगी। मैं उस पावन पुरुष को वासना की भट्टी में नहीं झोकूँगी उसे अवाध्य रूप से चलने दूँगी। उसकी यही गति है, यही निष्ठा है।'

शास्त्री अपनी वात कहने के साथ चल देना चाहता था। क्योंकि वह उसके भोजन का समय था। रसोई तैयार हो गयी होगी। परन्तु

जब शारदा ने स्वतः ही, एक नयी और अनोखी बात कही, तो वह उसे अचरज और जिज्ञासा के साथ जैसे नये सिरे से खोजता और देखता हुआ बोला—'मैं तुम्हारा अर्थ नहीं समझा, शारदा देवी ! यह तो माना कि औरत वासना का जीवित रूप है, आदमी को जलाती है, नष्ट करती है। पर एक औरत ही ऐसी अद्भुत और निर्भीक बात कहे, तो मुझे अचरज होता है। लगता है कि तुमने भी नारी का एक ही रूप देखा है, नारी बनकर भी उसका सांस्कृतिक और आध्यात्मिक रूप नहीं समझा। तुम जिस वासना को घृणित और अनुपयुक्त मानती हो मेरा मत है कि उसमें तो नर और नारी के लिये जीवन है। प्राण है, गति है। यही तो इस संयोग और सम्भोग की परिणति है। मेरा मत है कि इस प्राणवान जीवन में ही चेतना है नव स्फुरण है, जागरण का मन्त्र है। नर भी नारी के बिना अकेला है। भावना से शून्य है। इस जगत की ममता, प्यार और प्रणय की परम्परा सब नारी ही प्रदान करती है। नारी नर को महान बनाती है। तुम नारी को वासना की भट्टी मानती हो, पर मेरा कहना है कि वह आग का घर नहीं बहता हुआ दरिया है। जिसमें आदमी गोता मारकर अपने को पखार सकता है, तेजोमयी और बलोमयी प्रतिभा प्राप्त कर सकता है।'

शारदा ने सहज भाव से मुसकराया और कहा—'जो हो, मेरा निश्चय है, कि मैं इस मधुकर को नारी की वह देन नहीं देना चाहती जो दी जा रही है, प्रत्येक नारी देने के लिये आतुर है।'

कड़वे भाव से शास्त्री ने कहा—'वह तो दोनों का दोष है, शारदा देवी ! पुरुष भी नारी को भोगने के लिये व्याकुल है, अधीर है। इस पहाड़ पर आखिर इसके अतिरिक्त और क्या है ! गन्दा पत-नाला बह रहा। वह इस धरती के नर-नारी को डुबो देना चाहता है।' यह कहते हुए शास्त्री चल दिया।

शारदा बोली—'मैं आपके पास आऊँगी।'

शास्त्री ने कहा—'हाँ, आया करो। अपनी खैर खबर जरूर दिया करो

वह हँस कर बोला—'और यह तुम्हारा शास्त्री भी अब कितने दिन का है। प्रायः बीमार रहता है, कभी भी, चुपचाप इस धरती से उठ जाने वाला है।'

शारदा ने कहा—'नहीं, नहीं ! आप ऐसा मत कहिये। अभी आप रहेंगे। देर तक दिखायी देंगे। अभी आपका जीवन ही कितना है।'

शास्त्री ने बात सुनी और ठहाका मारकर वहाँ से आगे बढ़ गया। शारदा अपने घर पहुँच गयी। सुबह उसने बड़े चाव से दो-तीन सब्जियाँ बनायी थीं, पूरियाँ उतारी थीं। मधुकर ने उसके साथ बैठकर खाया था। वे सब बर्तन उसी तरह पड़े थे। छोटी मेज पर कुछ मासिक पत्र और दो-तीन किताबें पड़ी थीं, वे सब मधुकर की थीं। शारदा ने कोट उतार दिया और चारपाई पर इस तरह कटी डाल की तरह गिर पड़ी कि जैसे सचमुच,वह निश्शक्त थी, बे जान हो गयी थी।

तभी बुढ़िया ने आकर टंकोरा—'शारदाजी, आज स्कूल नहीं जाओगी।'

शारदा ने कहा—'हां, जाऊँगी। देर में पहुँचूगी। कह आयी थी।'

बुढ़िया चली गयी वह स्कूल में काम करती थी। किन्तु जब शारदा पुनः अकेली रह गयी तो उसे लगा कि जैसे वह उस छोटे-से मकान में अनुपयुक्त स्थान में है। वहाँ अकेली है, निराश्रित है, निराधार है। और उसने जाने कितनी देर के बाद, उस मधुकर के रूप में एक आधार पाया, तो आज वह भी छिन गया। वह मधुकर जिस रास्ते से आया था, फिर उसी पर लौट गया। मन में इतना आते ही, समभुच, उस युवा शारदा को कुछ अटपटा-सा लगा। उसे यह पसन्द नहीं आया कि क्यों वह मधुकर आया, परिचित हुआ, इतना घनिष्ठ बना और क्यों यों इस प्रकार चला गया

लेकिन उसी समय शारदा को अपनी वह बात याद हो गयी कि

जो उसने अभी कुछ देर पूर्व सड़क पर खड़ी होकर शास्त्री से कहा। और उस बात के उत्तर में शास्त्री ने जिस तरह अपने विचार का प्रतिपादन किया, वह भी उसे याद हो आया। निश्चय ही, शारदा के मनकी यह आस्था थी कि मधुकर जब एकाएक ही उससे परिचित हो गया। दोनों में जैसे अज्ञात भाव से दिन-दिन प्रगाढ़ सम्बन्ध बनता गया, तो उसका आखिर इसके अतिरिक्त और क्या अर्थ था कि वे दोनों प्रणय-सूत्र में बँध जायें, समाज के समक्ष एक हो जायें! पर हाय! कदाचित, शारदा की यह सबसे बड़ी दुर्बलता थी, कि उसने एक दिन भी मधुकर से यह नहीं कहा कि मैं तुम्हारे जीवन में घुस कर बैठ जाना चाहती हूँ, मेरी यही आस्था है। और आश्चर्य की बात तो यह कि किसी एक दिन उस मधुकर ने भी यह उद्घोष नहीं किया कि ए शारदा, आ, हम-तुम दोनों ही, एक दूसरे के अन्तर्पट में पहुँच जायें और अपने-आप को खोकर एक-दूसरे के मानस में लय हो जायें और खो जायें।

कमरे के आले में शीशे में जड़ा जो नया फोटो रखा था, वह शारदा और मधुकर का था। मधुकर ने स्वतः ही एक दिन फोटो खिंचाने का प्रस्ताव किया था। जब वे दोनों घर से बाजार के लिये तैयार होकर चले, तो उस चंचल मधुकर ने जाने किस भावना वश शारदा के बक्स की समस्त साड़ियाँ देख डालीं। उस दिन वह अपने मन पसन्द की साड़ी पहने उस शारदा को देखना चाहता था। और स्थिति यह थी, कि शारदा जिस साड़ी को पहन रही थी, मधुकर ने उसे बीच में रोक दिया और कहा—'नहीं, नहीं यह अच्छी नहीं। इसका रंग तुम्हारे अनुरूप नहीं।'

चारपाई पर पड़े हुए शारदा को याद आया कि उस समय वह जाड़े से ठिठरने लगी थी। मधुकर ने उसके बड़े बक्स के कपड़े, सभी बाहर निकाल दिये थे। वह सहज ही चुनाव नहीं कर पा रहा था। और शारदा केवल ब्लाऊज और पेटीकोट पहने खड़ी थी। वह जाड़े से सुकड़ रही थी। जब उसने एक काले रंग की साड़ी निकाल -

दी, तो वह बोली—'बाप रे ! तुम्हारी पसन्द भी कठिन है। पता है, जो साड़ी तुमने चुनी, वह मैंने आज तक नहीं पहनी। मुझे पसन्द नहीं थी।'

तभी मधुकर ने कहा—'पसन्द नहीं, तो मत पहनो।'

शारदा बोली—'पर तुम्हें तो पसन्द है न, फिर मेरी पसन्द का मोल क्या है !'

मधुकर ने कहा—'नहीं, नहीं, तुम्हारी पसन्द का महत्व है।'

शारदा ने साड़ी पहन ली और पास आकर कहा—'कविजी महाराज, इतना भी नहीं समझते कि नारी पुरुष की पसन्द और इच्छा को महत्व देती है…उसी शीशे में अपना रूप देखना चाहती है !'

लेकिन इतना सुनकर भी मधुकर ने कहा था—'मैं यह स्वीकार नहीं करता। नारी का अपना स्थान है, महत्व है, बल्कि उसे पुरुष को दिशा-संकेत देना चाहिये। यह उसका स्वाभाविक अधिकार है।'

जब वे दोनों चले, तो शारदा ने हँस कर कहा—'तो क्या तुम मेरा कहना मानोगे ! मेरे संकेत पर चलोगे।'

तुरन्त ही मधुकर ने कहा था—'हाँ, क्यों नहीं। निश्चय ही आदमी की यही शोभा है। जग की रीत है।'

और तब शारदा ने बरबस ही खिलखिला कर हँस दिया था। उसने बड़े मनुहार भरे ढंग से मधुकर के कन्धे पर मुँह रख कर कहा—'पर मैं तुम्हें ऐसा नहीं बनने दूँगी, मैं स्वयं आदेश का पालन करूँगी। मैं नारी की इस चिर आस्था को इस अभिव्यक्ति को इस जीवन में नहीं भूल पाऊँगी।'

उसी समय शारदा ने देखा कि अलार्म घड़ी बारह बजा रही है। वह खड़ी हो गयी, कोट पहन लिया। मकान बन्द करने के लिये ताला ले लिया और उस फोटो की ओर देख, उसने जैसे बरबस ही शरमा कर देखा कि उस काली साड़ी में सचमुच ही वह फब रही थी,

सुन्दर फोटो आया था। मधुकर आँखों से मुसकरा रहा था और वह होठों से मुसकरा रही थी।

शारदा ने साँस भरी और कहा—एक सुन्दर पंछी उड़ आया था किसी ओर से, जो फिर अपने पंख पसार कर उड़ गया…कौन जाने की अब कब आयेगा, वह अज्ञात और सुन्दर पंछी…

२०

लेकिन मधुकर जिस आकांक्षा और आशा के साथ उस तपेदिक के अस्पताल में पहुँचा, तो वहाँ जाकर उसने देखा कि पुष्पा नाम की वह लड़की जैसे अभी तक उस मधुकर के लिये रुकी थी। उसकी अवस्था खराब थी। बीच के दिनों में उसके स्वास्थ्य में सुधार था, परन्तु जब दशा एकाएक बिगड़ी, तो सुधर नहीं सकी।

मधुकर को देखते ही उसने कहा—'भैया आ गये तुम? यह अच्छा ही हुआ। तुम न आते, तो इन अस्पताल वालों को ही मुझे फूँक देना पड़ता।'

वह सुनकर मधुकर जैसे प्राणवान बन गया। वह उस युवा लड़की की पीड़ा से युक्त वाणी में डूब गया।

पुष्पा बोली—'मधुकर भैया, इस अस्पताल में आने का अर्थ ही यह है कि मौत की प्रतीक्षा की जाय। उसका आलिंगन किया जाय।' उसने साँस भर कर कहा—'यह अच्छा है। ऐसे कष्ट से छूट जाना ही भला है।'

मधुकर ने कहा—'तुम ऐसी बातें मत करो। धीरज से काम लो। जाना है तो जाओ। पर मेरा मत है कि जीवन पाने की कामना करो।'

पुष्पा बोली—'अब किस आधार पर ऐसी कामना करूँ, भैया!' उसने कहा—'इस अस्पताल में एक ही मैं तो ऐसी रोगी हूँ कि जिसके पास कोई नहीं आता। जिसका इस धरती पर किसी से नाता नहीं। इन सभी रोगियों के कोई न कोई हैं वे। आते हैं। सान्त्वना और धीरज बँधा जाते हैं। पर मेरा कौन! तुम भी आज आये हो. तो कल लौट जाओगे।'

एकाएक मधुकर ने कहा—'नहीं, मैं तुम्हारे पास रहूँगा। जब तक तुम नहीं कहोगी, मैं नहीं जाऊँगा।' यह कहते हुए मधुकर ने अस्पताल के उस बड़े वार्ड पर विहंगम दृष्टि डाली, देखा कि कोई पलँग खाली नहीं था। सभी पर रोगी थे। वार्ड महिलाओं का था, इसलिये वहाँ पुरुष रोगी नहीं थे।

कुछ देर रुक कर मधुकर वहाँ से उठ लिया और उस वार्ड से बाहर निकल गया। वह अस्पताल जिस स्थान पर था, प्रकृति ने जैसे उस स्थल को स्वयं ही सुन्दर और सुहावना बना दिया था। उसके तीन ओर पहाड़ थे। दूर एक झरना भी गिरता था। मन की उस विषम अवस्था में ही मधुकर अस्पताल के चारों ओर घूम गया। कुछ रोगी बाहर धूप में बैठे थे। वह जब उनके पास से निकला, तो तभी उन्हीं घास में बैठे रोगियों में एक ने उसका नाम पुकारा। मधुकर ने उस ओर देखा और बढ़ गया। पास जाते ही, उसने एक शक्ल पहचानी और एकाएक बोला—'अरे, कान्त तुम!'

कान्त खड़ा हो गया और बोला—'हाँ, भाई मैं! तुम यहां कैसे?'

मधुकर ने कहा—'यहाँ एक लड़की दाखिल है।' वह बोला 'और तुम?'

कान्त ने कहा—'मैं तो यहाँ एक वर्ष से हूँ। अब ठीक हूँ। अगले मास लौट जाने वाला हूँ।'

मधुकर ने उस कान्त को नीचे से ऊपर तक देखा और कहा—'आश्चर्य है कि तुम यहाँ हो। एक वर्ष से हो। मुझे तो पता भी नहीं चला।'

कान्त हँसा—'भाई, दुनिया बड़ी है सभी को अपनी-अपनी पड़ी है। कौन किसकी खबर लेता है। मैं लड़की होता, तुम्हारा सगा-सम्बन्धी होता, तो तुम भी···'

मधुकर तिलमिला गया—'सचमुच, मैं अपराधी हूँ।' वह बोला—'कभी तुम्हारे भाई ने भी जिक्र नहीं किया। उनसे तो प्रायः मिलता रहा।'

कान्त ने उस बात को छोड़ देना चाहा और कहा—'खैर छोड़ो इस बात को! यह बताओ, वह लड़की कौन है? क्या नाता है?'

. मधुकर ने सफाई दी—'भाई, मेरा कोई नाता नहीं। वह सताई हुई है। सगे-सम्बन्धी भी उसकी ओर से मुँह मोड़ चुके हैं। संयोग से मैं सफल हुआ और उसे यहाँ भिजवाने में कामयाब बन गया, काम बनना था, जरा-सी बात में बन गया।'

कान्त ने कहा—'यहाँ दाखिला कम मिलता है अधिक पैसा खर्च करके ही कोई सफल होता है।' वह बोला—'कहने को यह अस्पताल सरकार के पैसे पर चलता है, पर जब तक अधिकारियों की जेब में पैसा न डालो, यहाँ के डाक्टरों की पूजा न करो, काम नहीं बनता।'

मधुकर बोला—'यह अवस्था सर्वत्र है। इस देश के आदमी का खून गन्दा हो गया है।'

कान्त ने कहा—'इस अस्पताल में पूर्ण भ्रष्टाचार है। डाक्टरों की बात तो क्या, नर्स तक घूस खोर बनी हैं।'

चंचल वन कर मधुकर ने कहा—'हाँ, हाँ, कहा न, सरकार के सभी विभाग गन्दे पानी में वहे जा रहे हैं। जव आफीसर घूँस लेते हैं, तो नीचे के कर्मचारी कैसे चूक सकते हैं।'

कान्त ने पूछा—'तुम्हारा क्या आधार था ?'

मधुकर ने कहा—'इस प्रान्त का स्वास्थ्य-मन्त्री मेरी कविताओं से प्रसन्न था। वह मुझे कुछ देना चाहता था। पर मैंने इस लड़की के लिये यहाँ व्यवस्था की माँग की। संयोग की वात की कि उस समय यहाँ का वड़ा डाक्टर भी वहाँ उपस्थित था। मेरा आवेदन स्वीकार कर लिया गया। लड़की को यहाँ स्थान मिल गया!'

कान्त ने कहा—'वाह! हल्दी लगी न फिटकरी, रंग खूव जमा!'

मधुकर ने कहा—'तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा है। मोटे हो।'

कान्त भी हँस दिया—'खुराक अच्छी मिलती है।' आगे पूछा—'वोलो उस लड़की की कैसी अवस्था है ? ठीक है?'

खिन्न भाव में मधुकर ने कहा—'नहीं, उसकी दशा अच्छी नहीं वीच में ठीक थी, पर अव फिर विगड़ गयी।'

कान्त वोला—'अभी रहोगे ? ठहरोगे ?'

मधुकर वोला—'हाँ, एक-दो दिन रहूँगा।'

कान्त ने कहा—'स्थान अच्छा है, खूव घूमो। झरने पर हो आओ। उसमें स्नान करो।'

मधुकर ने कहा—'हाँ, अव उसी ओर जाता हूँ। कुछ घूम आता हूँ। वह चल दिया। कान्त फिर अपने साथियों में वैठ गया।

लेकिन जव मधुकर उस अस्पताल से दूर निकल आया, तो वह उन्मन था। जिस धारणा को लिये वहाँ आया, तो उस पर वज्रपात हुआ देख, जैसे कातर और दुःखी वन गया। वहां उसका कोई परिचित भी नहीं था। यद्यपि जिस कान्त को उसने देखा, तो उसे तपेदिक का रोगी पाकर चकित तो वना, परन्तु वह जिस पैसे को आधार वनाकर वहां तक आ सका, तो सहज ही, मधुकर के मन में यह वात डोल

गयी कि इस धरती पर जितने साधन हैं, भौतिक पदार्थ हैं, भले ही उनसे बौद्धिक विकास भी किया जाता हो, किन्तु इस पार्थिव शरीर को सजाने और रक्षा करने का उनमें जितना सम्बन्ध है, वह निर्बल और धनहीन के लिये सुप्राप्य नहीं। मानों यह जगत भी उनके लिये नहीं।

मधुकर पहाड़ की ऊँचाई से गिरते हुए झरने के पास जा बैठा। सचमुच ही, बड़ा सुहावना दृश्य था, वहाँ दूर-दूर तक देवदार के पेड़ खड़े थे। उनके पीछे खड़े पहाड़ भी जैसे आसमान को छू रहे थे। एक बड़े पत्थर पर जहाँ मधुकर बैठा था, उसके पास ही, झरने का पानी बहता हुआ नीचे गिर रहा था। उसने अपने पैर के जूते खोल दिये थे और उस ठण्डे पानी में पैरों को डाल कर बैठ गया था। इस प्रकार उसकी आँखों में और दिमाग में भी ठण्ड पहुँच रही थी। मधुकर को अच्छा लग रहा था। किन्तु उसके मस्तिष्क में जिस प्रकार की बात घूम रही थी, उससे सचमुच ही, वह परेशान बना था। वह कई घण्टे पूर्व उस स्थान पर आकर उतरा था। उस पुष्पा के लिये मसूरी से ही फल खरीद लाया था। वह टोकरी उसने पुष्पा के पास जाकर रख दी थी। सेब के कुछ टुकड़े उसे काट कर भी दिया गया था। कुछ अंगूर के दाने भी उसके मुँह में डाल आया था। लेकिन वह कातर और जीवन से उदास बनी लड़की जैसे सचमुच ही अपनी मौत देख चुकी थी। वह अपनी यात्रा के उस मोड़ पर पहुँच गयी थी कि जहाँ उस रास्ते का अन्त था। सामने बड़ा पहाड़ खड़ा था। वह न हिल सकता था, न हट सकता था। मानों उस पहाड़ से टकराकर ही उस पुष्पा को अपना अन्त कर देना था।

कैसा अजीब और हृदय को चुभने वाला प्रसंग था वह कि धरती पर चलने वाले इन्सानों में कोई अपनी यात्रा का अन्त कर रहा था और कोई आरम्भ करने चला था। अपने उस कई घण्टे के प्रवास में मधुकर ने देखा कि उस अस्पताल में विविध आयु की नर्सें उसके

आयी-गयीं। वे सभी जैसे जीवन का गर्व और हर्ष अनुभव कर रही थीं। मानो दुःख नाम की वस्तु उनके समीप नहीं थी। वह उसकी कल्पना भी नहीं कर सकती थीं। किन्तु स्वयं मधुकर ने जितने मरीज वहाँ देखे वे मानो जीवन के अन्धेरे में पड़े वरबस ही कराह रहे थे और पीड़ित बने थे। उन्होंने जैसे जीवन का सार समझ लिया था। उसका हर्ष और विषाद देख लिया था।

तभी अपने मन पर झटका-सा खाकर मधुकर ने उस झरने की ओर देखा और कहा—'हाय ! यह बेचारी पुष्पा !' वह बोला—'भला इसने जीवन में क्या पाया ! क्या देखा !'

मधुकर का मुँह झुक गया। वह नितान्त कातर बनकर नीचे बहते हुए पानी की ओर देखकर बोला—'जाने नित्य ही कितने फूल खिलते हैं और मुरझा जाते हैं। प्रकृति के निर्मम आघात उन्हें मसल देते हैं··· हाँ, इसी तरह तो इस जीव-जगत में इन्सान आते हैं और चले जाते हैं·····

निःसन्देह उस अवस्था में मधुकर को यह अच्छा नहीं लगा कि यह प्रकृति क्यों है, यह विराट विश्व क्यों, इन्सान की इतनी विस्तृत महत्वाकांक्षा क्यों ! वह बोला—'अजीब बात है कि जब इन्सान चुटीला बनता है, तो रोता है, कसकता है, कलपता है। परन्तु जहाँ उसकी महत्वाकांक्षा पूरी हुई, तो हँसता है, किलकिता है और शोर करता है··

उसने एकाएक अपने हाथ की मुट्ठी बाँधी और कहा—'मूर्ख इन्सान !'

मधुकर खड़ा हो गया। वह उस झरने के पानी के साथ-साथ आगे बढ़ने लगा। जब वह बहता हुआ पानी और निचाई पर जाकर गिरा, तो मधुकर रुक गया और दूसरी ओर मुड़कर अपने डेरे की ओर जाने लगा। उस अस्पताल के निकट ही रोगियों के अभिभावकों के

लिये स्थान बना था। वहाँ तीन दिन ठहरने का अधिकार था। किन्तु जब मधुकर फिर अस्पताल की ओर चलने लगा, तो एकाएक उसके मन में बात आई—तो क्या तुम्हें रुकना पड़ेगा ! तुम अभी यहाँ रुकोगे ? फिर स्वतः ही बोला—'हाँ, मुझे रुकना चाहिये। जब अब तक मैंने इस बेचारी पुष्पा का साथ दिया है, तो कुछ कदम और साथ देना चाहिये। मैं आया हूँ, तो वह हर्षित बनी है। उसके चेहरे की उदासी हटी है। वह भी गर्वित हुई है कि कोई उसका है,···अपना है।

मधुकर रेस्तराँ में पहुँच गया। वहाँ एक प्याला चाय माँगी और कुर्सी पर जा बैठा। उसने जेब से सिगरेट निकाली और पीने लगा। निश्चय ही वहाँ अकेला था, उसका कोई परिचित नहीं था। किन्तु तब तो उसके मन में केवल एक ही बात आई, कि इस दुनिया में सब अकेले हैं। नाते-रिश्ते भी स्वार्थ के हैं, बन्धनहीन मनुष्य अधिक अच्छे हैं। न उनके लिये कोई रोता है, न वे किसी के लिये रोते हैं।

उसी समय लड़का चाय लाया और बोला—'बाबूजी, कुछ और ! बिस्कुट, केक'

मधुकर ने कह दिया—'नहीं।' और वह चाय का प्याला आगे बढ़ा कर उसे पीने लगा। उसने अपने झोले से एक पत्र निकाला और शारदा को लिखा, मैं अभी यहाँ ठहरूँगा। लड़की की अवस्था खराब है। तुम साथ होती, तो मुझे सहारा मिलता।'

चाय पीकर और पैसे देकर जब मधुकर वहाँ से निकला, तो पास खड़े लेटर बॅक्स में उसने पत्र डाल दिया। वह फिर पुष्पा से मिलने उसके वॉर्ड की ओर बढ़ गया।

देखते ही पुष्पा ने कहा—'भैया, कैसे संयोग की बात कि आज बड़ा डाक्टर आया था। मैंने तुम्हारे आने की बात कही, तो वह बोला—'वह आये हैं, तो मिलकर जायें।' हाँ, भैया तुम उनसे जरूर मिलना।'

मधुकर ने कहा—'हाँ, हाँ, मैं डाक्टर से मिलूँगा। तुम्हारे विषय

में बात करूँगा।'

पुष्पा बोली—'भैया, बढ़िया दवा बढ़िया मरीजों को देते हैं। यह तो गुप्त के रोगियों का वॉर्ड है न, तो यहाँ बड़े डाक्टर भी कम ही आते हैं। कभी महीने-बीस दिन में आये, तो आये, नहीं तो ये छोटे डाक्टर और डाक्टरनियाँ ही देख-भाल कर जाते हैं।'

मधुकर का ध्यान उस समय पुष्पा की बातों की ओर कम था वह वॉर्ड के मरीजों को देख रहा था। उनकी विवशता को भी हृदयंगत कर रहा था। जैसे वे सभी जीवन पाने के लिये तरस रहे थे, भिखारी बने थे। किन्तु इतनी बात मन में आते ही, जब फिर उसके अन्दर कोहरा-सा घुटा, जहरीला धुआँ फैला, तो वह तुरन्त ही उस पुष्पा की ओर देखकर बोला—'हाँ, मैं बड़े डाक्टर से कहूँगा कि पुष्पा का रोग कम नहीं हुआ। अपितु बढ़ गया। यही न!'

पुष्पा ने कहा—'हाँ, भैया! मुझे तो यही लगता है। डाक्टरनी से पूछती हूँ, तो वह कुछ बताती नहीं। नर्स भी सीधे मुँह बात नहीं करती। यहाँ तो सभी के दिमाग चढ़े हैं। ये भंगी और मेहरानियाँ भी मरीजों से फल-मिठाई मांगती हैं।'

मधुकर ने कहा—'सभी चोर हैं, कुतियाँ हैं।'

पुष्पा ने कहा—'भैया तुम आये, तो कई औरतों ने मेरे पास आकर पूछा, ये कौन हैं, तेरे? इतने ढेर सारे फल लाये हैं। भैया, मैंने कुछ दे भी दिये। तुम तो व्यर्थ ही इतने पैसे डाल आये। मैं जानती नहीं क्या कि तुम अधिक उपार्जित नहीं करते। तुम भी गरीब हो!'

मधुकर हँस दिया—'गरीब हूँ, तभी तो तेरे पास आता हूँ।'

पुष्पा ने बात सुन ली, तो जाने कैसी दृष्टि के साथ मधुकर की ओर देखा।

मधुकर बोला—'तू चिन्ता न कर, मैं दो-चार दिन यहाँ रहूँगा। तेरी देख-रेख करूँगा।'

किन्तु पुष्पा मुँह से कुछ नहीं कह सकी, उसकी आँखें रो पड़ीं।

उसी अवस्था में उसने कहा—'हाय, मैं ऐसी बदनसीब हूँ कि मेरा कोई नहीं बना·· कोई नहीं रहा !'

मधुकर ने चंचल बनकर कहा—'मैं हूँ तो। जब तेरा भैया बना हूँ, तो तेरे लिये शक्ति-भर सभी कुछ कर सकता हूँ। देख तो, मेरा भी कौन है, तू बहिन बनी, तो मैं इसे बहुत बड़ी निधि मानता हूँ।' कहते हुए मधुकर खड़ा हो गया और डाक्टर से मिलने उसके बँगले की ओर बढ़ गया।

२१

शारदा के सम्पर्क में रहने वाले व्यक्ति अधिक नहीं थे। किन्तु उनमें कुन्दनलाल शास्त्री एक ऐसा व्यक्ति था कि जो उस युवा नारी की महत्वाकांक्षा को पूर्ण रूप से समझ चुका था। कदाचित यही कारण था कि जब मधुकर उस पहाड़ पर पहुँच कर धर्मशाला में ठहरा, तो सहज ही, विविध प्रकार के व्यक्तियों की मनोवृत्ति समझने वाला वह शास्त्री मधुकर को देखते ही यह समझ गया कि यह विषय या समस्याओं से घिरा नहीं। और स्वयं कुन्दनलाल शास्त्री की स्थिति यह थी कि उसने अपनी पत्नी के जाने के बाद जैसे जगत के सौन्दर्य की ओर से मुँह फेर लिया था। वह उदास हो चुका था। जब अपने पिता के साथ शारदा उस धर्मशाला में आकर ठहरी, तो वृद्ध लौटती बार अपनी पुत्री का भार शास्त्री को सौंप गया। वह यह ग

लड़की आपकी है, जीवन से दुःखी है, स्वास्थ्य सुधार के लिये इसे कुछ समय यहां रहना है, अतएव, आपका संरक्षण इस शारदा के लिये पाना आवश्यक है ।

अपने पिता के जाने के बाद ही, शारदा ने बालिका विद्यालय में अध्यापिका पद के लिये आवेदन-पत्र दिया था । जिस रावराजा ने कवि-सम्मेलन का आयोजन किया, बालिका विद्यालय को उन्हीं का संरक्षण प्राप्त था, अतएव अध्यापिका की नियुक्ति का भार भी उन पर था । इस बात का भले ही शारदा को ज्ञान न हो, परन्तु शास्त्री जानता था कि वह रावराजा धनिक तो था ही, रसिक भी था । अतएव, शास्त्री को भय था कि वह शारदा से सम्पर्क स्थापित करेगा । फलस्वरूप, जब मधुकर उस नगर से लौट गया, शारदा का कोई और अवलम्ब नहीं रहा, तो अनायास, उसे रावराजा की कोठी पर एक दिन बुला लिया गया । यह उल्लेखनीय बात थी कि जिस दिन मधुकर उस रावराजा की कोठी पर भोजन करने गया, तो शास्त्री और शारदा को उसके साथ देख वह रावराजा अत्यधिक प्रसन्न हुआ था । उसने नितान्त समवेदन शील बनकर शारदा का परिचय पाया और उसे अपने सामने की कुर्सी पर बैठने का संकेत दिया था । उसी दिन रावराजा ने अपनी छोटी पुत्री को घर पर पढ़ाने का काम भी उस शारदा को सौंप दिया था ।

यह संयोग की बात थी कि जब मधुकर ने अस्पताल से शारदा को पत्र लिखा, तो वह उस पत्र को पाने से पूर्व ही, रावराजा के परिवार के साथ बम्बई प्रस्थान कर चुकी थी । यद्यपि शारदा की ऐसी इच्छा नहीं थी, परन्तु रावराजा की आकांक्षा के समक्ष वह आंख मूंद कर सिर झुकाने के लिये विवश थी ।

फलस्वरूप जब कई दिन तक शारदा अपने स्वभाव के अनुसार शास्त्री के पास नहीं पहुँची, तो उसे सन्देह हुआ कि कहीं वह शारदा बीमार तो नहीं पड़ गयी अतएव वह उस ओर गया । मकान पर

जाकर बुढ़िया से मिला। तभी बुढ़िया ने उसको मधुकर का पत्र दिया और कहा बिटिया के नाम यह किसी का पत्र आया है, रखा है। वह रावराजा के साथ बम्बई गयी है। स्कूल से एक मास की छुट्टी ले ली है।'

सुनते ही शास्त्री का माथा ठनक गया। वह जिस भय की कल्पना करता था, वह उसके समाने आ गया। लगभग दो मास मधुकर उसकी धर्मशाला में रहा तो उसने समझ लिया कि चलो, इस शारदा को साथी मिल गया। परन्तु इधर इस शारदा ने अपना सीधा मार्ग छोड़ दिया, टेढ़ा-तिरछा पकड़ लिया। और शास्त्री को पता था कि वह रावराजा अपने इस पार्थिव शरीर को पाकर जाने कितनी नारियों का जीवन भ्रष्ट कर चुका है। यह वासनासिक्त है, उसी की पूजा करता है। भावदान का कीड़ा बनना ही पसन्द करता यह रावराजा!

बुढ़िया ने कहा—'बाबू स्कूल का मालिक जो चाहे कर सकता है। दूसरों को छुट्टी नहीं मिलती—और उस शारदा बिटिया को··'

जल्दी से, जैसे आतुर बनकर शास्त्री ने कहा–'तो कब तक आयेगी।'

बुढ़िया ने हँस कर कहा—'अभी तो एक महीने की छुट्टी ली है आगे भी ले सकेगी। वह राजा जी की आँख चढ़ी है, तो सहज में उबर सकेगी।'

शास्त्री ने बुढ़िया की बात सुन ली और वहाँ से चल दिया। वह प्रौढ़ व्यक्ति जो अब जीवन में साफ और निर्विकार रहना ही पसन्द करता, शारदा की उस नयी गति-विधि में इस प्रकार फँस गया कि जैसे वह उसी की लड़की थी और वह उसका पिता था। कदाचित इसका कारण इसके अतिरिक्त और क्या था कि शारदा कई मास धर्मशाला में रही उसके सम्पर्क में पहुँच कर निकटतर बनी तो वह सहज ममता के साथ उससे अनुराग करने लगा था।

धर्मशाला पहुँच कर शास्त्री ने पहिला काम यह किया कि उसने

तुम्हारी पुत्री अभी तक सीधे रास्ते पर जा रही थी, परन्तु अब मुझे सन्देह है कि वह भटक चुकी है, गुमराह हो जाना चाहती है। वह रावराजा के साथ बम्बई पहुँची है।

मधुकर को लिखा शारदा यहाँ नहीं। रावराजा उसे बम्बई ले गया है। उस व्यक्ति का फिल्म व्यवसाय से भी सम्बन्ध है। हो सकता है, उसी के लिये वह शारदा को उपयुक्त समझता हो और वहाँ ले पहुँचा हो। मधुकर के पत्र में शास्त्री ने इस बात का भी उल्लेख किया कि उसकी धारणा थी कि शारदा कल्पना मयी है, स्नेहमयी तुम्हारा सम्पर्क पाकर उसकी भावना जागेगी और वह समाज की एक विशिष्ट महिला बन सकेगी। परन्तु अब मुझे लगता है, उसने भी अवसरवादिता का मार्ग अपनाया है। मनुष्य में इच्छा हो और उसे आश्वासन प्राप्त हो, तो निश्चय ही वह सफलता की ओर अग्रसर होता है। लगता है, शारदा की मनोदशा भी ठीक ऐसी ही है।

संयोग की बात थी कि जिस समय मधुकर को शास्त्री का पत्र मिला, तो उससे कुछ समय पूर्व ही वह पुष्पा की अर्थी बाँधकर पहाड़ की निचाई में जाकर फूँक कर लौटा था। वह उस पुष्पा की मौत से खिन्न और दुःखी था उस क्रिया का सम्पादन करने में उसके कई घन्टे लगे थे। मधुकर थक कर अपने बिस्तर पर पड़ा था। उस चार दिन के समय में उसने जिस नाटकीय ढंग का वहाँ प्रदर्शन किया निःसन्देह वह उसकी आत्मा के विरुद्ध था। परन्तु वह उस पुष्पा के लिये सभी कुछ करने के लिये तत्पर था। अस्पताल के बड़े डाक्टर को कविता सुनने का शौक था, इसलिये उस दिन जब उसने मधुकर को निमन्त्रित किया, तो अन्य डाक्टरों को भी बुलाया। मधुकर ने लगभग एक घण्टे तक कविता अलाप किया। और यह सब इसलिये था कि वह डाक्टर समुदाय उस पुष्पा को बचा ले। उसे आँधी से निकाल ले। क्योंकि वहाँ आकर मधुकर ने एक ही बात उस पुष्पा में पायी कि वह भी जीवन की प्यासी थी। जीवित रहना

चाहती थी। किन्तु मधुकर का वह प्रयत्न भी सफल नहीं हुआ। डाक्टर उसे नहीं बचा सके। एक दिन के प्रातः काल में उसका प्राण निकल गया। मधुकर को सन्तोष था कि ऐसे विषम अवसर पर वह उसके पास था निश्चय ही, रात में पुष्पा ने समझ लिया था कि अब वह जायेगी, रह नहीं सकेगी। इसलिये, उस अन्तिम विदा वेला में उसने अपना दुर्बल हाथ मधुकर के हाथ पर रख दिया और कहा—भैया, भाग्य की बात है, संयोग की बात कि अपरिचित बनकर भी तुम मेरे भाई बन गये, सहायक हो गये। विश्वास रखो मैं जाऊँगी, तो केवल अपने प्राणों में भर कर एक ही बात ले जा सकूंगी और वह तुम्हारी याद, तुम्हारा आभार !

लेकिन मधुकर उस समय मौन था, वहाँ से उठ आया था। प्रातः ही उसे समाचार मिला कि पुष्पा मर गयी उसका शरीर मुर्दा-घर में भेज दिया गया।

यों, उस पुनीत काम को सम्पादित कर, मधुकर चुपचाप ही अपने कमरे में अकेला पड़ा था। उसके हाथ में शास्त्री का पत्र था। वह उसी समय उसे मिला। किन्तु उस समय उसके मस्तिष्क में केवल पुष्पा थी, आँखों में मरा हुआ शरीर और जलती हुई चिता थी। हाय वह कितनी दुर्भागिनी थी। उसका कोई भी पास नहीं था। मानों वह समूचे जगत में उपेक्षित थी।

मधुकर ने शास्त्री का पत्र पढ़ लिया था। उसे सिरहाने रख दिया था। वह टाँग पर टाँग रखे पड़ा था। एक हाथ उसने माथे पर रख छोड़ा था। निश्चय ही, वह देख रहा था कि उस अस्पताल में प्रतिदिन दो-चार मर जाते। कुछ के रोने वाले होते और कुछ अस्पताल वालों के द्वारा ही फूँक दिये जाते। ऐसे निरीह, अस्थिर और सन्दिग्ध जीवन की उस परिणति को देख, मधुकर के मन में बात उठ रही थी कि यहाँ कोई किसी का नहीं, किसी का नाता-रिश्ता नहीं ··

उसी समय अस्पताल का एक कर्मचारी उधर से निकला, तो मधुकर

पूछ बैठा—'मोटर किस समय जाती है ?'

बताया गया—'चार बजे।'

मधुकर ने घड़ी देखी, तो उस समय दो बजा था। उसने चादर तान ली और एक घण्टा सो जाने का प्रयत्न करने लगा। क्योंकि रात में वह नहीं सो सका था। जब वह पुष्पा के पास से लौटा, तो नर्स ने मधुकर को बता दिया था कि डाक्टर कह गया है कि आज इस मरीज की अवस्था खराब है। रात पूरी कर ले, तो बहुत है। इसलिये, उसने रात में सो जाने की बात भुला दी। वह जागता रहा। कमरे में पड़कर इस बात की आहट लेता रहा कि कब कोई उसे सूचना देने आता है। इसलिये उसने रात में सिगरेट के दो पैकेट फूँक दिये। कमरे में सिगरेट के टुकड़ों का ढेर लग गया। वह तब भी बार-बार उस ओर देख रहा था। फर्श पर पड़े उन टुकड़ों का घिनौनापन उसे अच्छा नहीं लग रहा था।

पिछले दिन ही बड़े डाक्टर ने उससे प्रश्न किया था कि यह लड़की आपकी कौन है ? तो तब, मधुकर ने कहा—'दुनियादारी की दृष्टि से बहन है और कुछ नहीं…।'

डाक्टर ने फिर प्रश्न किया—'सगी है ?'

मधुकर ने कह दिया—'जी, नहीं। कुछ समय पूर्व की परिचित है। यह माँ-बाप ने ठुकरा दी, ससुराल वालों ने अपात्र समझ ली, तो तब, संयोग से मुझसे परिचित हो गयी।'

डाक्टर बोला—'यह बड़ी बात है। आप इसके लिये इतने चिन्तित हैं, यहाँ तक आये हैं, यह कम सराहनीय है।'

चिन्ता में पड़े हुए चादर तान कर भी मधुकर सो नहीं सका। वह जैसे बरबस ही किसी झंझावत में उड़ा जा रहा था। वह अपने को असफल समझ रहा था। और इसका एक कारण था, शास्त्री का वह पत्र। पुष्पा की समस्या के साथ उसने बिस्तर पर पड़े-पड़े उस पत्र को भी कई बार पढ़ा और रख दिया। मानो उस मानसिक सन्ताप में वह

पत्र भी सहयोग दे रहा था, उसके घायल मन पर हुए जख्म पर नमक छिड़कने का काम कर रहा था। जब मधुकर सो नहीं सका, तो उसने फिर एक नयी सिगरेट सुलगायी और उसका धुआँ छोड़ कर उसी के उड़ते गुब्बार मे वह जैसे देखने लगा कि वह शारदा है, वह रावराजा है, बम्बई है, वहाँ का शानदार होटल है। उसके मन में बात घूम रही थी कि बड़ा स्टुडियो है, शारदा वहीं पर एक प्रेमिका का अभिनय कर रही है, वह अपने प्रेमी के गले में हाथ डाले उसकी ओर मुखरित हुई जैसे उस प्रेमी से जीवन की भीख माँग रही है' 'वह शारदा'''

सिगरेट में अभी दो-चार ही दम मारे थे कि मधुकर ने उसे कमरे के फर्श पर रगड़ कर फेंक दिया। वह खड़ा होगया और अपने सिर के रूखे बालों में उँगलियाँ देता हुआ बोला—'धूर्त शारदा! आदमी की भूखी''' कुतिया'''' उसने कहा—'मैं तो समझता था कि वह अनेक घाटों का पानी पी चुकी है। वह आदमी व्यर्थ नहीं था, मूर्ख नहीं कि जिसने इसे पत्नी समझ कर भी छोड़ दिया। अब अपने पिता को परेशान करती है, अन्धेरे में रखती है, उस आदमी की दया और ममता का खून करना चाहती है, यह शारदा!

घड़ी देखी, तो तीन बज रहा था। मधुकर ने बिस्तरा बाँध लिया। उसने अपना बक्स भी बन्द कर दिया। झोला कन्धे पर डाल लिया और तब वह एक मजदूर को सामने देख, उसके सिर पर सामान रखा-कर मोटर स्टैण्ड की ओर चल दिया।

अपने समय पर मोटर छूटी, मधुकर को उस पहाड़ से नीचे ले चली। कैसे अजीब और चक्करदार रास्ते थे, वह! मुसाफिरों को भयभीत बनाते थे। किन्तु मधुकर पहाड़ की उन अगम खाइयों को देख, उस समय तनिक भी विचलित नहीं हुआ। मानो उस जीवन की अपेक्षा उसे मौत प्यारी थी। चलती हुई मोटर किसी खड्ड मे गिरे, तो वह उस आने वाली मौत का सहर्ष आलिंगन कर सकता था। जीवन का यह अवसान उसे प्यारा था। चलती हुई मोटर मे जब तक वह अस्पताल और

वह स्थान जहाँ पुष्पा का दाह-संस्कार हुआ था दूर नहीं हो पाया, मधुकर उधर ही देखता रहा। यद्यपि जब वह अस्पताल के कुछ कर्मचारियों के साथ उस पुष्पा की अर्थी बनाकर चिता पर रख रहा था, तो तब, उसने पुष्पा के पैरों पर हाथ रखे थे और उसे सम्मान प्रदान किया था। और जब उसकी चिता जल चुकी, राख नदी में बहा दी गयी, तो तब भी मधुकर ने मौन भाव में उस पुष्पा की कल्पना करके, आँख मूँद कर भगवान से प्रार्थना की थी कि वह उस मृतात्मा को शान्ति दे।

यद्यपि इस प्रकार की क्रिया मधुकर ने उस दिन सर्वप्रथम की थी, उसकी अवस्था भी नहीं थी, परन्तु उस समय उसे लगा कि यही श्रेयस्कर है, अन्तिम आधार है, जग की यही परम्परा है। अतएव, वह भी उसका अनुसरण करने के लिये, जैसे अपनी आत्मा का आदेश पा सका था, और वह सब करने में सफल बना था। किन्तु जब उस स्थान से मोटर कई मील दूर आगे निकल गयी और सपाट मैदान आ गया, तो तब, मधुकर ने लम्बी सांस भरी और खिड़की के बाहर दूर अन्तरिक्ष की ओर देखते हुए, एकाएक बोला—'भगवान, मैं उस पुष्पा के जितना काम आ सका, आया। मेरा उसका इतना ही संयोग था। अब उसे जरूर किसी अच्छी जगह भेजना। उसके अपराध क्षमा करना।'

निःसन्देह, यह कहते हुए मधुकर का दिल भर गया। वह खुल कर तो नहीं रोया, परन्तु जब एकाएक फिर यह बात उसके मन में आयी कि हाय ! उस बेचारी पुष्पा ने पाया क्या, खोजा क्या, तो मधुकर को लगा कि वह खाली हाथ आयी, खाली हाथ गयी। उसके मानस में भरी अनुभूति, अनुराग और प्रेम का भाव कोई भी नहीं समझ सका, कोई भी उसका मोल नहीं आँक सका··· ।

उसी समय बराबर बैठे व्यक्ति ने पूछा—'बाबूजी, क्या बजा है, आप की घड़ी में ?'

मधुकर ने कहा—'पांच !'

वह बोला—'एक घण्टा और लगेगा, इस मोटर को रेलवे स्टेशन पहुँचने में ! तभी उसने प्रश्न किया—'आप कहाँ जायेंगे ?'

मधुकर ने कहा—'कानपुर ?'

उसने कहा—'गाड़ी तैयार मिलेगी । कौन मरीज है आपका यहाँ पर ?'

मधुकर ने बाहर की ओर देखते हुए कहा था—'अब कोई नहीं।'

'अच्छा, ठीक हो गया, या कि···

मधुकर ने उदास भाव से कह दिया—'मर गया !'

'ओह, मर गया ! वह बोला—'अजीब असार-ससार है, यह ! वह कौन था, भाई ?'

'नहीं, बहिन !' और उसने फिर खिड़की के बाहर मुँह निकाल लिया । वह उदास भाव से सामने फैले विस्तृत जंगल की ओर देखने लगा ।



२२

रावराजा एक महत्वाकांक्षी और विलासी व्यक्ति तो था ही, विलासी और नारी के मनोविज्ञान का भी ज्ञाता था । जिस दिन मधुकर और शास्त्री के साथ शारदा रावराजा के बँगले पर पहुँची, तो वहाँ एक फिल्म डायरेक्टर भी उपस्थित था । जब उसने शारदा का परिचय लिया, तो उन सबके लौटने पर उसने रावराजा को बताया, आप

हीरे-जवाहरातों के खजाने पर बैठते हैं, और तब भी उन्हें दूर जाकर खोजते हैं।' वह बोला—'यह अध्यापिका फिल्म क्षेत्र में प्रविष्ट हो, तो निःसन्देह अच्छी तारिका बन सकेगी। इस प्रकार के नखशिख फिल्म के परदे को चमका देंगे। दर्शकों को आकर्षित करेंगे और रुपया प्राप्त कर सकेंगे।'

रावराजा ने कहा—'यह अध्यापिका अभी नयी है।'

डायरेक्टर बोला—'यह उस क्षेत्र में पहुंच सकती है। हमें एक गीत लेखक भी चाहिये, यह कवि मधुकर भी रखा जा सकता है। क्या आपको भरोसा नहीं कि कवि का इस अध्यापिका से प्रणय-सम्बन्ध बना है। मेरा मत है कि दोनों ने एक-दूसरे को आकर्षित किया है।'

रावराजा ने बात सुन ली, परन्तु अपना मत नहीं दिया। उसने अपनी हिटलरनुमा मूंछों को मरोड़ा और उस डायरेक्टर की ओर देख आंखों से हंस दिया।

और अब यह कहना असंगत नहीं होगा कि रावराजा के साथ शारदा का बम्बई जाना केवल इसी उद्देश्य की एक कड़ी थी कि जिसमें उस धनिक व्यक्ति को प्राथमिक सफलता मिलने का गौरव प्राप्त था। बम्बई के जिस विशाल-भवन में वह परिवार ठहरा, वह राजसी ठाठ से युक्त था। प्रथम दिन ही, रावराजा ने एक मोटर शारदा के लिये नियुक्त कर दी थी, जिसके लिये कहा गया था कि वह उनकी बच्ची को साथ लेकर सुन्दर बम्बई का पर्यटन करे और सब ओर घूमें। इस प्रकार न केवल उस नगर में जाकर शारदा को नये व्यक्तियों से सम्पर्क स्थापित करना पड़ा, अपितु उसे जीवन के रहन-सहन को भी बदलना पड़ा। उसकी पोशाक के परिधान बदले गये और सहज ही एक नया और अनुपम वातावरण उसके समक्ष उपस्थित कर दिया गया।

लेकिन शारदा को स्पष्ट आभास उस समय हुआ कि जब वह एक फिल्म स्टूडियो में रावराजा के साथ गयी। यहीं पर उसने जाने-पहचाने

डायरेक्टर की देखा। मिस्टर चोपड़ा नाम के उस डायरेक्टर ने शारदा को सम्बोधित किया और कहा—'शारदा देवी, तुम्हारा क्या मत है, इस फिल्मी संसार के लिये ? तुम्हें यह पसन्द है। बम्बई आकर कुछ चित्र देखे हैं ?'

शारदा उस आकस्मिक वार्ता का मर्म नहीं समझ सकी। वह बोली—'इससे कौन बुद्धिजीवी इन्कार करेगा कि फिल्म-कला का भी एक विशिष्ट स्थान है। मैं भी इस क्षेत्र के कलाकारों को महत्व देती हूँ। यहाँ आकर कई फिल्म देख चुकी हूँ।'

तुरन्त ही मि० चोपड़ा ने कहा—'तो आप भी आइये न, इस क्षेत्र में। रावराजा साहब पैसा लगाते हैं, तो उपार्जित करते हैं। आप अपने शरीर की कला का प्रदर्शन करेंगी, भावनात्मक अभिनय करेंगी, तो धन के साथ प्रतिष्ठा और समाज का आशीष भी प्राप्त कर सकेंगी। यह फार्म आपके सम्मुख उपस्थित है, भर दीजिये। आपको हम पेशगी भी देंगे, पचास हजार।'

एकाएक जैसे शारदा धरती से आसमान में उड़ गयी, वह बोल नहीं पायी। वह कन्ट्राक्ट फार्म उसके समक्ष रखा था, परन्तु उसके कालम, छपे शब्द जैसे सभी लिप-पुत गये। वह उसकी आँखों के समक्ष मच्छर की तरह तिलमिलाने लगे।

तभी मिस्टर चोपड़ा ने कहा—'संयोग की बात है, शायद आपके भाग्य की बात कि जाने कितने लड़के-लड़कियाँ इस स्टुडियो के द्वार पर आते हैं और लौट जाते हैं। उन्हें अवसर नहीं मिलता। परन्तु शारदा जी आप ' मि० चोपड़ा बोला—'मेरा मन कहता है, आपका यह स्क्रीन-फेस जल्दी ही इस फिल्म-क्षेत्र में चमक उठेगा। यह कन्ट्राक्ट इसलिये है कि आप इस कम्पनी के कम-से-कम दस चित्रों मे काम करेंगी।'

चंचल बनकर शारदा ने कहा—'मैं सोचकर जवाब दूँगी।' वह रावराजा की ओर देखकर बोली—'इनसे भी अनुमति लूँगी।'

रावराजा ने कहा—'मेरी अनुमति है।' वह बोले—'मि० चोपड़ा ने मुझसे कहा था। मैंने कह दिया था, स्वयं बात कर लें।'

मि० चोपड़ा ने कहा—'रावराजा भी आपका हित चाहते हैं। आप फार्म भर दीजिये। इच्छा न हो, तो लौट सकती हैं। हाँ, पचास हजार रुपया जो हम पेशगी देंगे, वह केवल इसलिये कि आप दूसरी कम्पनी के फिल्म में काम न कर सकेंगी। कम-से-कम दो वर्ष इस कम्पनी में रहेंगी।'

रावराजा ने कहा—'शारदा देवी, फार्म भर दो। पेशगी प्राप्त करो। तुम्हारा समय अनुकूल है, यह तो भाग्य की बात है।'

फलस्वरूप, शारदा ने कलम उठायी और फार्म पर दस्तखत कर दिये। उसी समय मि० चोपड़ा द्वारा पचास हजार रूपये का चैक काट कर शारदा को भेंट कर दिया गया।

उसी सप्ताह रावराजा ने उस नगर को छोड़ दिया।

फिल्म जगत के लिये आश्चर्य और चकित कर देने वाली बात थी कि चोपड़ा अपने एक नये चित्र में नयी तारिका को लाये हैं और वह चित्र अत्यन्त सफल रहा। उसके अखबारों में फोटो छपे और बधाई के संदेश प्राप्त हुए। शारदा को यह देखकर आश्चर्य नहीं हुआ कि उन्हीं सन्देशों में एक सन्देश मधुकर का भी था। उसने लिखा था, तुम्हारे इस नये प्रयास और नये जीवन को देखकर मैं भी हार्दिक बधाई भेंट करता हूँ।'

लेकिन जब एक नये चित्र के निर्माण कार्य के लिये फिल्म कलाकारों की टीम मसूरी पहुंची, तो शारदा ने सर्व प्रथम काम यह किया कि वह धर्मशाला में पहुंची और नमस्ते करके शास्त्री के समक्ष जा खड़ी हुई।

देखते ही शास्त्री ने शारदा का स्वागत किया। बातों-बातों में उसने बता दिया कि तुम्हारे पिता आये और तुम्हारा सामान बन्द करके यहाँ रख गये। तुम्हारा मकान खाली कर गये।

शारदा ने कहा—'यह मैंने उन्हें लिखा था।'

शास्त्री ने कहा—'तुम्हारी इस सफलता पर सभी को गर्व है। यदि नहीं है, तो केवल एक व्यक्ति को और वह मधुकर है। उसने बताया मधुकर पिछले दिनों ही यहाँ आया था। कदाचित तुमने नहीं सुना होगा कि उसने मुनीम से प्राप्त मकान नगर की एक संस्था को दे दिया।'

शारदा बोली—'मधुकर ने तो मुझे नहीं लिखा, परन्तु मैंने यह समाचार अखबार में पढ़ा था। उसमें मधुकर का फोटो भी छपा था।'

'तो तुम्हें मधुकर ने कोई पत्र नहीं दिया? बलात शास्त्री ने प्रश्न किया।'

शारदा बोली—'मेरे प्रथम चित्र पर उसका दो लाईनों का बधाई कार्ड मिला था मैंने कई पत्र दिये, लेकिन उसने किसी का भी उत्तर नहीं दिया।'

यह सुनकर शास्त्री गम्भीर बन गया। वह कमरे के बाहर खड़े आसमान को छूने पहाड़ की ओर देखने लगा।

शारदा बोली—'शास्त्री जी, मेरा मत है कि मधुकर मेरे इस कार्य को पसन्द नहीं कर सका। परन्तु मैं आपको यह बताती हूँ कि इस एक वर्ष में ही— कम्पनी ने मुझे एक लाख से ऊपर धन दे दिया।

जल्दी से जैसे आतुर बनकर शास्त्री ने कहा— 'हाँ हाँ, वहाँ धन तो मिलेगा ही। पैसा वहीं है। जनता नई-नई तस्वीर देखने में व्यय करती है। रस और आनन्द पाती है।' वह बोला—'कभी नाटक थे, तो उनके स्टेज पर प्रदर्शन होते थे। तब उनमें सम्भ्रान्त घरों की स्त्रियाँ और लड़कियाँ तो काम नहीं करती थीं परन्तु वेश्यायें सरलता से उपलब्ध होती थीं। पर आज कुलीन परिवारों की लड़कियाँ और लड़के फिल्मी जगत में जाने के लिये तरसते हैं। फिल्मी तारिकायें पैसा तो प्राप्त करती ही हैं' पर सम्मान भी प्राप्त करती हैं। क्यों,

तुम्हें देखने के लिये यहाँ आदमी एकत्र नहीं हुए। समझ नहीं पाये होंगे लोग कि तुम हो, मिस दुलारी, फिल्म जगत की नयी तारिका!' यह कहते हुए शास्त्री रुक गया। तभी वह फिर कहने लगा—'शारदा देवी, मैं सिनेमा का शौकीन नहीं पर कुछ मित्रों ने कहा तो तुम्हारा चित्र देखने पहुँच गया था। मैंने तो देखा कि जब तुम उस चित्र में अपने प्रेमी से वार्तालाप कर रही थीं, एक गाना गा रही थीं, तब कुछ मनचलों ने उस परदे के ऊपर पैसे फेंके थे, मैं कह सकता हूँ कि वे सब बाजारू गुण्डे और औरत का रूप-रंग देखकर मचलने वाले लोग थे'

एकाएक क्षुब्ध बनकर शारदा ने कहा—'लोग मूर्ख हैं! अपनी भावना का गलत प्रदर्शन करते हैं।'

शास्त्री ने कहा—'हाँ, मूर्ख हैं लोग। वह बोला—'कहो अब तो तुम्हारे पास शानदार बंगला होगा मोटर होगी बैंक में हजारों रुपया।

काश शारदा समझ पाती कि वह शास्त्री जो कई दिन से अस्वाथ था और उस समय भी अनमने पन से जैसे उपहास और उपेक्षा के स्वर में उस सुन्दरी शारदा से बात कर रहा था। निःसन्देह वह भूल गया था कि रावराजा के बंगले से वहाँ तक शारदा पैदल नहीं आई थी उसकी शानदार गाडी धर्मशाला के द्वार पर खड़ी थी। उस समय शारदा जिन परिधानों से सज्जित थी, वे भी कीमती थे। उसके कानों में जो आयरन पडे थे, तो उनमें चमचमाते हुए कीमती मोती लगे थे। कदाचित उस अवस्था को देखकर ही शास्त्री ने अनुभव किया कि सुन्दर वस्त्र, सुन्दर सज्जा नारी का रूप निखारती है। यह वह शारदा है, जो यहाँ एक सादी धोती में रहती थी। उस शास्त्री की सेवा में रत दिखायी देती थी। परन्तु उस समय वह दूर की वस्तु थी। निरी आलौकिक अभूतपूर्व! मानों रूप की परी!

शारदा ने कहा—'शास्त्री जी इस जिन्दगी को चलाने के लिये आदमी नये-नये रास्ते खोजता है······ अपना प्रगति पथ प्रशस्त करना चाहता है। मधुकर या आप या, और कोई भले ही मेरे

इस कार्य को उपेक्षा या तिरस्कार की दृष्टि से देखें पर मैं इस जीवन को सौगात मानती हूँ। सचाई यह है कि मैं आज भी यह नहीं सोच पाती कि कैसे एकाएक ही ताना-वाना बना और मैं उस क्षेत्र में अग्रसर हो गयी।'

शास्त्री ने कहा—'शारदा जी, यह तो आज के युग की माँग है। इसका स्वागत किया जाता है। फिल्म तारिका को सबसे बड़ा सम्मान प्रदान किया जाने लगा है। उसे गौरवान्वित किया जाता है।'

शारदा ने रूक्ष भाव में कहा—'किन्तु मधुकर ने यह पसन्द नहीं किया। इसलिए उसने मेरे पत्र का उत्तर नहीं दिया। उसके पास मेरा एक फोटो था, यह भी उसने वापिस भेज दिया।'

'ओह, इतना तक किया, उस मधुकर ने!' शास्त्री बोला—'शारदा जी, वह कवि है न, भावनावादी - आदर्शवादी! और जानती हो कि ऐसे लोग व्यावहारिक नहीं होते। दुनियादार नहीं। वह तो पिछले दिनों यहाँ आया, तो कह गया कि मैं यहीं आ जाऊँगा। वह बाबा हलधर के गाँव में कई सौ रुपये बाँट गया। एक बार कानपुर से ही धोती के जोड़े, और कम्बल ले आया, तो लोगों को दे गया। अब उसे देखो, तो पाओगी, जैसे निरा बाबा जी बन गया। इस बार तो वह दुर्बल भी अधिक दिखायी दिया। उसे सबसे बड़ा दुःख इस बात का हुआ कि जो लड़की तपेदिक के अस्पताल में दाखिल करायी थी, वह मर गयी। तुम्हें मैंने उसका वह पत्र तो भेज दिया था। मिला होगा।'

शारदा ने कहा—'हाँ मिला था।'

शास्त्री बोला—'सचमुच, उस लड़की के लिये उसने सब कुछ किया।' शास्त्री ने आगे कहा—'अब की बार जब आया, तो बोला, शास्त्री जी, जीवन खोजा जाता है, जैसे रेत में से तेल निकाला जाता है, ऐसे ही, जीवन-समुद्र का मन्थन करके अमृत-घट प्राप्त किया जाता है। उसने बताया कि साधना करना ही मेरा काम है। यह जन्म इसीलिये हुआ है।'

शारदा ने पूछा—'वह बाबा हलधर है ? अभी जीवित है ?'

शास्त्री ने कहा—'हाँ, है। अभी आता होगा। दो दिन से यहाँ आया है। वह मुझे अपने गाँव ले जाने की बात कहता है।'

अवसर की बात कि उसी समय लाठी के बल चलता हुआ हलधर वहाँ आया। वह शास्त्री के पास शारदा को बैठी देख पहचान नहीं सका। एक तरफ आकर बैठ गया।

किन्तु शास्त्री ने हँस कर कहा—'अरे, बाबा ! पहचानते हो इन्हें।'

बाबा ने अपनी दुर्बल आँखों से शारदा की ओर देखा और तब बलात् अपने स्वर पर जोर देकर बोला—'कौन बिटिया······'

शारदा ने कहा—'हाँ, बाबा, मैं तुम्हारी बिटिया ! कहो, अच्छे हो !'

बूढ़े हलधर ने हर्ष से भर कर कहा—'तो तुम्हारी ही मोटर बाहर खड़ी है। मैंने तो समझा कि कोई सेठ, कोई सेठानी आई है, मैनेजर के पास !'

शास्त्री ने कहा—'अब यह बाबा दूर-दूर तक प्रसिद्ध हो गया है। पुजने लगा है।'

बाबा ने कहा—'न बाबू ! पुजने वाला तो यहाँ से दूर है। उस मधुकर ने ही मुझे आदमी बनाया और उसी ने गाँव वालों को।'

शारदा ने कहा—'तो मधुकर बाबू तुम्हारे गाँव आते हैं मिलते हैं।'

बाबा ने कहा—'बिटिया गाँव के लोग तो उस बाबू को आँखों पर बैठना चाहते हैं। पर वह रुकता ही नहीं। आता है और चला जाता है। पिछले दिनों जब आया, तो मुझ से इन दिनों आने के लिये कहा था। पर अभी तक तो आया नहीं।'

शास्त्री ने कहा—'पत्र आया है। मधुकर बाबू आएँगे। मैंने उनका कमरा रिजर्व कर दिया है।' वह हँस कर बोला—'पर अब मधुकर जी का उस कमरे में मन नहीं लगेगा। पिछले दिनों आये तो मेरे कमरे में

ठहरे। मुझ से कह दिया, वह कमरा अब सूना लगता है जैसे निष्प्राण।'

बाबा ने कहा—'बिटिया होती तो मधुकर जी का मन लगता। ठीक तो कहते हैं वह, जब शरीर में प्राण नहीं तो वह क्या चलेगा, क्या हरकत करेगा ?'

उस समय शारदा मौन थी, जैसे उसके चारों तरफ की धरती घूम रही थी और उसके साथ वह भी घूमती जा रही थी।

वृद्ध ने पूछा—'तो अब कहाँ हो बिटिया, यह सुना तो कि तुम खूब रुपया कमाती हो। तभी ऐसी बढ़िया मोटर रखती हो।'

शारदा को लक्ष्य कर शास्त्री ने पूछा—'तो अभी रहोगी न ?'

शारदा जैसे चौंकी, वह सम्भल कर बोली—'नहीं, मैं कल ही लौट जाऊँगी।'

शास्त्री ने कहा—'तो अपना समान ले जाना। जगह घिर रही है, उसे खाली करा देना।'

शारदा खड़ी हो गयी और बोली—'आदमी आयेगा और वह समान ले जायगा।' उसने बाबा की ओर देखकर कहा—'अच्छा बाबा ! तुम्हारे दर्शन भी हो गये। फिर आई, तो मिलूँगी। अब नमस्ते अच्छा शास्त्री जी नमस्ते।' और वह बिना उत्तर पाये वहाँ से लौट गयी।

२३

फिल्म पार्टी मसूरी से लौटी, तो शारदा के मन में बात थी कि वह कानपुर उतरेगी। किन्तु जब कानपुर का स्टेशन आया, तो उसने अपना विचार त्याग दिया। उसके मन में अनायास ही यह विचार आया कि वह अब मधुकर से नहीं मिल सकती। वह तो एक संयोग की बात थी कि उसका और मेरा परिचय हुआ, जो कि अपने समय के साथ चला गया। सबसे अधिक गुरुतर और गम्भीर बात यह थी कि शास्त्री की बात सुनकर शारदा को स्पष्ट रूप से इस बात का आभास मिला कि आदमी दकियानूसी है, पुरातनवादी और रूढ़िवादी है। इसलिये जब इस प्रकार का विचार शारदा के मन में उठा, तो बम्बई के रास्ते में ही, उसे इस बात का भी ध्यान आया कि जब वह शास्त्री के पास गयी, धर्मशाला में जाकर बैठी, तो उसे सचमुच ही अटपटा लगा था। ऐसा आभास हुआ कि वह एक जीर्ण और मैले स्थान पर आ बैठी है। जिस धर्मशाला को वह उस क्षेत्र का सुन्दर मकान समझती थी, वह भद्दा और पुराना लगा। और जब उसने शास्त्री की बात सुनी, उसे मैली मसनद के सहारे बैठा देखा, तो तब सचमुच ही उसे यह देखकर अच्छा नहीं लगा कि वह सभ्य व्यक्ति किस प्रकार रहता है। उसकी बातों में जो प्रतिक्रियावादी तत्व बोल रहे थे, वे भी, शारदा के मन को चुभ रहे थे। जिस वृद्ध हलधर को उसने कभी अपने मन का अनुराग अर्पित किया, वह भी नितान्त दरिद्र और मनुष्य का अभिशाप ही दिखायी दिया। और जब उस बाबा ने मधुकर की प्रशंसा की, तब यदि उस शारदा को

अवसर मिलता तो उसके मुँह पर तमाचा मार देती, वह कह देती, तुम मूर्ख हो, बुद्धिहीन हो ! सचमुच, यदि शारदा के हाथों में शक्ति होती, तो वह उस शास्त्री को भी सबक देती कि एक कलाकार तारिका के मुँह पर उसका उपहास करने और ताना मारने का अर्थ क्या है ⋯ परिणाम क्या⋯?

शारदा बम्बई पहुँच गयी। वह अपनी उस चमकदार दुनिया में आकर खो गयी। उसके पिता, भाई और अन्य सम्बन्धी अब शारदा का मुँह निहारते थे। शारदा के भाई ने अपना कारोबार बढ़ा लिया था। सबसे अधिक कौतुक और आश्चर्य की बात तो यह हुई कि जिस पति ने उसे परित्यक्त किया, वह भी अब शारदा के सम्पर्क में आने के लिये लालायित था। जब शारदा के पहिले चित्र पर सभी ओर से बधाई के सन्देश मिले, तो उनमें उस पति का भी एक पत्र था। मि० चोपड़ा से शारदा का जो कन्ट्रेक्ट हुआ, वह अब समाप्त हो चुका था। अब वह मुक्त होकर किसी भी कम्पनी से कन्ट्रेक्ट कर सकती थी। उसकी सभी चित्र निर्माताओं को आवश्यकता थी। धानों के सैलाब की तरह धन उसके पास आ रहा था। समय अनुकूल था, तो उसका नाम सभी स्थानों पर प्रचारित था। वह रावराजा जो एक दिन उस शारदा को फिल्म-क्षेत्र में ले गया, दिन-दिन उस सुन्दर तारिका के सम्पर्क में पहुँचता जा रहा था। वह अपने मिशन में सफल था। शारदा का बम्बई में निवास उसी रावराजा का मकान था, जहाँ वह स्वयं भी वर्ष में कई बार आकर ठहरता था।

उन्हीं दिनों बम्बई में एक विशाल कवि सम्मेलन का आयोजन था। शारदा ने अखबार में उन आने वाले कवियों की तालिका पढ़ ली थी, जिसमें मधुकर का भी नाम था। यद्यपि मसूरी से लौटे शारदा को कई मास हो चुके थे, वह मधुकर, शास्त्री और उनसे सम्बन्धित व्यक्तियों को प्रायः भूल चुकी थी, परन्तु जब फिर अखबार द्वारा मधुकर का नाम सामने आया, तो शारदा को लगा कि जैसे सचमुच, इस दुनिया से एक

मधुकर ही ऐसा व्यक्ति है जो उसके जीवन का प्रहरी है। वह एकाएक ही ऐसा अधिकार पा गया है कि जो उससे कुछ भी कह सकता है, किसी रूप में भी उसे देख सकता है। वह चौकीदार है। जिससे शारदा बचना चाहती है, चोरी करना चाहती है। वह मधुकर की दृष्टि में चोर है, अपराधिनी है, उसकी तीखी दृष्टि से बच नहीं सकी है।

फलस्वरूप, शारदा के मन की वह दुःसह स्थिति जब भी आती, तो आँधी के समान, उसे झकझोर जाती । उसके मनःप्रदेश में ऐसी उथल-पुथल उठ जाती, वह शारदा इस प्रकार अव्यवस्थित बन जाती, कि प्रायः अपने आप से अरुचि और घृणा कर बैठती। यद्यपि, ऐसे अवसर पर वह बार-बार कहती थी कि आखिर वह मधुकर उसका कौन है ? उससे क्या सम्बन्ध है, उसका और अपना रास्ता जुदा-जुदा है। किन्तु इतना कह कर भी शारदा की यह विवशता थी कि मधुकर का नाम आते ही उसकी छाती धड़कती, मन काँपता और उसे लगता कि उस मधुकर की तुलना में वह अर्थहीन है, अस्तित्वहीन है। उसके पास पैसा और प्रतिष्ठा का जो ढ़ेर लगा है, वह मधुकर इसे ठुकरा सकता है, इसे तुच्छ मानता है···

और तब एकाएक ही, शारदा का मन चीख उठता — वह मूर्ख है, दुनियादार नहीं है, योगी और पारदर्शक बनने का ढोंग करता है···।

इस प्रकार, उस सुन्दरी शारदा के मन में मधुकर के प्रति घृणा भी थी और उपेक्षा भी और उसके मन के किसी अन्धेरे कोने में छिपा उस मधुकर के लिये अनुराग भी था। उसका रूप भले ही छोटा था, वह शक्ति में भी तुच्छ था, निराधार भी बना था, परन्तु जिस धारणा और आधार पर वह टिका था, जिस चेतना और भावना से भरा था, मानो वह सम्बल शारदा की सम्पत्ति और प्रतिष्ठा से कई योजन बड़ा था। उस अभिसार के प्राणों में भरा शाश्वत सत्य प्रखर तेज भरा था, आलोकित था और अवसर पाते ही, उस वैभव तथा वासना की भट्ठी में जलती हुई शारदा

को कभी भी अवसर पाकर अपनी ओर आकर्षित करता था, प्यार और सदाशयता के साथ निहारने और सम्बोधित करने का भी प्रयत्न करने लगता था।

किन्तु आश्चर्य कि शारदा को यह अच्छा नहीं लगता था। वह मधुकर नाम के व्यक्ति को सदा के लिये भूल जाना पसन्द करती थी। जब भी उसकी सूरत याद आती तो वह जैसे किसी कठिनाई का अनुभव करती और विषम बन जाती। निश्चय ही मन की ऐसी स्थिति रुचिकर नहीं लगती थी। उसमें कड़वाहट और तीखापन था।

लेकिन जब कवि सम्मेलन का दिन आया, तो उससे दो दिन पूर्व वहाँ पर आये रावराजा ने शारदा को टँकोरा—'आज कवि सम्मेलन में चलना है। वह मधुकर भी आया है।'

शारदा ने कहा—'जी, मैं न जा सकूँगी। काम है। एक अन्य जगह पहुँचने का वचन दिया है।'

चकित बन कर रावराजा ने कहा—'तुम्हें कवि सम्मेलन में नहीं जाना है। वह मधुकर आया है तो तब भी ऐसे आयोजन से दूर रहना पसन्द किया है!'

शारदा बोली—'मधुकर से मेरी कोई घनिष्टता नहीं। कोई सम्बन्ध नहीं। उसमें कोई आस्था नहीं।'

रावराजा ने कहा—'हाँ, हाँ, यह तो ठीक है। परन्तु कवि सम्मेलन में तो तुम्हें भी रुचि है। हिन्दी कविता से प्रेम है। मैंने तो तुम्हारा भी टिकिट मँगाया है।'

शारदा ने कहा—'आप जाइएगा। मिस्टर चौपड़ा को ले जाइयेगा' यह कहते हुए शारदा उस कमरे से बाहर निकल गयी। वह अपने कमरे में जाकर काऊच पर गिर गयी। उसके समीप ही एक टेबुल पर एक ईरानी कलाकार के हाथों बनायी मिट्टी की प्रतिमा रखी थी। यह एक युगल जोड़ी थी—प्रेमी और प्रेमिका की स्थिति। दो भावनाएँ एक चित्र में व्यक्त की गयी थी। काऊच पर बैठते ही शारदा को [illegible]

मूर्ति पर गयीं। निश्चय ही वह उसका महत्व पहले भी आँक चुकी थी इसलिये वह एक प्रदर्शनी में पांच सौ रूपये में स्वयं उसने खरीदी थी, किन्तु उस समय, जब उसके मस्तिष्क में रावराजा से सुनी बात झंकृत हो रही थी तो वह उस प्रतिमा को इस प्रकार देखने लगी कि जैसे सचमुच, उस कलाकार ने उस भावना में नारी की जगह स्वयं उसी की शकल उतार दी थी और जो उसमें नर था, वह और कोई नहीं, स्वयं मधुकर था। वह मधुकर ही उस प्रतिमा में खड़ा उसे निहार रहा था, मुसकरा रहा था, वह निश्चय ही अपनी मूक वाणी में कुछ कह रहा था।

यों दिन बीत गया। दीये जल गए। नौकर से शारदा को पता चल गया कि मि० चोपड़ा आये और रावराजा के साथ मोटर में बैठकर चले गये। वे दोनों कवि सम्मेलन गये हैं। रात में देर से लौटने के लिये कह गये हैं।

नौकर चला गया। शारदा फिर अकेली रह गयी। वह कमरे में घूम रही थी। वह दिन ऐसा आया कि वह मन से स्वस्थ नहीं रही। दिन भर ही अशान्त बनी रही। अपने मन का मन्थन करती रही। लेकिन जब नौकर उस कमरे से चला गया, तो शारदा का मन और अधिक वेग से धड़कने लगा। वह जैसे छटपटा उठी। बम्बई के उस लम्बे प्रवास में, उसी दिन उसे ज्ञात हुआ कि उसमें अब भी अभाव है, वह पूर्ण नहीं है। जिस धन-सम्पदा को उसने बड़ा माना, वह उसका सम्बल या आधार नहीं। वह मन की शांति नहीं, चैन नहीं, उसमें शाश्वत भावना नहीं।

शारदा ने अपना कपड़ों का बक्स खोल लिया। उसमें कीमती साड़ियां थीं। ब्लाऊज थे। परन्तु जब वह एक भी साड़ी पसन्द नहीं कर सकी, तो तब एक सफेद, सादी धोती निकाल कर उसने पहनी और उस पर मारवाड़ी नारियों के समान चादर ओढ़ी और नौकर को बुलाकर बोली—'मैं जा रही हूँ। देर में लौटूंगी।'

नौकर ने कहा—'क्या कवि सम्मेलन में ? इसी रूप में ?'

'नहीं ! मुझे काम है, अन्यत्र जाना है। ऐसे जाना क्या बुरा है।' वह चली गयी।

एक विशाल मण्डप में कवि सम्मेलन का आयोजन था। जब शारदा वहाँ जाकर नारी वर्ग की गैलरी में जा बैठी, तो उसे दिखायी दिया कि स्टेज पर बैठे कवियों की पंक्ति में मधुकर भी बैठा है। वह एक कुरता और पजामा पहिने है। सिर के बाल बढ़े हुए और रूखे थे। उस दिन उनमें तेल भी नहीं पड़ा था। उस समय एक कवि माईक पर अपनी कविता सुना रहा था।

प्रस्तुत कवि द्वारा कविता पाठ के बाद संयोजक ने दर्शकों को शान्त बैठने के लिये कहा। उसने कुछ कवियों के नाम लिये और कहा कि ये कवि अभी कविता-पाठ करेंगे, उनमें मधुकर का भी नाम था। लेकिन जब मधुकर का नाम शारदा के कानों में पड़ा, तो सचमुच ही, उसे अपूर्व हर्ष हुआ, उसका दिल फड़क उठा। उसे इस बात का भी सन्तोष था कि किसी दर्शक ने उसे नहीं पहचाना। उसका प्रयत्न सफल रहा। क्योंकि वह इस बात को जानती थी कि यदि कवि सम्मेलन के संयोजक उसके आने की बात पायेंगे, तो तब उसे भी समुचित स्थान पर बैठाना पसन्द करेंगे। और तब अनायास ही मधुकर उसे देख लेगा। वह घृणा करेगा। हो सकता है कि तब वह कविता-पाठ करना भी रोक देगा। यदि कविता पढ़ेगा भी, तो मन से नहीं पढ़ सकेगा।

जब दो-तीन कवि कविता पढ़ चुके, तो तभी मधुकर का नाम लिया गया। उसे सुनते ही, शारदा का दिल धड़का। जैसे कलेजा मुँह को आया। उसके मन का उद्वेग भी उमड़ आया। यद्यपि जहाँ शारदा बैठी थी, वहाँ से स्टेज दूर नहीं थी, परन्तु शारदा की आँखों में एका-एक ही ऐसा अन्धेरा और उद्वेग का भाव उमड़ा कि मधुकर समीप हो कर भी, उसे दूर लग रहा था। अब वह दुर्बल था, कान्तिहीन बना था, किन्तु उसके चेहरे की चमक और आँखों का तीखापन पूर्ववत् था—

वह कविता पढ़ रहा था और उस 'धरा' से जो कविता की नायिका थी, प्रियतमा थी, यह निवेदन और माँग कर रहा था कि वह अपने वक्ष के कपाट खोल दे और धरती पर चलते हुए अपने प्रेमी—पीड़ित इन्सान को उसमें समाविष्ट कर ले। वह अपनी प्रेमिका से यह भी मांग कर रहा था कि उसका प्रेमी एक हो सकता है, परन्तु यह समूचा समाज, देश और उस धरती तथा आसमान के मध्य का जीव मात्र भी उससे दया, प्रेरणा और अनुभूति की माँग करता है। कवि कह रहा था, ए धरा, तू सुन्दर तो बनी, परिधानों से सजी, हीरे-माणिकों से अलंकृत बनी, परन्तु कभी सोचा तूने, इसी प्रकार तो पीड़ित इन्सान का, दुःखी मानव का उपहास किया जाता है · उसके जख्मों पर नमक छिड़का जाता है·· हाय, कैसी विडम्बना है यह, इन्सान ही इन्सान का रोदन, और चीत्कार सुनकर आनन्द लेता है, ठहाका मारता है और आन्दोलित बन इस धरा की छाती को रौंद देना चाहता है ·· ए धरा, बोल, यही दिया तूने ! यही है, तेरा शाश्वत सत्य ! इसी निमित्त है, तेरा यह पावन और सुहावना जोवन ! तूने मोहिनी और जादूगिरनी बनकर इस इन्सान को जीवन नहीं दिया, अपने अन्तराल में भरा विष का घड़ा इस इन्सान के ऊपर उँडेल दिया······

जनता चाहती थी कि मधुकर कवि दूसरी कविता कहे। किन्तु स्वयं मधुकर तत्पर नहीं था। उसने कह दिया कि इस लम्बे सफर में उसका गला खराब हो गया। रास्ते की ठण्ड लग गयी, इसलिये वह अब आगे नहीं बोल सकेगा।

उसी समय शारदा अपने स्थान से उठी और बाहर जाने लगी। तभी उसने एक वालन्टियर को मधुकर के पास भेजा और कहा—'कह देना एक औरत मिलना चाहती है। प्रतीक्षा में खड़ी है।'

वालन्टियर से सन्देश पाते ही मधुकर आया और देखते ही बलात—'अरे तुम शारदा देवी···'

शारदा ने कहा—'जी मैं ··'

मधुकर बोला—'परन्तु तुम इस वेष में···'

शारदा ने कहा—'तुम से मिलने के लिये यही ठीक था।'

मधुकर ने कहा—'तो बैठोगी नहीं बैठो। कविता सुनो।'

शारदा बोली—'मुझे तुम्हारी कविता सुननी थी वह सुन ली श्राओ चलो मैं तुम्हीं से बात करने श्रायी हूँ। तुम तो मेरे पास श्राते नहीं इसलिये मुझ को श्राना पड़ा है।'

उस समय मधुकर की इच्छा थी, उसके मुँह में बात थी कि कह दे वह न जा सकेगा, परन्तु वह कुछ नहीं कह सका। शारदा के साथ चल दिया। दोनों टैक्सी में बैठ गये और कई बाजार पार कर मकान पर जा पहुँचे।

वहाँ जाते ही मधुकर जब शारदा के साथ उसके कमरे में प्रविष्ट हुआ तो उस जगमगाते वैभव को देख, एकाएक मुसकराया —'स्थान सुन्दर है, आँखों को लगता है।'

शारदा ने श्रोढ़ी हुई चदर उतार कर रख दी और कहा—'जी रुपये का यही काम है। वह यही सब कुछ बनाता है।'

बरबस ही मधुकर ने कहा—'हाँ रुपया यही काम करता है। मुझे खुशी है कि तुम सम्पन्न हो, वैभव से पूर्ण।'

शारदा बोली—'पहिले यह बताश्रो खाना खाया ?'

मधुकर ने कहा—'अभी नहीं खाया।'

शारदा ने घन्टी बजायी नौकर आया। वह बोली—'खाना तैयार हो तो ले श्राओ। दो का एक जगह ले श्राश्रो।' नौकर के जाते ही, शारदा ने मधुकर की ओर देखा—'मुझे पता है कि तुम मेरा यह वैभव देखकर प्रसन्न नहीं हो। इसलिये मेरे प्रति - '

मधुकर बोला—'देखिये शारदाजी यह विवाद का विषय नहीं, रुचि की बात है। इस दुनिया में सभी के अपने-अपने रास्ते हैं। यह भी तो हो सकता है कि तुम्हें मेरा चलन पसन्द न हो।'

किन्तु शारदा मधुकर की उन बात से तुष्ट नहीं हुई। वह विवाद

करना चाहती थी और लगा कि मधुकर उससे बचना पसन्द करता था, इसलिये शारदा ने सहज ही समझ लिया कि इस मधुकर के मन का फोड़ा सूजा है, उसमें मवाद भरा है और उसका कारण कुछ और हो या नहीं वह स्वयं जरूर है। यह मधुकर अब उससे कोसों दूर खड़ा है, मन से दूर हो गया है ···· ···

२४

फलस्वरूप, उस रात मधुकर अपने ठिकाने पर नहीं जा सका। शारदा ने उसे नहीं जाने दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि मधुकर जिस विवाद से बचना चाहता था, उसमें उसे पड़ना पड़ा। जब शारदा ने अपने प्रति उसकी उपेक्षा का कारण पूछा, तो उसने कहा—'शारदाजी अब मेरी उपेक्षा के कारण का कोई महत्व नहीं। तुम शारदीय शोभा से अलंकृत हो, रुपया प्राप्त कर रही हो।' वह कहने लगा—'किन्तु मैं आज तक नहीं समझा कि नारी अपने शरीर का प्रदर्शन करके जिस रुपये को बढ़ाती है, वह कैसे ग्राह्य है। निश्चय ही, मैं इसे स्वीकार नहीं कर सकता।'

शारदा ने कहा—'तो तुम इसे शरीर का प्रदर्शन कहते हो ?'

मधुकर बोला—'यही क्यों मैं इसे शरीर का बेचना भी मानता हूँ। किसी युग में यह कार्य वेश्याएँ करती थीं, अब घर-ललनाएँ करती हैं सिनेमा के परदे पर जो नारी के प्रदर्शन होते हैं उन्हे मैं भी देख चुका हूँ।

उसने कहा—'मैंने तुम्हारे वह चित्र देखे हैं कि जिनमें तुम्हारा शरीर समूचा नहीं तो अर्धनग्न अवश्य रहा। अनुभव करता हूँ कि चित्र के मालिक ने प्रचुर धन प्राप्त किया होगा। उसने समाज की वासना-सिक्त भावना को भी उभार दिया होगा।'

उस समय शारदा अतिशय कठोर थी विषम और मधुकर के समान गम्भीर थी। उसी अवस्था में बोली—'यह सब मुझ से शास्त्रीने कहा था।'

मधुकर बोला—'कोई भी विवेकशील यही कहेगा।' वह कहने लगा—'मैं इस चित्र व्यवसाय के क्षेत्र से परिचित हूँ। मेरे कई मित्र चित्र निर्माता हैं। उन्होंने मुझे निमन्त्रण दिया है। बुलाया है। आज भी मैं एक ऐसे ही व्यक्ति के घर ठहरा हूँ। उसने कहा 'किन्तु मेरे वे मित्र जो एक दिन सचमुच ही निर्धन थे याचक थे, आज धन पति हैं, लाखों के मालिक हैं। उनके पास बढ़िया मोटरें हैं। बंगले हैं। उन्होंने विविध प्रकार की सुन्दरियों से सम्पर्क स्थापित किया हुआ है वे रेस खेलते हैं। शराब पीते हैं।' वह बोला—'शारदा देवी सभी आज समाज के सांप हैं। मानवता का चरित्र डसते हैं। उनकी दुनिया दूसरी है। अब वे सब नये लोक की कल्पना करते हैं। बताओ देश, समाज और व्यक्ति को उन से क्या मिला है, अभिशाप-सड़ांद और पाप······'

'ओहो, तुम मधुकर बाबू इतने प्रतिक्रिया वादी हो।' शारदा ने कहा—'तुम अपने अनुरूप ही सबको देखना चाहते हो। तुम देश और समाज को उठने नहीं देना चाहते हो पुरातन पंथी हो इन्सान को अन्धेरे में पड़ा देखना ही पसन्द करते हो।'

मधुकर ने कहा— 'निश्चय ही इस समय तुम्हें मेरी बात मन्द नहीं लगेगी। मान्य भी नहीं है।' वह बोला—'परन्तु मेरा अपना मत है कि समय और परिस्थिति बड़ी शानवान है, उसमें चेतना है, वह [illegible] बता देती है।'

शारदा ने मुस्करा कर कहा—'मैं उसका स्वागत करूँगी

मधुकर ने कहा—'अजीब बात है कि जिस नारी के प्रति पति ने और अन्य स्वजनों ने उपेक्षा दिखायी, उसे तिरस्कृत किया, अब वे ही सब लोग आत्मीयता का नारा लगाते हैं। कभी इस पर विचार किया तुमने।'

शारदा बोली—'इसमें सोचना क्या, अब वे सब मुझ से अपना स्वार्थ पूरा हुआ देखते है।'

'हां यही तो।' मधुकर ने कहा—'देखिये जो लोग धर्म और नैतिकता का राग अलाप कर तुम्हें त्यक्त कर बैठे थे, अब वे उसे भूल बैठे हैं। उनकी दृष्टि में किसी का भी महत्व नहीं। धर्म मान्य नहीं क्योंकि अब तुम प्रसिद्ध तारिका हो, प्रचुर धन उपार्जित करती हो।' वह एकाएक मुसकराया—'अजीब संसार है यह।'

शारदा ने अपनी वाणी पर बल दिया— 'लेकिन तुम तो इसे अस्तित्वहीन समझते हो!'

मधुकर बोला—'हां, बिलकुल ऐसा ही है मैं मूर्ख हूं, तुम्हारी दृष्टि में अव्यावहारिक।' उसने कहा—'मैं सामने बैठी सुन्दर तारिका को यह बताना अपना कर्तव्य मानता हूं कि वह अब भी अन्धेरे में है। अपने पथ से भटक गयी है। लगता है कि इस रूपहली दुनिया में आकर खो चुकी है। और जिसे यह तारिका सुख और जीवन की चरमोत्कृष्ट सफलता मानती है, मेरी दृष्टि में यही असफलता है। अंगारों से भरा पथ है कि जहां मृत्यु को छोड़ और कुछ नहीं है। यहां पुरुष और नारी का साथ-साथ पतन होता है।'

एकाएक ठहाका मार कर शारदा ने हंस दिया और कहा—'तो अब समझी मैं कि तुम्हारा जीवन के प्रति माप दण्ड अभी अधूरा है, संकुचित है।'

जल्दी से जैसे आतुर बनकर मधुकर ने कहा—'हां अभी अधूरा है। मैं इस जीवन को पाठशाल मानता हूं। अपने को विद्यार्थी समझता हूं, तुम्हारे समान पूर्णता का दम्भ करने की स्थिति में नहीं हूं।'

किन्तु उसे अगले दिन आने का वचन देकर भी मधुकर वहाँ नहीं आया वह शारदा से बिना मिले ही, उस नगर को छोड़ गया। बाद में उसने पत्र दिया और लिखा, 'आने का कोई अर्थ नहीं था। केवल कुछ समय तुम्हारे शानदार कमरे में बैठ जाता और स्वादिष्ट फल-मिठाई खा जाता। अब हमारे दृष्टिकोण में अन्तर आ गया है। एक पथ के राही दो रास्तों पर बढ़ गये हैं। इसलिये दोनों ही दो दुनिया की कल्पना करते हैं। मैं इस पत्र से केवल इतना ही कह सकता हूँ कि जिस कगार पर तुम खड़ी हो, वह रेतीला है, वहाँ फिसलन भी है और नदी का पानी गहरा है। इसलिये बुद्धि का सन्तुलन न खो बैठना, इसीकी मुझे आशंका है।'

शारदा ने पत्र पढ़ा और उपेक्षा के साथ पटक दिया। उसने बरबस ही समझ लिया कि वह जिस मधुकर को पकड़ना चाहती थी, अपना बनाना पसन्द करती थी, वह उसका नहीं बनेगा। और इतनी उसमें क्षमता नहीं थी कि उन कारणों को देखे कि अन्ततः उस मधुकर के मन का ही हाहाकार क्यों है! उसे सुन्दर नारी और उसके पैसे से विराग क्यों! जो हो, एकाएक ही, शारदा के समक्ष जब पुनः मधुकर का नाम आया, वह सशरीर दिखायी दिया। तो तब भी, जब वह उसे नहीं पा सकी, तो अन्तर्मुखी बन, वह पुनः उस मधुकर को ऐसे भूल बैठी कि जैसे, उस नाम का व्यक्ति कभी उससे परिचित हुआ था। उसके स्नेह का पात्र बना था।

दिन बीते। मास बीते और वर्ष बीत गया कि न मधुकर ने फिर उस शारदा को पत्र लिखा और न ही शारदा ने उसे पुनः खोजने और ढूढ़ने का प्रयत्न किया।

उधर मधुकर कवि अपने काव्यलोक में विचरण कर रहा था। वह मानव की पीड़ा, व्यथा को अपनी कविता की लड़ियों में पिरोकर जिस प्रकार समाज के समक्ष रख रहा था, उसने वह प्रतिष्ठा और जनता का स्नेह दिन-दिन अर्जित करता जा रहा था। मधुकर का नाम सभी

शास्त्री ने कहा—'आज कहता हूँ तुमसे कि यही मेरी बीमारी का कारण है। उस नारी ने जितना बड़ा दुष्कर्म मेरे साथ किया, मैं उसे भुला बैठा था। उसे क्षमा कर दिया था। वह आती, तो मैं उससे कुछ न कहता। जो कुछ मेरे पास था, उसे सौंप देता। अब मुझे कलक है, दुःख है कि मैं उसे आत्म-हत्या सरीखा जघन्य कर्म करने से नहीं रोक सका। मैं अपनी इतनी उदारता दिखा पाता, तो सुख अनुभव करता।'

साँस छोड़ कर मधुकर बोला—'उस नारी ने जो कुछ किया, उसका परिणाम यही था। उसे इसी प्रकार मरना था।'

शास्त्री ने कहा —'लेकिन रोग का उपचार यह नहीं, यह पश्चात्ताप की परिणति नहीं। यह तो दुर्बलता का द्योतक है।'

कड़ुवे भाव से मधुकर मुस्कराया—'शास्त्री महाराज, अनैतिकता और अविवेक का प्रदर्शन करना भी मानसिक दुर्बलता है। जब आदमी थक जाता है, रास्ते से भटक जाता है और अंधेरे में खो जाता है, तो तभी, वह आत्म-हत्या का आश्रय लेता है। वह तब इसी प्रकार शांति पाना चाहता है।'

लेकिन मधुकर को आशा नहीं थी कि शास्त्री इतनी जल्दी चला जायगा। उक्त वार्ता के दूसरे दिन ही उसका देहावसान हो गया।

२५

यों मधुकर को जीवन में एक मधुर और प्रौढ़ विचारों का व्यक्ति मिला और सहज हो चला गया। मधुकर को लगा कि जैसे वह अकेला रह गया। क्योंकि शास्त्री द्वारा प्रदत्त सहानुभूति और अपने तईं संवेदना को पाकर उसने अनुभव किया था कि वह प्रौढ़ विचारों का व्यक्ति उसका सब से बड़ा आधार था और सलाहकार भी था, जिस कृपाराम मुनीम से उसे मकान प्राप्त हुआ, तो उसको दान कर देने की बात सर्वप्रथम शास्त्री ने ही मधुकर को सुझाई थी। कदाचित् मधुकर से उस शास्त्री ने ही पहिले पहिल यह कहा था कि लोग धन-सम्पदा को बहुत बड़ा स्थान देते हैं, परन्तु जीवन में उसकी उपयोगिता हो सकती है, इसका श्रेष्ठ स्थान नहीं। मनुष्य भला हो, विचारवान हो तो अपना गुजारा कर सकता है। यह मत भी शास्त्री ने व्यक्त किया कि अधिक धन मनुष्य में प्रमाद और जीवन के प्रति आस्था पैदा करता है। समाज से दूर करता है। मानवता और धर्म भाव भी पृथक् हो जाता है।

यद्यपि इस प्रकार की कल्पना स्वयं मधुकर भी करता था। परन्तु धन से जीवन के सभी काम चलते हैं इतना वह नहीं भूल सकता था किन्तु जब उसने मुनीम कृपाराम को अनायास ही मरते देखा। जीवन-भर धन सञ्चय और उसकी कल्पना में निरत देखा तो तब उसी धन सम्पदा को यों बखेरकर जाते पाकर इतना मधुकर के भी मन में आया कि जिस वस्तु की प्राप्ति के लिये

मनुष्य मानवता का खून करता है, अपने मानस का शाश्वत और अमर सत्य भुला देता है वही वस्तु—धन—उसके लिये अन्तिम समय पर विरक्ति और बोझ का कारण बन जाता है। मानो वही उसके जीवन का अभिशाप हो जाता है।

इस प्रकार शास्त्री गया तो मधुकर वहीं का वहीं रह गया। उसने धर्मशाला को अपना स्थायी स्थान बना लिया। उस पहाड़ी क्षेत्र में रहना मधुकर के लिये सुख का विषय था। वह शान्त स्थान था। किन्तु जैसे स्वयं मधुकर को जीवन में शान्त और स्थिर नहीं रहना था मानो नयी-नयी परेशानियों और झंझटों को पाना वह स्वयं पसन्द करता था। अभी शास्त्री कुन्दनलाल का अभाव ठीक से नहीं भरा था कि तभी वह एक और नये विवाद में पड़ गया, उन दिनों वृद्ध हलधर की गति-विधि अधिक बढ़ गयी थी। स्थिति यह थी कि वह मनुष्य ज्यों-ज्यों आयु से वृद्ध होता जा रहा था, त्यों-त्यों ही उसमें चेतना फूटती जा रही थी, मानों उस पुराने जीवन में नयी कोंपले निकलती आ रही थी। विविध प्रकार की शाखाएँ फूट रही थीं। सचाई यह थी कि जिस प्रकार की चेतना हलधर में प्रस्फुटित हो रही थी, वह सभी के लिये अप्रत्याशित और अकल्पित थी। मानो उसमें कोई अलौकिक देव आकर बैठ गया था, जो उसका आवाहन कर रहा था। जिस व्यक्ति को कभी भी किसी ने विशिष्ट भाव से नहीं देखा, उसमें ऐसा कुछ नहीं पाया कि वह बात करने योग्य हो, पूजा के योग्य हो, वही अब लोगों की श्रद्धा और आदर का पात्र बना था। वह जिस प्रकार रहस्यपूर्ण बनकर उद्घाटित हुआ, वह निःसन्देह, परम कल्पना और आश्चर्य का विषय था।

किन्तु वही हलधर फिर एकाएक झंझावात में पड़ गया। उसका मानसिक सन्तुलन जाता रहा। मानों एक बार फिर उसके समक्ष परीक्षा काल आ उपस्थित हुआ हो। बात यह हुई कि कई वर्ष बाद एकाएक ही उसकी लड़की का पता चल गया। गांव के लोगों ने उस

आदमी को भी पकड़ लिया और गिरफ्तार करा दिया। लेकिन जब लड़की गाँव में लायी गयी तो हलधर का उसने बांधना तो दूर वह उसे आँख उठा कर भी नहीं देख सका। और जब पुलिस ने उसके बयान लिये तो वह यह भी स्वीकार नहीं कर सका कि जिस व्यक्ति का पुलिस ने पकड़ा है वह उसकी लड़की का चोर है। उसने साफ कह दिया कि वह उस व्यक्ति के प्रति ऐसा मन नहीं रखता।

इसका परिणाम फिर विपरीत पड़ा। लोगों ने अनायास समझ लिया कि या तो हलधर डर गया या उस अपराधी व्यक्ति ने उसे कुछ रुपया दे दिया। किन्तु हलधर तब भी चकित नहीं हुआ कि लोगों ने यह बात उसके मुँह पर भी कह दी। उसे धिक्कारा। अवस्था यहाँ तक पहुँची कि कुछ ने उसे गाँव से चले जाने तक को कहा। लेकिन मानों हलधर सभी ओर से उदासीन था। लड़की जिस प्रकार आयी उसी प्रकार लौट गयी। वह उस व्यक्ति के साथ जाने को उद्यत हो गयी। परन्तु उसी समय एक नयी विषम अवस्था यह पैदा हुई कि गाँव के लोगों ने लड़की को नहीं जाने दिया। उस आदमी को सुना कर कह दिया कि पुलिस से तो वह छूट गया किन्तु यदि गाँव की तरफ आया तो उसे समाप्त कर दिया जायगा - टुकड़े करके नदी में बहा दिया जायगा।'

इसका फल यह हुआ कि हलधर मुँह से तो कुछ नहीं कह सका परन्तु उसने अन्न-जल त्याग दिया। एक-एक कर जब कई दिन निकले तो बात समूचे गाँव में फैल गयी। यह समाचार नगर में मधुकर के पास भी गया। एक दिन जब वह उस गाँव में पहुँचा तो देखा कि मन्दिर के चबूतरे पर हलधर पड़ा है। कुछ और व्यक्ति भी उसके पास थे। हलधर अपेक्षाकृत अशक्त है। बोलने में भी दुर्बलता अनुभव करता है। जब लोगों ने मधुकर का आना सुना तो कुछ और लोग वहाँ सिमट आये। मधुकर ने उन सभी को सुनाकर कहा—'तुमने इस बाबा को नहीं पहचाना।'

तुला है। गाँव के सिर हत्या देना चाहता है।'

मधुकर ने इतनी भारी और कड़वी बात सुनी तो तैश में आ गया। वह लाल बनकर बोला—'तुमने यही कहना सीखा है। तुम्हें यही आता है। यदि कोई तुम्हें आदमी बनने की बात कहे, तो इस गुर्राने को छोड़ और तुम से क्या कहा जा सकता है।'

उस व्यक्ति ने कहा—'बाबू जी इस बाबा, की लड़की समूचे गाँव की भी कुछ लगती है। उस लड़की ने गाँव की नाक काट ली है।'

तेज स्वर में मधुकर बोला—'देखता तो हूँ कि तुम्हारी नाक बहुत बड़ी है।' उसने आगे कहा—'तुम्हारी नाक है कहाँ! वह पहले ही कट चुक है। तुम्हारी गरीबी ने काट दी है, कभी सोचा था कि ऐसे कितने आदमी हैं इन पहाड़ के गाँवों में जो गरीबी का प्रहार सहकर भी अपनी रक्षा करते हैं। बहन-बेटियों की आबरू बचा पाते हैं। आज एक लड़की ने स्वयं रास्ता ढूंडा तो तुम्हारी नाक कट गई है,—मूर्ख'

बात ऊँची थी तो स्पष्ट भी थी, सुनकर जैसे सभी की गर्दन झुक गयी।

मधुकर बोला—'तुम्हारी यह भी अजीब बात है कि लड़की से तो कुछ कहा नहीं उस आदमी से कहते हो कि जिसके साथ वह गयी थी।'

एक दूसरा व्यक्ति बोला—'बाबू, आदमी ही औरत को अन्धेरे में फेंकता है!'

मधुकर ने क्रुद्ध बनकर कहा—'यह गलत है। अपने पाप पर पर्दा डालना है। मैं कहता हूँ पाप तुम्हारी लड़की का है।' वह बोला—'तनिक सोचो तो जिस लड़की को बाबा ने प्यार से पाला-पोसा, बड़ी किया। वही, वृद्ध को बीच रास्ते पर छोड कर भाग गयी। मैं कहता हूँ कि औरत की जात सिपाली है, कौआ है। उसे आँख बदलते देर नहीं लगती।'

एक प्रौढ़ ने सिर हिलाकर कहा—'बाबू ठीक कहता है।'

दूसरा बोला—'अनुभव है।'

तीसरे ने कहा—'जमाना देखा है, बुद्धिमान है।'

एक बोला—'तब बाबा रोटी क्यों नहीं खाता।'

मधुकर ने कहा—'उस आदमी को बुलाओ और अब सम्मान के साथ लड़की उसके साथ कर दो।'

दूसरे ने कहा—'बाबू अब लड़की उसके साथ नही जायेगी।'

तीसरा बोला—'वह आदमी नही आयेगा।'

चौथे ने कहा—'वह लड़की को नहीं रखेगा।'

मधुकर ने कहा—'राम-राम तुमने लड़की का जीवन बिगाड़ दिया। धोबी का कुत्ता घर का रहा न घाट का। बोलो, अब उसे कहाँ ठिकाना मिलेगा।' यह कहते हुए मधुकर ने हलधर की ओर देखा और बोला—'बाबा इस भगवान के लिये जीवन को मत मारो भोजन करो।'

हलधर ने धीमे स्वर से कहा—'बाबू मैं लड़की के लिये भूखा नहीं रहा। इस गाँव की मूर्खता को देखकर कुढ़ता हूँ। अब किसी से कुछ कहने की शक्ति नहीं रखता। स्वयं ही आत्म-शुद्धि की बात सोचता हूँ। इस प्रकार मैं मरने की कामना करता हूँ।'

मधुकर ने कहा—'नही, नहीं यह गलत है। जीवन का पोषण करो जब अब तक तुमने गाँव का जहर पीने का प्रयत्न किया तो अब भी उसी रास्ते को ग्रहण करो।

हलधर ने कहा—बाबू मैं अब उस लड़की से भी घृणा करता हूँ।'

मधुकर मुसकराया—'बाबा इसकी कोई सीमा नहीं। भला ऐसा क्यों करते हो। जब लड़की पर यौवन आया तो उसे उसकी पुकार सुननी थी। उस अवस्था मे वह तुम्हारी ओर नही देख सकती थी यह उसके स्वार्थ की बात थी। स्वाभाविक थी भी। सभी के समान वह भी यौवन के झंझावात मे अन्धी बन गयी थी। अब उसे क्षमा करो वह जिस रास्ते पर जाती है जाने दो।'

एक व्यक्ति बोला—'बाबू क्या कहते हो। क्या ऐसे परम्परा रहेगी। धर्म रहेगा।'

मधुकर ने फिर अपने स्वर मे तेजी लाकर कहा—'तुम [illegible] धर्म

और परम्परा की बात कहते हो वह कभी नहीं रहा । जब समय आया तो पुरुष के समान नारी ने भी उसे लाँघ जाने और भुला देने का विचार किया । परिस्थिति का सभी को शिकार बनना पड़ा ।'

दूसरे ने कहा---'ऐसे तो वर्ण-संकरता फैलेगी । पाप और व्यभिचार ही सर्वत्र दिखायी देगा ।'

मधुकर कड़ुवे भाव से मुसकराया— 'तो अब क्या है ? क्या पुण्य और धर्म दिखायी देता है तुम सब को !' वह बोला—'तुम सब वर्ण-संकर हो, मैं भी वही हूँ । कुछ पता नहीं कि हमारा निकास कहाँ से हुआ हम केवल मनुष्य हैं बस स्त्री और पुरुष के योग से हमारी उत्पत्ति हुई है ।'

एक बूढ़ी औरत ने कहा— 'बाबू अजीब बात है तुम्हारी ? जिसका सिर न पैर ।'

मधुकर ने कहा— 'हाँ,मैं तुम्हारे मन की बात नहीं कह सकता ।' वह बोला—'हाँ पर इतना और सुनलो तुम यदि अब भी अन्धेरे में रहे । तो और अधिक मूर्ख बनोगे । तुमने इस जीवन में आकर कुछ नहीं पाया तुम्हारा न दीन रहा न ईमान । वह नित्य बिकता है, नित्य छला जाता है, बोलो, यह भी झूठ कहा मैंने !'

एक व्यक्ति बोला --'ठीक है, बाबू !'

मधुकर ने कहा—'तुमने न आत्मिक उन्नति की न शारीरिक । बोलो, क्या पाया तुमने ! तुम्हारे पास पैसा होता, तो तुम भी मोटे-ताजे और बलवान होते । सुन्दर लगते । चरित्र होता, तो मन से पुष्ट दिखायी देते । पर तुम्हारे पास कुछ भी नहीं । इसीलिये न कि तुम अन्धेरे में पड़े रहे । अपने विचारों को नहीं फैला सके ।'

हलधर ने कहा —'बाबू, गाँव के लोग उस आदमी को मार देना चाहते हैं । पर उससे पूर्व मैं मर जाना पसन्द करता हूँ । ऐसा अनाचार मैं नहीं देख सकता ।'

मधुकर ने कहा—'ठीक है, तुम्हें यही सोचना चाहिये ।'

एक व्यक्ति ने कहा—'बाबू, हम कुछ भी नहीं करना चाहते ।'

हलधर ने कहा—'मुझे पता है। मैंने इन सभी के दिलों को समझा है।'

उसी समय मधुकर खड़ा हो गया और हलधर की लड़की से मिलने के लिये उसके पास गया। जाकर देखा कि लड़की जवान थी, यौवन की भरी दोपहरी में खड़ी थी। गाँव में जो युद्ध हो रहा था, उसकी छाया लड़की के मुँह पर भी थी। जाते ही, मधुकर ने प्रश्न किया—'तो तुम उस आदमी के साथ जाओगी? उसे अब पा सकोगी?'

लड़की बोली—'अब वह मुझे नहीं रखेगा।'

मधुकर ने कहा—'इसलिये कि लोग उसे मार देने की बात कह चुके हैं।'

लड़की का नाम वसन्ती था, बोली—'जी, अब वह मुझसे भी भय करेगा।'

'तो वह कायर है! बुजदिल है!' मधुकर ने कहा—'तब तुमने ऐसे आदमी का साथ क्यों किया?'

वसन्ती बोली—'जो बात पहले थी, वह अब नहीं। वह अब दूसरी औरत ले आयेगा। उसके पास पैसा है। औरत खरीद सकेगा!'

'ओह! ऐसा भयंकर आदमी है, वह!' एकाएक कठोर बनकर मधुकर ने कहा—'वह औरत का पैसे से मोल करता है कमीना है, कसाई है!'

वसन्ती ने मधुकर की ओर मुँह उठा के देखा और नतमुख हो अपना मुँह फेर लिया।

किन्तु मधुकर बोला—'और तुम्हें दूसरा आदमी मिले तो—?' उसने आगे कहा—'हाँ, बोलो, तुम दूसरे आदमी के साथ जाना पसन्द करोगी?'

वसन्ती ने कहा—'बाबू, जानते तो हो कि औरत भाग्य है'

है, इसे अपना गुजारा करने के लिये किसी भी खूँटे से बँधना है।'

मधुकर ने कहा—'वसन्ती, गाय मत बनो, औरत बनो, अपने मन की भावना और भगवान को समझो। अपने तई निर्दय बनना मत सीखो।'

वसन्ती ने साँस भर कर कहा—'मैं विवश हूँ। यही कहना सीखी हूँ।'

मधुकर बोला—'नहीं, तुम बहुत कुछ सीखी हो। तुम अपने पिता को मारना जानती हो। तुम इस बात को भूल चुकी हो कि तुम्हारा अपने बूढ़े बाप के प्रति भी कोई कर्त्तव्य था। उसकी सेवा करना तुम्हारा धर्म था। पर तुमने न केवल अपने को छला, अपने बाप को छल लिया। उसका जीवन बिगाड़ दिया। उसे गाँव भर की दृष्टि में उपेक्षा और उपहास का पात्र बना दिया। सहज ही आँधी के एक ही झोंके में उड़ कर ही, तुमने इस बात को भुला दिया कि तुम यदि भली बनकर रहतीं, तो तुम्हारा पिता सम्मान के साथ तुम्हें ससुराल भेजता। तुम्हें समूचे समाज का आशीष पाने का अवसर देता। पर अब क्या, तुमने दीन बिगाड़ा, ईमान बिगाड़ा!'

एकाएक कातर होकर वसन्ती बोली—'मेरा यही अपराध था। मैं अधीर बन गयी, मैं मूर्ख।' यह कहते हुए वह रो पड़ी।

मधुकर जैसे अनजाने ही कठोर बात कह गया था, इसलिये वह तुरन्त ही सहानुभूति के स्वर में बोला—'चिन्ता मत करो। तुमने अपनी भूल मान ली, वास्तविकता पहचान ली, यही बहुत है। मैं तुम्हारा पक्ष लूँगा। तुम्हें सम्मान के साथ किसी अच्छे घर भिजवाने का प्रयत्न करूँगा।' यह कहते हुए मधुकर उठा और फिर मन्दिर पर पहुँच गया। देखा कि उस समय कुछ और व्यक्ति वहाँ आ गये थे। मुखिया भी आ गया। इन सभी को लक्ष्य कर मधुकर ने कहा—'आप सब वसन्ती के साथ न्याय कीजिये। उसने जो कुछ किया, उसे भूल जाइये।

अब उसका विवाह कर दीजिये !'

एक व्यक्ति ने कहा—"विवाह, राम-राम ! कौन करेगा !'

मधुकर ने कहा—'तुम लोग करोगे, तो हो जायेगा। रुपया मैं दूँगा। इस बाबा हलधर की जो जमीन है, उसे भी दान में दिलवा दूँगा। सुना, मुखिया ! यह काम तुम्हारा है । पुण्य का काम है !'

मुखिया ने बात सुनी, तो फिर सिर झुका लिया, वह अपना मन नहीं दे सका, न हाँ कर सका, न ना कर सका। और मधुकर अपनी बात कहने के साथ हलधर की ओर बढ़ गया । उसके पास बैठ गया।

२६

प्रतिष्ठा और सफलता-प्राप्ति किसी की बपौती नहीं। मधुकर का एक महाकाव्य प्रकाशित हुआ। देश के सभी पत्रों में उसका उल्लेख किया गया। यह समाचार शारदा के कानों तक भी पहुँच गया । एक दिन वह बाजार गयी और वह महाकाव्य खरीद लायी । शारदा ने कल्पना की थी कि वह काव्य किसी युग-धर्म या पौराणिक महापुरुष पर लिखा गया होगा, परन्तु वह नर और नारी को इंगित करके लिखा गया था। उसमें दोनों के सांस्कृतिक, सामाजिक और आत्मा-त्मिक जीवन का उल्लेख था। उसी समय शारदा ने पत्रों द्वारा यह समाचार भी पढ़ा कि राष्ट्र के महामहिम राष्ट्रपति द्वारा उस

इसीलिये मैं तुम्हें बम्बई लाया। हर्ष का विषय है कि मेरा उद्देश्य सफल हुआ। मैं तुम्हें प्रतिष्ठित और सफल देखना चाहता था। वह अब देखता हूँ। आज तक मैंने कुछ नहीं कहा। पूजा करता रहा। पर आज देवी से वरदान माँगने आया हूँ, अपने मन की बात '

शारदा ने कहा—'रावराजा साहब, आपने जो कुछ किया, उसके प्रति आभारी हूँ। आपके द्वारा मैं नहीं बनी हूँ, नित नये अभिनय करती हूँ। परन्तु देखती हूँ, आपका अभिनय अधिक श्रेष्ठ है। दर्शकों के लिये कौतुक और दर्शनीय बन सकता है। और मैं तो ऐसे अभिनय अनेक बार कर चुकी हूँ, विश्वास कीजिये, मैंने उसमें पैसा पाया, प्राण नहीं पाया। इसलिये आप यहाँ से जाइये, मैं आपकी प्रेयसी नहीं बन सकती। ऐसी कल्पना भी नहीं कर सकती।' यह कहते हुए शारदा ने पलंग छोड़ दिया। वह खड़ी हो गयी। उसकी आँखें चढ़ गयीं। माथे में बल पड़ गये। वह एकाएक ही निर्मम और पत्थर के सदृश बन गयी।

उसी समय रावराजा भी खड़ा हो गया। शारदा की सीधी और स्पष्ट बात सुनी, तो वह भी कठोर बन गया। उसने शारदा के समक्ष जाकर कहा—'शारदा देवी, इस रावराजा ने झुकना नहीं सीखा, झुकाना सीखा है। आज जितना तुमसे कहा, कल्पना नहीं की थी कि इतना कहना पड़ेगा। परन्तु तुमने इतना सुनकर भी निर्मम बनना पसन्द किया, भला यह क्या तुम्हारे लिये शोभनीय रहा। मैं, मेरी सम्पत्ति सभी तुम्हारे समक्ष समर्पित है। तुम मेरा प्रस्ताव स्वीकार करो। इस जीवन को और अधिक उजागर बनाने का मार्ग प्रशस्त करो, शारदा जी।'

शारदा बोली—'मेरे पास एक ही बात है [illegible] से तुरन्त चले जायें।' उसने कहा—'मैं परिचित हूँ [illegible] जीवन में

क नारियों को भ्रष्ट किया है। यह फिल्म व्यवसाय ही उसी दृश्य की पूर्ति का माध्यम रहा है। वह अपने स्वर में रोष कर बोली—'मैंने सुन लिया है कि आपने उन नारियों का जीवन नष्ट कर दिया कि जिन्होंने आपकी इस आसुरी और अमानुष आकांक्षा का पृष्ठ-पोषण नहीं किया। किन्तु मैं ऐसे व्यक्ति र थूकती हूँ। उसे नर नहीं, नर-पशु मानती हूँ।' यह कहते ए ही शारदा ने स्वतः ही कमरा छोड़ दिया। वह बाहर छज्जे में जा ड़ी हुई।

उसके पीछे ही रावराजा उस कमरे से निकल गया। वह फुत्कार रते हुए सर्प के समान जब अपने कमरे में पहुँचा तो उस समय प्रातः चार बजा था। उस रात का समय रावराजा ने जिस चिन्तन और शा-निराशा के मध्य काटा, वह सचमुच ही असहनीय था, उसके लिये दुर्बोध।

संघर्ष आरम्भ हो गया। शारदा ने दिन निकलते ही जो प्रथम काम सम्पादित किया, वह यह था कि उसने रावराजा का मकान छोड़ दिया। वह अपनी एक साथिन के घर पहुँच गयी। उसने पुलिस को लिखकर दे दिया कि उसे अपने प्राणों का भय है और उसे रावराजा के प्रति सन्देह है। इसका फल यह हुआ कि पुलिस ने रावराजा से सम्पर्क स्थापित किया और उनसे लिखित बयान ले लिया गया कि शारदा देवी (मिस दुलारी) के प्रति उन्हें कोई प्रयोजन नहीं होगा।

किन्तु इस प्रकार का लिखित बयान देना और स्वयं शारदा से अपमानित बनना रावराजा को कदापि सहन नहीं था। वह उसके स्वभाव के विपरीत था। उसकी सबसे बड़ी हानि यह हुई कि शारदा ने उस कम्पनी से भी सम्बन्ध विच्छेद कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि एक प्रसिद्ध तारिका जो उस कम्पनी को उपलब्ध थी, अब सम्बन्ध तोड़ बैठी, तो आर्थिक दृष्टि से भी उस प्रतिष्ठान को घाटा रहा।

एकाएक ही, उसका सभी कार्यक्रम नष्ट हो गया। इस बात को लेकर ही कम्पनी के डायरेक्टरों में मतभेद उत्पन्न हुआ और रावराजा को उसके भागीदारों से पृथक कर दिया गया।

किन्तु इसके विपरीत स्वयं शारदा की मनःस्थिति उस समय अजीब थी। वह जीवन के ऐसे निर्बल कँगूरे पर खड़ी थी कि जो केवल बालू पर आधारित था, निर्बल था, नदी के एक ही सैलाब में नष्ट हो सकता था। इसलिये वह अशान्त थी, अपने प्रति विषम और निर्मम बनी थी। यद्यपि उसके समक्ष आर्थिक कठिनाई का प्रश्न नहीं था, अन्य कम्पनियाँ उसे आमन्त्रित कर रही थीं, परन्तु शारदा इस निश्चय पर पहुँचने में असमर्थ थी, कठिनाई अनुभव करती थी कि वह फिल्म क्षेत्र से अलग हो जाये अथवा उसी में रहकर अपना शेष जीवन बिताने के लिये आगे बढ़ जाये। यह निश्चित था कि शारदा ने जिस गौरव और प्रतिष्ठा को प्राप्त कर लिया था, उसके समक्ष वह त्याग करना उसे प्रिय नहीं था। परन्तु जब एकाएक रावराजा ने उस पर कुदृष्टि डाली, तो उसने स्पष्ट देखा कि वहाँ उस धरती पर वैसे ही लोग अधिक थे, नारी के लोभी और भूखे!

संयोग की बात कि उसी समय एकाएक बहुत दिन के बाद शारदा को मधुकर का ध्यान आया। उसे लगा कि वह युवक, वह वीतरागी और संन्यासी, स्वयं शारदा का समर्पण पाकर भी उसे स्वीकार नहीं कर सका। मानो उसे नारी की चाह नहीं, भूख नहीं। तभी उसने आतुर बनकर चाहा कि वह मधुकर फिर उसके समक्ष आये, वह उसे दिखायी दे तो एक बार फिर वह अपना दम्भ और मन का विकार भूल कर उसके चरणों में अपना सिर झुका देगी और उससे कहेगी, मुझे स्वीकार करो, मेरे देव! मेरे देवता!

लेकिन वह मधुकर आये कैसे! क्या शारदा उसे बुलाये! वह नहीं आयेगा। वह अपने सम्मान को नहीं छोड़ेगा। वह दम्भी है। इस दुनिया का व्यवहार स्वीकार नहीं करेगा।

दिन शारदा वहाँ पहुँची और रावराजा के समक्ष जा खड़ी हुई। उसे देखते ही, रावराजा किंचित चकित बना और तब नितान्त उदास भाव से सूखी मुसकान के साथ बोला—'ओ, तुम शारदा देवी—'

शारदा ने कहा—'जी, मैं—'

'आओ, बैठो।' रावराजा ने कहा—'तुम्हें मुझसे अब गम तो नहीं करना चाहिये क्योंकि तुम्हारे द्वारा ही रिपोर्ट पाकर पुलिस ने मुझसे लिखवा लिया है कि मैं तुम्हारा प्राण-घातक नहीं बन सकता।'

आतुर बनकर, शारदा ने कहा—'देखिये मैं इस समय यह सब सुनने नहीं आई। वह जो कुछ हुआ, उसका मुझे आज भी दुःख है। पश्चाताप है।' वह रावराजा की ओर देखकर बोली—'यह बताईये, आपने यह रूप क्या बनाया है। दाढ़ी बढ़ी है, पहने हुए कपड़े भी साफ नहीं हैं।'

रावराजा किंचित हँसा और कहा—'शारदा जी, मैं जिस व्यक्ति के सहारे अपना शृंगार करता था, अब वह मेरे पास नहीं। मैं दिवालिया हो गया, यह मकान भी इसलिये बचा कि पत्नी के नाम है। किसी समय यह मुझे ससुराल से भेंट स्वरूप दहेज में मिला था।'

शारदा ने कहा—'यह तो मैं समझती हूँ कि मनुष्य इसी शक्ति के सहारे अपने शरीर का और मन का शृंगार करता है परन्तु जिस शक्ति पर सभी कुछ आधारित है, क्या आपने कभी उसपर विश्वास नहीं किया।'

रावराजा कड़ुवे भाव से मुसकरा दिया—'देवी जी, इसे दुर्भाग्य कहो या सौभाग्य, मैं एक सम्पन्न परिवार में पैदा हुआ। विलासी पिता का बेटा विलासी होगा। वही मैं बना। मैं सदा ऊपर से ही देखता रहा, नीचे नहीं देख सका।'

शारदा ने कहा—'मैं यह अनुभव करती हूँ। परन्तु अब जब आपके पास धन की शक्ति नहीं रही, तो भगवान की शक्ति पर भरोसा कीजिये। मैं भूल नहीं सकती कि आपकी सद्भावना और सहयोग पाकर ही मैं यहाँ तक आ सकी, तो अब मेरे योग्य कोई सेवा हो, तो बताइये मैं प्रस्तुत हूँ। उस समय जो कुछ कह सकी और कर सकी, उसके प्रति आज भी लज्जित हूँ।'

इतना सुनते ही, रावराजा ने अपने स्वर पर ओर दिया और कहा—'नहीं, नहीं, तुम्हें यही सब कहना था। यही तुम्हारे योग्य था। विश्वास करो, उसे याद करके मैं आज भी तुम्हारा सम्मान करता हूँ।' यह कहते हुए रावराजा कुर्सी से खड़ा हो गया और द्वार के बाहर देखते हुए अपने सिर के बालों में हाथ की उँगलियाँ देकर बोला—'परिवार के गुजारे के लिये मेरे पास अब भी सहारा है।' उसने शारदा की ओर देखकर कहा—'मसूरी का मकान भी अभी मेरे पास है। वह भी पत्नी के नाम है।' वह कहने लगा—'मैं इसी सप्ताह वहाँ से आया हूँ। सुना तो होगा ही तुमने वह कुन्दनलाल शास्त्री मर गया। वह मधुकर कवि उस पहाड़ी क्षेत्र में देवता के समान पूजा जाता है। अभी उसका नागरिकों की तरफ से स्वागत हुआ था। मैं भी आमन्त्रित किया गया था। उसी समय मैंने जीवन में प्रथम बार समझा कि मनुष्य का कर्म श्रेष्ठ है, धन-सम्पदा श्रेष्ठ नहीं।'

किन्तु उस समूची वार्ता में केवल एक बात शारदा के गले में शूल की तरह चुभ गयी और बलात् उसने निरीह बनकर कहा—'तो शास्त्री कुन्दनलाल नहीं ··रहे अंह !'

रावराजा ने कहा—'हाँ, वह नहीं रहा। सुना कि देर तक बीमार रहा। उस कवि ने अन्त समय तक उसका साथ दिया। बड़ी सेवा की, उस शास्त्री की।'

शारदा उठ खड़ी हुई और अपने मन पर एक भारी बोझ-सा ··· वहाँ से चलती हुई कह गयी—'मेरे लिये कोई सेवा हो, तो बताइये

दिन शारदा वहाँ पहुँची और रावराजा के समक्ष जा खड़ी हुई। उसे देखते ही, रावराजा किंचित चकित बना और तब नितान्त उदास भाव से सूखी मुसकान के साथ बोला—'ओ, तुम शारदा देवी—'

शारदा ने कहा—'जी, मैं—'

'आओ, बैठो।' रावराजा ने कहा—'तुम्हें मुझसे अब गम तो नहीं करना चाहिये क्योंकि तुम्हारे द्वारा ही रिपोर्ट पाकर पुलिस ने मुझसे लिखवा लिया है कि मैं तुम्हारा प्राण-घातक नहीं बन सकता।'

आतुर बनकर, शारदा ने कहा—'देखिये मैं इस समय यह सब सुनने नहीं आई। वह जो कुछ हुआ, उसका मुझे आज भी दुःख है। पश्चाताप है।' वह रावराजा की ओर देखकर बोली—'यह बताईये, आपने यह रूप क्या बनाया है। दाढ़ी बढ़ी है, पहने हुए कपड़े भी साफ नहीं हैं।'

रावराजा किंचित हँसा और कहा—'शारदा जी, मैं जिस व्यक्ति के सहारे अपना शृंगार करता था, अब वह मेरे पास नहीं। मैं दिवालिया हो गया, यह मकान भी इसलिये बचा कि पत्नी के नाम है। किसी समय यह मुझे ससुराल से भेंट स्वरूप दहेज में मिला था।'

शारदा ने कहा—'यह तो मैं समझती हूँ कि मनुष्य इसी शक्ति के सहारे अपने शरीर का और मन का शृंगार करता है परन्तु जिस शक्ति पर सभी कुछ आधारित है, क्या आपने कभी उसपर विश्वास नहीं किया।'

रावराजा कड़ुवे भाव से मुसकरा दिया—'देवी जी, इसे दुर्भाग्य कहो या सौभाग्य, मैं एक सम्पन्न परिवार में पैदा हुआ। विलासी पिता का बेटा विलासी होगा। वही मैं बना। मैं सदा ऊपर से ही देखता रहा, नीचे नहीं देख सका।'

शारदा ने कहा—'मैं यह अनुभव करती हूँ। परन्तु अब जब आपके पास धन की शक्ति नहीं रही, तो भगवान की शक्ति पर भरोसा कीजिये। मैं भूल नहीं सकती कि आपकी सहायता और सहयोग पाकर ही मैं यहाँ तक आ सकी, तो अब मेरे योग्य कोई सेवा हो, तो बताइये मैं प्रस्तुत हूँ। उस समय जो कुछ कह सकी और कर सकी, उसके प्रति आज भी लज्जित हूँ।'

इतना सुनते ही, राजराजा ने अपने स्वर पर जोर दिया और कहा—'नहीं, नहीं, तुम्हें यही सब कहना था। यही तुम्हारे योग्य था। विश्वास करो, उसे याद करके मैं आज भी तुम्हारा सम्मान करता हूँ।' यह कहते हुए राजराजा कुर्सी से खड़ा हो गया और द्वार के बाहर देखते हुए अपने सिर के बालों में हाथ की उँगलियाँ देकर बोला—'परिवार के गुजारे के लिये मेरे पास अब भी सहारा है।' उसने शारदा की ओर देखकर कहा—'मसूरी का मकान भी अभी मेरे पास है। वह भी पत्नी के नाम है।' वह कहने लगा—'मैं इसी सप्ताह वहीं से आया हूँ। सुना तो होगा ही तुमने वह कुन्दनलाल शास्त्री मर गया। वह मधुकर कवि उस पहाड़ी क्षेत्र में देवता के समान पूजा जाता है। अभी उसका नागरिकों की तरफ से स्वागत हुआ था। मैं भी आमन्त्रित किया गया था। उसी समय मैंने जीवन में प्रथम बार समझा कि मनुष्य का कर्म श्रेष्ठ है, धन-सम्पदा श्रेष्ठ नहीं।'

किन्तु उन लम्बी बातों में केवल एक बात शारदा के मन में शूल की तरह चुभ गयी और बलात् उसने निरीह बनकर कहा—'तो शास्त्री कुन्दनलाल नहीं रहे ओह !'

राजराजा ने कहा—'हाँ, वह नहीं रहा। सुना कि देर तक बीमार रहा। उस कवि ने अन्त समय तक उसका साथ दिया। बड़ी सेवा की, उस शास्त्री की।'

शारदा उठ खड़ी हुई और अपने मन पर एक भारी बोझ-सा लिये वहाँ से चलती हुई कह गयी—'मेरे लिये कोई सेवा हो, तो बताइयेगा।

मैंने कुछ कहा उसे भूल जाइयेगा ।'

२७

मधुकर वृद्ध हलधर का उपवास स्थगत कराने में सफल हो गया परन्तु उसकी लड़की का विवाह नहीं करा सका । लेकिन उस घटना से उसके मन पर यह प्रभाव भी पड़े बिना नहीं रह सका कि मनुष्य स्वयं दास वृत्ति का पोषक है समाज में प्रचलित परम्पराओं और प्रथाओं से बंधा है । मानों स्वयं मनुष्य अपना शत्रु हो विश्व के सभी वर्गों और क्षेत्रों के समान उस पहाड़ी क्षेत्र में भी जिस प्रकार की प्रथाएँ प्रचलित थीं, तो उसके द्वारा संचालित समाज भले ही पुरातनवादी हो परन्तु वह न्यायवादी और विचारक कदापि नहीं था और यही उसकी हीनता का कारण था। वह समाज त्रस्त भी इसीलिये बना था । विश्व में सभी ओर प्रकाश था । परन्तु वहाँ अन्धेरा था । मनुष्य स्वयं अपने विचारों का दास बना था ।

कदाचित यही कारण था कि मधुकर सभी ओर से छुट कर केवल अपनी सीमा में खो जाना पसन्द करता था । वह जन सेवक या समाज सुधारक नहीं था ऐसा कर्म उसे प्रिय भी नहीं लगता था । क्योंकि वह समझता था कि उस कार्य में शोर है प्रतिस्पर्धा है, प्रचार भावना है । और उसे एक विशिष्ट व्यक्ति बनना या नेता कहलाना कदापि रुचिकर नहीं लगता था । वह केवल कवि या साहित्यकार बनना अपने लिये शुभ मानता । वह पर्वतीय क्षेत्र उसने इसीलिये चुना था । किन्तु

यहाँ भी उसे चैन नहीं मिली। बूढ़ा हलधर अब इतना वृद्ध हो गया था कि कभी भी मर सकता था. यह केवल अचरज का विषय था कि मधुकर उस वृद्ध के लिये इतना मगन बना कि प्रायः उसी के लिये उस गाँव में पहुंच जाता। उस हलधर के पास जाकर बैठता और नाना प्रकार की बातें करता मानो कोई चुम्बकीय शक्ति उसे वहाँ खींच ले जाती। किन्तु मधुकर को यह देखकर हैरानी थी कि जिस गाँव के लिये एकता और सद्‌भावना के सन्देश वह वृद्ध अपने प्राणों में लिये था वही गाँव अब उसके प्रति उपेक्षित था। वृद्ध ने जितनी सद्‌भावना अर्जित की वह उसे खो चुका था। और इसका एकाएक कारण था उसकी लड़की बसन्ती। आश्चर्य की बात तो यह कि उसकी बसन्ती को अब वृद्ध हलधर फूटी आँख भी देखनी पसन्द नहीं करता था। वह उसके स्मृति पट से रात के देखे हुए स्वप्न के समान उतर चुकी थी। परन्तु उस गाँव में तथा आस-पास के अन्य गाँवों में ऐसी दर्जनों लड़कियाँ थी, कि जो भगायी गई और फिर वापिस आकर अपने माँ बापों के घरों में बैठी थी। उनकी जवानी सिसक रही थी। निश्चय ही बूढ़े ने समाज ने इस बात को समझ लिया था कि बूढ़ा हलधर अपनी लड़की की आड़ में उस परम्परा का खंडन था और अविवेक का विरोध कर रहा था। वह चाहता था कि सभी गाँव के लोग लड़कियों की विवशता को अनुभव करें और ऐसी लड़कियों से विवाह सम्बन्ध स्थापित करें। स्थिति यह थी कि बहुत सी लड़कियाँ माँ-बाप के घरों में भी आश्रय नहीं पा सकती थीं। उन्हें स्वयं केवल पर निर्भर रहना पड़ता था किन्तु इस दयनीय और अमानुषीय अवस्था का जो नग्न और वीभत्स रूप उन ग्रामवासियों के समक्ष आये दिन आता वह यह था कि ऐसी लड़कियाँ दुराचारिणी बनती और वे किसी भी रास्ते को चुनने के लिये स्वतन्त्र हो जातीं।

मधुकर उस वृद्ध की इतनी ऊँची भावना को देख सचमुच ही उसके प्रति अनुगृहीत था। मानो वह वृद्ध ऐसा आदर्श और भावना म

कि जिसे समझना सामान्य व्यक्ति के लिये सुगम नहीं था। मधुकर ने स्वयं इस प्रकार की अनेक लड़कियाँ देखी थीं। उनसे बातें कर चुका था। ऐसी लड़कियों को किस-किस प्रकार के कष्ट और यातनाएँ सहनी पड़ी जब उनका विशद वर्णन वह पा सका तो सचमुच उसे लगा कि जब धरती पर इतना पाप है, हाहाकार है तो तब भी इस धरती की छाती नहीं फटती, इस समाज का नाश नहीं होता आश्चर्य है। किन्तु धरती थी, समाज था और उसका कोलाहल था। मानो सभी कुछ उस के लिये ग्राह्य था, अनुमोदनीय था। लेकिन जब उन सब लड़कियों के समकक्ष हलधर की लड़की बसन्ती भी आ बैठी तो मधुकर को लगा कि अब समाज जरूर जल जायगा। उस आग से कोई नहीं बचेगा। कदाचित इस का कारण कुछ और हो या नहीं यह जरूर था कि अपनी लड़की के नाम पर ही हलधर ने वह प्रसंग उठाया और उसका नारा बुलन्द किया।

इसी लक्ष्य को लेकर एक बड़ी सभा का आयोजन किया गया था। अनेक वक्ता बाहर से आये। उनमें मधुकर भी एक था यद्यपि उस आयोजन को असफल बनाने और बहिष्कार करने की बात भी लोगों में चली थी परन्तु वह जलसा सफल रहा। उसमें व लड़कियाँ भी उपस्थित हुईं थी जिनका उद्धार करने के लिये वह आयोजन किया गया था। संयोजकों ने उन लड़कियों को एक-एक कर श्रोताओं के समक्ष खड़ा किया और उन्हीं के मुँह से उनकी जीवन-गाथा लोगों को सुनायी गयी। उस अवस्था में कई लड़कियाँ रो पड़ीं और अपनी गाथा पूरी सुनाने में असमर्थ बन गयीं।

किन्तु जब हलधर की लड़की बसन्ती उस सभा स्थल में लायी गयी तो उसने एकाएक ही रोकर वहाँ पर बैठे हलधर के पैरों में अपना सिर डाल दिया। आश्चर्य कि उस समय ममता मोह से दूर बैठा हलधर स्वयं भी रो पड़ा। बरबस ही उसने पुत्री के सिर पर हाथ रख दिया किन्तु संयोजक ने बसन्ती को खड़ी किया और कहा—'लोगों को सुनाओ

कि तुम पर क्या बीती !'

किन्तु बसन्ती ने कहा—'मेरे पास एक ही बात है कि मैंने अपने पिता के साथ न्याय नहीं किया। यही मेरा अपराध है।'

एक दर्शक ने कहा—'यह बताओ कि तुम कैसे गयी ?'

बसन्ती ने कहा—'यह कथा बड़ी लम्बी है। इतना ही कह सकती हूँ कि मैं जिसके साथ गयी उसने मेरी विवशता समझी थी, मुझे निराधार पाया था।'

एक बूढ़े ने कहा—'निराधार हम सब हैं, गरीब हैं। क्या तुमने यह नहीं सोचा ! तुमने हमारा सिर झुकाया, हमारी लाज कुचल दी।'

बसन्ती बोली—'मैंने कुछ नहीं सोचा। कह सकती हूँ कि यह मेरा अपराध था।'

एक युवक बोला—'बाप पागल बना दिया दर-दर का भिखारी।'

दूसरा बोला—'ऐसी लड़की को मार देना चाहिये।'

तीसरे व्यक्ति ने कहा—'और यह बूढ़ा हलधर ऐसी लड़कियों की वकालत करता है—हमारा धर्म और सम्मान कुचल देना चाहता है।'

उस वृहत सभा में बैठे किसी एक ने चिल्लाकर कहा—'इस बूढ़े को खत्म करो इसका प्राण

उसी समय बसन्ती बैठ गयी और मधुकर खड़ा हुआ। उसने कहा —'भाईयों मैं देखता हूँ कि आप में गुस्सा है सम्मान का भाव है। इस भावना की इज्जत करता हूँ किन्तु मुझे भय है कि यदि तुम लोग इसका गलत प्रयोग करोगे तो कष्ट उठाओगे अपना लक्ष्य प्राप्त नहीं कर सकोगे।'

उसने कहा—'ये लड़कियाँ जो कुछ आपके समक्ष आयी हैं निश्चय ही आपकी बहिन-बेटियाँ हैं ग्राम की प्रतिष्ठा हैं। परन्तु देखता हूँ कि आप इन्हें गलत समझ बैठे हैं। यह तो सुना और समझा कि उनकी विवशता का कुछ लोगों ने गलत लाभ उठाया उन्हें अन्धेरे में फँसा दिया लेकिन यदि आप लोग भी उनके साथ सद्-व्यवहार नहीं करोगे तो

ा परिणाम इतना भयंकर होगा कि जिसकी तुम लोग कल्पना
कर सकते ।'

मधुकर कह रहा था—'यदि किसी समाज के विचार इतने छोटे बन
यें कि यह अपने से बाहर की बात नहीं देख पाया, तो निश्चय ही
सका पतन हो जायेगा । आप लोग उसी दिशा पर हैं । इन लड़-
कियों के प्रति अनुदार हैं। और ये लड़कियाँ जो आज भी विवश हैं,
निर्बल हैं, आपकी इसी प्रकार उपेक्षा और प्रतारणा पाती रहीं तो
ये आत्म-हत्या कर सकती हैं, और किसी गलत रास्ते पर भी जा सकती
हैं ।'

वह बोला —'बाबा हलधर एक भावना की पूजा में निरत है ।
आप मार देंगे, तो हानि आपकी है । एक सद्विचार देने वाला
व्यक्ति आपके बीच से उठ जायेगा । आप में अधिकांश पुरुष हैं,
जो इस बात को समझते हैं कि मनुष्य नारी के प्रति कितना क्रू
है, स्वेच्छाचारी है, दम्भी है। फिर भी इनके प्रति कठोर बने, त
यह केवल आश्चर्य का विषय है। आप इन्हें अपनाइये और आ
दीजिये ।'

उसी दिन संध्या तक मधुकर अपने स्थान पर लौट गया । लेि
जब दूसरा प्रातः हुआ, तो हलधर के गाँव का एक आदमी पहुँचा
खिन्न बनकर बोला—'बाबू, गाँव चलिये, रात किसी ने बूढ़े हलध
मार दिया ··उसका सिर ··'

सुनते ही, मधुकर चीख उठा —'क्या कहते हो !'

उस व्यक्ति ने कहा—'बाबू बूढ़े की मौत पर अब सभी को
ताप है। मन्दिर पर गाँव इकट्ठा है। धर्म और जाति के धम
अमानुषीय कर्म कराया है।'

'राम-राम !ऐसे हैं, उस गाँव के लोग !' मधुकर चलने
प्रस्तुत हो गया। जब वह दोपहर होने तक उस गाँव में
आ चुकी थी, गाँव एकत्र था ।

यहाँ जाते ही, मधुकर ने कहा—'यह गाँव पिशाचों से भरा है। जंगली हैं, यहाँ के लोग!'

थानेदार ने कहा—'यदि ऐसे न होवें, तो क्या इस अवस्था में पड़े रहें, ये लोग!'

एक व्यक्ति ने कहा—'बाबा क्या मारा गया, गाँव मर गया।'

मधुकर ने कहा—'एक सुन्दर भावना का यहाँ जन्म हुआ था कि लोगों ने उसे मिटा दिया।'

पुलिस ने लाश सम्भाल ली और शहर से चली। उसने कुछ व्यक्ति भी पकड़ लिये, उनके हाथों में हथकड़ी डाल दी।

जब मधुकर वहाँ से चला, तो तभी हलधर की लड़की बसन्ती ने उसके पैर पकड़ लिये - 'बाबू '

मधुकर ने कहा—'धीरज रखो, भगवान का सहारा लो।'

बसन्ती ने कहा 'मेरा कोई सहारा नहीं।

किन्तु उसी समय एक युवक आगे बढ़कर आया और बोला—'बाबू, बाबा हलधर का बलिदान मुझे प्रेरणा देता है कि मैं '

मधुकर ने कहा - 'हाँ, जगधर तुम युवक हो। समझदार हो। इस भरे गाँव के समक्ष इस बसन्ती का हाथ पकड़ लो। ऐसा कसकर पकड़ो कि फिर छोड़ न सको।'

जगधर आगे बढ़ा और उसने बसन्ती का हाथ पकड़ लिया। गाँव की भीड़ को सुना कर कहा—'कोई मुझे भी मारेगा तो मर जाऊँगा, परन्तु जीते-जी बसन्ती का हाथ नहीं छोड़ूँगा।'

शाबाश, जगधर ये सभी भगवान के दूत हैं देखते हैं, तुम्हारी बात सुनते हैं। ये गवाह हैं। तुम दोनों को आशीष देते हैं।' मधुकर उन्माद में बोल पड़ा।

मधुकर गाँव से चल दिया। वह दिन ढले तक शहर में पहुँच

[ग]या। किन्तु जब वह धर्मशाला में पहुँचा तो देखकर चकित-सा रह
[ग]या। वहाँ अनेक बक्स रखे थे, पुलन्दे थे। चौकीदार ने हर्षित होकर
कहा—'बाबू शारदा देवी'

और तभी कमरे में जाकर देखा कि उसे देख पाते ही शारदा एकाएक मुसकरायी और मधुकर के पैरों में झुक गयी।

मधुकर ने कहा—शारदा देवी, मैं आज दुःखी हूँ। गाँव के लोगों ने बूढ़े हलधर को मार दिया···उसकी लाश···'

शारदा ने कहा—'मैं सुन चुकी हूँ।' वह बोली—'मैं सदा के लिये यहाँ आ गयी हूँ, मैं उस बम्बई को छोड़ आई हूँ।'

मधुकर ने बात सुनी, तो बोला नहीं। वह थका था, और खिन्न बना था, इसलिये कटी डाल की तरह बिस्तर पर पड़ गया। वह विस्मय और जिज्ञासा के साथ अपना मुँह ऊपर कर सामने खड़ी सुन्दर शारदा की ओर भी देखने लगा कि जैसे वह सचमुच ही रहस्य भरी हो, जिसे वह अभी तक नहीं समझ पाया था, समझने में असमर्थ रहा था'